श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला

॥ श्री रत्नप्रभ सूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

अथ श्री

शीघ्रबोध भाग

१७-१८-१९-२०-२१-२२

भाषांतरकर्ता

श्रीमदुपकेश गच्छीय मुनिश्री

ज्ञानसुन्दरजी (गयवरचन्दजी)

प्रकाशक

श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ओफीस--(फलोधी)

के मेनेजर शाहा जोरावरमल वैद.

प्रथमावृति १०००   वीर संवत २४४९

मूल्य.

इस पुस्तक छपानेमें जिन महानुभावोंने साहायता दी है उनोंका यह संस्था सहर्ष उपकार मानती है और धन्यवाद देती है।

१००) शा. हीराचन्दजी फूलचन्दजी कोचर—मु० फलोधी.
१००) मुताजी गीशुलालजी चन्दन मलजी—मु० पीसांगण.
८४१) सं. १९७९ के सुपनों कि आवादांनी का.

शेष खरचा श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला ऑफीस फलोधीसे दीया गया है.

भावनगर—श्री आनंद प्रिन्टींग प्रेसमां शाह गुलाबचंद लल्लुभाइए छाप्युं.

श्रीमदुपकेशगच्छीय—

मुनिराजश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।



—[जन्म १९३७]—

—[ढूंढक दीक्षा १९६३]—

—[जैन श्वे० दीक्षा सं० १९७२]

प्रस्तावना.

प्यारे पाठकवृन्द !

चरम तीर्थंकर भगवान वीर प्रभुके मुखारविंदसे फरमाइ हुइ स्याद्वादरूपी भवतारक अमृत देशना जिस्में देवदेवी. मनुष्य आर्य अनार्य पशु पक्षी आदि तीर्यंच यह सब अपनि अपनि भाषामें समजके प्रतिबोध पाकर अपना आत्मकल्याण करते थे ।

उस वीतराग वाणिको गणधर भगवानोंने अर्ध मागधि भाषासे द्वादशांगमें संकलित करी थी जीसपर जीस जीस समयमें जीस जीस भाषाकि आवश्यक्ता थी उस उस भाषा (प्राकृत संस्कृत) में टीका निर्युक्ति भाष्य चूर्णि आदिकि रचना कर भव्य जीवोंपर महान उपकार कीया था ।

इस समय साधारण मनुष्योंको वह भाषा भी कठीन होने लग गइ है क्योंकि इस समय जनताका लक्ष हिन्दी भाषाकि तर्फ बढ रहा है वास्ते जैनसिद्धान्तोंकि भी हिन्दी भाषा अवश्य होनी चाहिये.

इस उद्देशकि पुरतीके लिये इस संस्थाद्वारा शीघ्रबोध भाग १ से १६ तक प्रकाशित हो चूके है जिस्में श्री भगवती पन्नवणा जैसे महान् सूत्रोंकि भाषा कर थोकडे रूपमें छपा दीया है जो कि ज्ञानाभ्यासीयोंको बडेही सुगमतासे कण्ठस्थ कर समजनेमें सुभीता हो गया है ।

इस वखत यह १२ बारह सूत्रोंका भाषान्तर आपके कर कमलोंमें रखा जाता है आशा है कि आप इसको आद्योपान्त पढके लाभ उठावेंगे ।

इस लघु प्रस्तावनाको समाप्त करते हुवे हम हमारे सुसज्जनोंसे यह प्रार्थना करते है कि आगमोंका भाषान्तर करनेमें तथा प्रुफ शुद्ध करनेमें अगर दृष्टिदोष रह गया हो तो आप लोग सुधारके पढें और हमे सूचना करे तांके द्वितीयावृति में सुधारा करा दीया जावेगे—अस्तु कल्याणमस्तु.

'प्रकाशक'

विषयानुक्रमणिका.



(१) शीघ्रबोध भाग १७ वां

[१] श्री उपासक दशांग सूत्रका भाषान्तर.

अध्ययन तीजा.

अध्ययन चोथा.

(४) श्री पुष्पचूलिया सूत्र.

(५) श्री विन्हिदशा सूत्र.

[१९] श्री शीघ्रबोध भाग १९ वां.

(१) श्री बृहत्कल्पसूत्र

[२०] श्री शीघ्रबोध भाग २० वां.

(१) श्री दशाश्रुतस्कन्ध छेद सूत्र.

२१] श्री शीघ्रबोध भाग २१ वां.

(१) श्री व्यवहार छेद सूत्र.

[२२] श्री शीघ्रबोध भाग २२ वां.

(१) श्री लघु निशिथसूत्र (छेद)



सहर्ष निवेदन.



श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ऑफीस फलोधीसे आज स्वल्प समय में ७० पुष्पोंद्वारा १४०००० पुस्तके प्रकाशित हो चुकि है जिस्में जैन सिद्धान्तोंका तत्त्वज्ञान संचिप्त सुगमतासे समजाया गया है वह साधारण मनुष्य भी सुख पूर्वक लाभ उठा सक्ते है पाठक वर्ग एकदफे मंगवाके अवश्य लाभ लेंगें.

पुस्तक मीलनेका ठीकाना.

मेनेजर—

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.

मुः—फलोधी–(मारवाड)



परम योगिराज—

मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज.

—[जन्म १९३२.]—

—[ढुंढक दीक्षा १९४२.]—



—[जैन दीक्षा १९६०.]—

—[स्वर्गवास १९७७.]—

॥ ॐ नमः ॥

॥ स्वर्गस्थ पूज्यपाद परमयोगी सर्वमान्य प्रभाते स्मरणीय मुनि श्री श्री श्री १००८ श्री श्रीमान् रत्नविजयजी महाराज साहबके कर कमलोंमें सादर समर्पण पत्रिका ॥



पूज्यवर ! आपने भारत भूमिपर अवतार ले, असार संसारको जलांजली दे, बाल्यकालमें (दश वर्षकी अल्पावस्थामें) जन्मोद्धारक दीक्षा ले, जैनागमोंका अध्ययन कर, सत्यसुगंधीको प्राप्त कर, अशुभ असत्य ढूँढक वासनाकी दुर्गंधसे घृणित हो अठावीस वर्षकी अवस्थामें समुचीत मार्गदर्शी श्रीमान् विजयधर्मसूरीश्वरजीके चरणसरोजमें भ्रमरकी तरह लिपट गए. ऐसी आपकी सत्यप्रियता ? इसी सत्यप्रियताके आधीन हो मैं इन आगमरूपी पुष्पोंको आपके आगे रखता हूँ. क्यों कि आपके जैसा सत्यनिष्ट और अनेकागमावलोकी इस पामरको कहाँ मिलेगा ?

परमपुनीत पूज्य ! आपने गिरनार और आबू जैसे गिरिवरोंकी गुफाओंमें निर्भिकतासे निवाश कर, अनेक तीर्थ स्थानोंकी पुनीत भूमीओंमें रमण कर, योगाभ्यासकी जैनोंमेंसे गई हुई कीर्त्तिको अहाहन कर पुनः स्थापीत कर गए. इसलिए आपके सूक्ष्मदर्शिताके

गुणोंमें मुग्ध हो ये पुष्प आपके आगे रखनेकी उत्कट इच्छा इस दासको हुई है.

मेरे हृदयमंदिरके देव ! आपने अति प्राचीन श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर स्थापीत उपकेश पट्टनस्थ (ओशीयांमें) महावीर प्रभुके मंदिरके जीर्णोद्धारमें अपूर्व सहाय कर जैनबालाश्रम स्थापीत कर जैनागमोंका संग्रहीत ज्ञानभंडार कर मरूभूमीमें अलभ्यलाभ कायम कर जैनजातिकी सेवा कर अपूर्व नाम कर गए. इन कारणोंसे लालायीत हो ये आगम-पुष्प आपके सन्मुख रखूं तो मेरी कोई अधीकतां नहीं है.

भव्योद्धारक ! इस दासपर आपकी असीम कृपा हुई है इससे यह दास आपका कभी उपकार नहीं भूल सकता. मुझे आपने मिथ्याजालमेंसे छूडाया है, सन्मार्ग बताया है, ढूंढकोंके व्यामोहसे दृष्टि हटा कर ज्ञानदान दिया है, साध्वाचारमें स्थिर किया है. यह सब आपका ही प्रताप है. इस अहसानको मानकर इन बारे सूत्रोंका हिन्दी अनुवादरूपी पुष्पोंको आपकी अनुपस्थितिमें समर्पण करता हूँ. इसे सूक्ष्म ज्ञानद्वारा स्वीकार करीएगा. यही हार्दिक प्रार्थना है. किमधिकम्.

आपश्रीके चरणकमलोंका दास

मुनि ज्ञानसुन्दर.



पूज्यपाद श्रीमान् मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजकेकरकमलोंमें

अभिनन्दनपत्रम्.



शान्त्यादि गुणगणालंकृत पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय मुनि श्री श्री १००८ श्री श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराजसाहिब ! आपश्री बडे ही उपकारी और ज्ञानदान प्रदान करनेमें बडे ही उदारवृत्तिको धारण कर आपश्रीकी प्रशंसनीय व्याख्यान शैली द्वारा भव्यजीवोंका कल्याण करते हुवे हमारा सद्भाग्य और हमारी चिरकालकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये आपश्रीका शुभागमन इस फलोधी नगरमें हुवा, जिसके वजरिये फलोधी नगरकी जैन समाजको बडा भारी लाभ हुवा है. बहुतसे लोग आपश्रीकी प्रभावशाली देशनामृतका पानसे सद्बोधको प्राप्त कर पठन–पाठन, शास्त्रश्रवण, पूजा, प्रभावना, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषधादि, त्याग, वैराग और अपूर्व ज्ञान–ध्यान करते हुवे आपश्रीके मुखारविंदसे श्रीमद् आचारांगादि १७ आगम और १४ प्रकरण श्रवण कर अपना आत्माको पवित्र बनाया यह आपश्रीके पधारनेका ही फल है.



श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला पुष्प नं० ५३

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्योनमः

अथश्री

शीघ्रबोध या थोकडाप्रबन्ध.

भाग १७ वां

संग्राहक.

श्रीमदुपकेश गच्छीय मुनिश्री

ज्ञानसुन्दरजी (गयवरचन्दजी)

द्रव्यसहायक

श्रीसंघ फलोधी गुरु[illegible]

प्रकाशक.

शाह मेघराजजी मुणोत मु० फलोधी

[illegible] [illegible]

विक्रम सं. १९७९.

भावनगर—श्री 'आनंद प्रीन्टींग प्रेस' मां
शा. गुलाबचंद लल्लुभाईए छाप्युं.

॥ ॐ ॥

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः ।

शीघ्रबोध या थोकडा प्रबन्ध

भाग १७ वा.

देवोऽनेक भवार्जितोऽर्जित महा पाप प्रदीपानलो
देवः सिद्धिवधू विशाल हृदयालंकार हारोपमः ॥
देवोऽष्टादशदोष सिंधुरघटा निर्भेद पंचाननो ।
भव्यानां विदधातु वांछित फलं, श्री वीतरागो जिनः ॥१॥

श्री उपासक दशांग सूत्र अध्ययन १

(आनंद श्रावकाधिकार)

चोथे आरेके अन्तिम समयकी बात है कि इस भारतभूमीको अपनी ऊंची २ ध्वजा पताकाओं और सुन्दर प्रसादके मनोहर शिखरोंसे गगनमंडलको चुम्बन करता हुवा अनेक प्रकारके धन, धान्य और मनुष्योंके परिवारसे समृद्ध ऐसा वाणीय ग्राम नामका

एक नगर था। उस नगरके बाहिरी भागमें अनेक जातिके वृक्ष, पुष्प और लताओंसे अति शोभनीय दुतीपलास नामका उद्यान (बगीचा) था। और वहां अनेक शत्रुओंका अपनी भुजाओंके बलसे पराजय करके प्रजाको न्याय युक्त पालन करता हुवा जयशत्रु नामका राजा उस नगरमें राज्य करता था। और वहां आनंद नामका एक गाथापति रहता था। जिसको सिवानंदा नामकी भार्या थी वह बडा ही धनाढ्य और नीती पूर्वक प्रवृत्ति करके न्यायोपार्जित द्रव्य और धन धान्य करके युक्त था। जिसके घर चार करोड सोनैया धरतीमें गडे हुवेथे। चार करोड सोनैयाका गहना आदि ग्रह सामग्री थी। और चार करोड सोनैये वाणिज्य व्यापारमें लगे हुवे थे। और दश हजार गायोंका एक वर्ग होता है ऐसे चार वर्ग याने ४०००० गायोंथी। इसके सिवाय अनेक प्रकारकी सामग्री करके समृद्ध और राजा, शेठ, सेनापती आदिको बडा माननीय और प्रशंसनीय, गुंज और रहस्यकी बातोंमें नेक सलाहका देनेवाला, व्यापारीयोंमें अग्रेसर था। हमेशां आनंद चित्तसे अपनी प्राणप्रिया सुशीला सिवानंदाके साथ उचित भोग-विलास व. ऐश्वर्य सुखोंको भोगवता हुवा रहता था। उस नगरके बाहिरी भागमें एक कोलाक नामका सन्नीवेश (मोहल्ला) था। वहांपर आनन्द गाथापतीके सज्जन संबंधी लोक रहते थे। वेभी बडे ही धनाढय थे।

एक समय भगवान त्रैलोक्य पूजनीय वीर प्रभु अपने शिष्यवर्ग-परिवार सहित पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुवे, वाणीयग्राम नगरके दुतीपलास नामकें उद्यानमें पधारे।

यह खबर नगरमें होते ही जहां दो, तीन, चार या बहुतसे रस्ते एकत्रित होते हैं। ऐसे स्थानोंपर बहुतसे लोक आपसमें स-

हर्ष वार्तालाप कर रहे हैं कि अहो ! देवानुप्रिय ! यथा रूपके अरिहंत भगवन्तोंके नाम मात्र श्रवण करनेसे ही महाफल होता है, यही श्रमण भगवान महावीर प्रभुका पधारना आज दुतीपलास नामके उद्यानमें हुवा है तो इसके लिये कहनाही क्या है । चलो भगवन्तको वन्दन-नमस्कार करके श्री मुखसे देशना श्रवण कर प्रश्नादि करके वस्तुतत्त्वका निर्णय करें । ऐसा विचार करके सब लोक अपने २ घर जाके स्नान कर वस्त्राभूषण जो बहु मुल्यके थे से धारण कीये । और शिरपर छत्र धराते हुये कितनेक गज, अश्व, रथादिपर और कितनेक पैदल जानेको तैयार हो रहेथे । इतनेमें जयशत्रु राजाको वनपालकने खबर दीकि आप जिनके दर्शनकी अभिलाषा करतेथे वे परमेश्वर वीरप्रभु उद्यानमें पधारे हैं । यह सुनके राजाने उस वनपालकको, संतोषित कर बहुत द्रव्य इनाम दिया और स्वयम चार प्रकारकी सेना तैयार कर बहुतसे मनुष्योंके परिवारसे कोणक राजाकी माफीक नगर-श्रृंगारके बडे ही हर्ष-उत्साह और आडम्बरके साथ भगवानको वन्दन करनेको गया । समोसरणमें प्रवेश करते ही प्रथम पांच प्रकारके अभिगम-विनय करते हुये भगवानके पास पहुंच गये । राजा और नगरनिवासी लोक भगवानको प्रदक्षिणा दे, वन्दन-नमस्कार कर अपने २ योग्य स्थान पर बैठ गये ।

आनन्द गाथापति भी इस बातको श्रवण करते ही स्नान-मज्जन कर शरीर पर अच्छे २ बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण कर शिरपर छत्र धराते हुये और बहुतसे मनुष्यवृन्द के परिवारसे भगवानको वन्दन करनेको आये । वन्दन-नमस्कार कर योग्य स्थान पर बैठ गया ।

भगवानने भी उस विशाल पर्षदाको धर्मदेशना देना प्रारंभ

किया। जिसमें मुख्य जीव और कर्मोंका स्वरूप वतलाया कि हे भव्यात्माओ! यह जीव निर्मल ज्ञानादि गुणयुक्त अमूर्त्त है और सद् चिदानन्दमय है परन्तु अज्ञानसे पर वस्तुओंको अपनी कर मानी है। इन्हीसे उत्पन्न हुवा राग-द्वेषके हेतुसे कर्मोंका अनादि कालसे चय-उपचय करता हुवा इस अपार संसारके अन्दर परिभ्रमण कर रहा है। वास्ते अपनी निजसत्ताको पहिचानके जन्म, जरा, मृत्यु आदि अनन्त दुःखोंका हेतु यह अनित्य असार संसारके बन्धनसे छूटना चाहिये। इत्यादि देशना देके अन्तमें फरमाया कि मोक्षप्राप्तिके मुख्य कारण दोय है (१) साधु धर्म-सर्वथा निर्वृत्ति। (२) श्रावक धर्मजो देशसे निवृत्ति, इस दोनों धर्मसे यथाशक्ति आराधना करनेसे संसार का पार हो के स्वसत्ताका राज मील सकता है।

यह अमृतमय देशना देवता, विद्याधर और राजादि श्रवण कर सहर्ष बोले कि हे करुणासिन्धु! आपने यह भवतारक देशना दे के जगतके जीवोंपर अमूल्य उपकार किया है। इत्यादि स्तुति कर अपने २ स्थान पर गमन करते हुवे।

आनन्द गाथापति देशना सुनके सहर्ष भगवानको वन्दन-नमस्कार कर बोला कि हे भगवान! मैं आपकी सुधारस देशना श्रवण कर आपके वचनोकी अन्तर आत्मासे श्रद्धा हुइ है। और मेरेको प्रतीति होनेसे धर्म करनेकी रुचि उत्पन्न हुइ है, परन्तु हे दीनोद्धारक? धन्य है जगतमें राजा, महाराजा। शेठ सेनापति आदिको जो कि राजपाट, धन, धान्य, पुत्र, कलत्रका त्याग कर आपके समीप दीक्षा ग्रहण करते है परन्तु मैं ऐसा समर्थ नहीं हूं। हे प्रभो! मैं आपसे गृहस्थ धर्म अर्थात् श्रावकके बारह व्रत ग्रहण करूंगा। भगवानने फरमाया कि "जहा सुखं" हे आनन्द! 'जैसा

तुमको सुख हो वैसा करो परन्तु जो धर्मकार्य करना हो उसमें समय मात्र भी प्रमाद मत करो'। ऐसी आज्ञा होने पर आनन्द श्रावक भगवानके समीप श्रावक व्रतको धारण करना प्रारंभ किया।

(१) प्रथम स्थूल प्राणातिपात अर्थात् हलता चलता [1]त्रस जीवोंको मारनेका त्याग जावज्जीवतक, दोय करन स्वयं कीसी

---

१ आनन्दने प्रथम व्रतमें त्रस जीवोंको हणनेका प्रत्याख्यान दोय करण और तीन योगसे किया है, जैसे कि हालमें सामायिक पोषधमें दोय करण और तीन योगसे प्रत्याख्यान करते हैं विशेष इतना है कि सामायिक पोसहमें सर्व सावद्य व्यापार हैं और आनन्दजीने त्रस जीवोंको मारनेका त्याग कीया था।

बहुतसे ग्रन्थोंमें श्रावकके सवा विश्वा दया कही गई है उन्होंमें स्थावर जीवों की दश विश्वा दया तो श्रावकसे पल ही नहीं सके और त्रस जीवोंमें भी निर्विकल्पके पांच विश्वा, आरंभीके अढाई, आकुट्टीका सवा एवं १८॥। विश्वा बाद करते सवा विश्वा दया श्रावकके होती है। यह एक अपेक्षासे मान्य है कि जिन्होंने छठा, सातवां, आठवां व्रत नहीं लिया है जिससे १४ राजलोकके स्थावरजीव खुल्ले हैं।

जो श्रावक त्रस जीवोंको मारनेका कामी नहीं है उन्होंके १० दश विश्वा दया त्रस जीवोंकी होती है और स्थावर जीवोंके लिये छठा व्रतकी मर्यादा करते हैं तो मर्यादाके बाहार असंख्याते कोडाकोड अर्थात् मर्यादाके सिवाय चौदह राजलोकके स्थावर जीवोंको मारनेका भी श्रावक त्यागी है वास्ते पांच विश्वा दया पल सकती है। अब मर्यादाकी भूमिकामें बहुतसे द्रव्य हैं जिसमें सातवां व्रतमें उपभोग परिभोगकी मर्यादा करनेसे द्रव्य रखनेके सिवाय सब स्थावर जीवोंकी दया पल जानेसे अढाई विश्वा दया होती है जब इत्यादिकी मर्याद करी थी उन्होंमें भी अनर्थदंडके प्रत्याख्यान करनेसे सवा विश्वा दया पल जाती है एवं १०-५-२॥-१। मीलके १८॥। विश्वा दया आनन्दजी श्रावकसे पल सकती है।

अगर यह प्रश्न किया जाय कि श्रावक गृहकार्यके लिये तथा संग्रामादिमें त्रस जीव मरते हैं। उत्तर—हां, गृहकार्यादिमें त्रस जीव मरते है परन्तु श्रावक त्रस जीव मारनेका कामी नहीं है जैसे कि साधुको नदी उतरतां त्रस स्थावरोंकी हिंसा होती है परन्तु मारनेका कामी न होनेसे वीस विसवाही दया मानी गइ है। भगवती सूत्र ७ श० उ० १ में कहा है कि त्रस जीवोंको मारनेका त्याग करने पर पृथ्वी खोदतां त्रस जीव मर जावे तो श्रावकको व्रतमें अतिचार नहीं लगता है।

अगर श्रावकोंके स्थावर जीवोंकी बील्कुल दया नहीं गिनी जावे तो फिर श्रावक छट्ठादिग् परिमाण व्रत करता है उन्होंका क्या फल हुवा? सातमा व्रतमें द्रव्यादिका संक्षेप करता है उसका क्या फल हुवा? चौदह नियम धारते है? उन्हों का क्या लाभ हुवा? कारण कि स्थावर जीवोंकी दया तो उन्होंके गीनी ही नही जाती है। और त्रस जीवोंके तो पहेले ही त्याग हो चुका था फिर छट्ठा, सातवां, आठवां व्रत लेनेका क्या लाभ हुवा?

(प्रश्न) साधु और श्रावकके क्या सवा विसवा दयाका ही फरक है!

(उत्तर) और क्या है? देखिये श्रावकोंके शास्त्रकारोंने कैसा महत्व बतलाया है "एसअट्ठे एसपमट्ठे सेसाअणट्ठे × × × अप्पाणं भावेमाणे विहरइ" गृहवासमें रहते हुवे श्रावकका यह लक्ष है कि वीतरागका धर्म है वह अर्थ और परमार्थ है। शेष गृह कार्य अनर्थ है। सदैव आत्माको भावता हुवा विचरता है। सोचना चाहिये कि साधु और श्रावकमें क्या फरक है। द्रव्यसे श्रावक गृहवासमें प्रवृत्ति करता है इसके लिये ही सवा वीसवा कम रखी गई है। अगर कोइ आजके श्रावकोंकी स्थिति देख प्रश्न करते हो तो हम कह सकते हैं कि जैसे हालमें साधु है वैसे ही श्रावक हैं। परन्तु हमने तो अपने२ कर्तव्यमें चलनेवालोंकी वात लिखी है। देखिये, श्रावक प्रतिमा वहन करते है तब साधु माफिक रहते है तो क्या उसको सवा विसवा ही दया कही जावेगी? कभी नहीं। जो पूर्व महाऋषियोंने सवा विसवा कही है उन्हीको हम केवल त्रस जीवोंकी अपेक्षाको सत्य मानते है। तत्त्व केवली गम्यं॥

पीच्छी उदेरी संकुटी अनापराधी [1] आगार होते हैं यह देखो जैननियमावलीसे।

(२) दूसरे स्थूल मृषावाद-तीव्र राग द्वेष संक्लेशोत्पन्न करनेवाला मृषावाद तथा राजदंडे या लोकभंडे ऐसा मृषावाद बोलनेका त्याग जावज्जीव तक दोय करण और तीन योगसे पूर्ववत्।

(३) तीसरे स्थूल अदत्तादान-परद्रव्य हरन करना, क्षेत्र खणादिका त्याग जावज्जीवतक दोयकरण और तीन योगसे।

(४) चोथे स्थूल मैथुन-स्वदारा संतोष जिसमें आनन्दने अपनी परणी हुई सिवानन्दा भार्या रखके शेष मैथुनका त्याग कियाथा।

(५) पांचमें स्थूल परिग्रहका परिमाण करना। (१) सुवर्ण, रूपेके परिमाणमें बारह क्रोड जिसमें च्यार क्रोड धरतीमें, च्यारक्रोड व्यापारमें, च्यार क्रोड घरमें आभूषण वस्त्रादि घर विखरीमें। इन्होंके सिवाय सर्व [1]त्याग किया। (२) चतुष्पदके परिमाणमें च्यार वर्ग अर्थात् चालीस हजार [2]गौ(गायों) के सिवाय सर्व त्याग किये (३) भूमिकाके परिमाणमें पांचसो हल [3]जमीन रखी शेषभूमिका परिमाण किया। (४)

---

१ जो गये हुवे व्यापारमें धनवृद्धि होती हैं वह सर्व अपनीही मर्यादामें मानी जातीथी।

२ च्यार गोकुल (वर्ग) की वृद्धि हो वह इसी मर्यादामें है।

३ दसहाथ परिमाण एक बांस और बीस बांस परिमाणका एक नियत और सौ नियतका एक हल एसे पांचसे हल जमीन रखीथी उन्होंके १०५० गाउ होता है। यत, छठाव्रतकी मर्यादाकी इसी मर्यादामें आगईथी वास्ते छठा व्रतका अलापक अलग नहीं कहा हैं। किन्तु अतिचार छठे व्रतका अलग कहा है। और आनन्दजीकी सिंध (कविता) में ५०० हल खेत खेडते हैं एसा भी लिखा हैं। अगर पांचसो हल खेती समझी

शकट–गाडाके परिमाणमें पांचसो गाडा जहाजों पर माल पहुंचा-नेके लिये तथा देशांतरसे माल लानेके लिये और पांचसो गाडा अपने गृहकार्यके लिये खुला रखके शेष शकट–गाडाओंका त्याग कर दिया (५) वहाण पाणीके अन्दर चलनेवाले जहाजके परिमाणमें च्यार बडे जहाज दिशावरोंमें माल भेजनेका और च्यार छोटे जहाज खुले रखके शेष वहाणका त्याग कीया। छट्ठा व्रत पांचवेव्रतके अन्तर्गत है।

(७) सातवां उपभोग-परिभोग व्रतका निम्न लिखित परि-माण करते हुवे।

(१) अंगपूंछनेका रूमालमें गन्ध कषाँत वस्त्र रखा है।

(२) दातणमें एक अमृति–जेटीमधका दातण॥

(३) फलमें एक क्षीर आंवलाका फल (केशधोनेको)

(४) कसरत करने पर 'मालिस' करनेके लिये सौपाक और हजार पाक तेल रखाथा। सौ औषधिसे पकावें उसको सौपाक और हजार औषधिसे पकावे उसको हजार पाक कहते है तथा सौ मोनैयाका एक टकाभर ऐसा कीमतवाला तैल रखा था।

(५) उवटना एक सुगन्ध पदार्थ कुष्टादिका रखा है।

(६) स्नान मज्जन–आठ घडे पाणी प्रतिदिन रखा है।

(७) वस्त्रोंकी जातिमें एक क्षेमयुगल कपासका वस्त्र रखा है।

जावे तो छट्टा दिशाव्रत बिलकुलही नहीं रखाथा तो उन्होंके च्यार बडे वहाण च्यार छोटे वहाण किस दिशामें चलतेथे ऐसा प्रश्न स्वाभाविक उत्पन्न होता है। आनन्दको व्यवहार (व्यापार) में कुशल कहा है और पांचमें व्रतमें च्यार क्रोड द्रव्य व्यापारके लिये रखा था। वास्ते संभव होता है कि पांचसे हलकी जमीन रखीथी उसीमें छट्ठाव्रतका भी समावेश होगया हो। तत्वं केवली गम्यं।

(८) विलेपन-अगर कुंकुम चन्दनका विलेपन रखा था।

(९) पुष्पकी जातिमें शुद्ध पद्म और मालतीके पुष्पोंकी माला।

(१०) आभरण-कानोंके कुंडल और नामांकित मुद्रिका रखीथी।

(११) धूप-अगर तगरादि सुगन्ध धूप रखा था।

(१२) पेज्ज-घृतमें तलीया हुवा चावल पुवा।

(१३) भोजन-घृत पुरी और खांड खाजा रखा था।

(१४) ओदन-कलम जातिके शाली चावल रखा था।

(१५) सूप-दालमें मूंग, उडदकी दाल रखी थी।

(१६) घृतमें शरदऋतुका घृत अर्थात सवेरे निकाला हुवा।

(१७) शाक. शाकमें वथुवाकी भाजीका तथा मंडुकी वनस्पतिका शाक रखा था।

(१८) मधुर फलमें एक वेली फल पालंग फल रखा था।

(१९) जेमण, जिमणविधि द्रव्य विशेष रखा था।

(२०) पाणीकी जातिमें एक आकाशका पाणी. टांकादिका

(२१) मुखवासमें इलायची लवंग कर्पुर जावंतरी जायफल यह पांच वस्तु तंबोलमें रखी थी।-सर्व आयुष्यमें एवं २१ बोलोंके द्रव्य रखे थे।

(८) आठवां व्रतमें अनर्थदंडका त्याग किया था यथा-स्वार्थ विना आर्तध्यान करनेका त्याग। प्रमादके वश हो, घृत. तैल. दूध. दही. पाणी, आदिका भाजन खुला रख देना, औरभी प्रमादाचरणका त्याग। हिंसाकारी शस्त्र एकत्र करनेका त्याग। पापकारी उपदेश देनेका त्याग यह च्यार प्रकारसे अनर्थदंड सेवनकरनेका त्याग।

यह आठ व्रतोंका परिमाण करनेपर भगवान महावीर-

स्वामि बोले कि हे आनन्द जो सम्यक्त्व सहित व्रत लेते हैं उसको पेस्तर व्रतोंके अतिचार जो कि व्रतोंके भंग होनेमें मददगार है उसको समझके दूर करना चाहिये। यहांपर सम्यक्त्वके ५ और बारह व्रतोंके ६० कर्मादानके १५ संलेखनाके ५ एवं ८५ अतिचार शास्त्रकारोंने बतलाये हैं। किन्तु वह अतिचार प्रथम जैन नियमावलीमें लिखे गये है वास्ते यहांपर नहीं लिखा है। जिसको देखना हो वह " जैन नियमावली " से देखे।

आनन्द गाथापति भगवान वीरप्रभुसे सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण करके भगवानको वन्दन-नमस्कार करके बोला कि हे भगवान! अब आज मैं सच्चे धर्मको समझ गया हूं। वास्ते आजसे मुझे नहीं कल्पे जो कि अन्यतीर्थी श्रमण, शाक्यादि तथा अन्यतीर्थीयोंके देव हरि, हलधरादि और अन्यतीर्थीयोंने अरिहंतकी प्रतिमा अपने देवालयमें अपने कबजे कर देव तरीके मान रखी है. इन्ही तीनोंको वन्दन-नमस्कार करना तथा श्रमणशाक्यादिको पहिले बुलाना, एकवार या वारवार उन्होंसे वार्तालाप करना और पहिलेकी माफिक गुरु समजके धर्मबुद्धिसे आसनादि चतुर्विधाहारका देना या दूसरोंसे दिलाना यह सर्व मुझे नहीं कल्पते हैं। परन्तु इतना विशेष है कि मैं संसारमें बैठा हूं वास्ते अगर (१) राजाके कहनेसे (२) गणसमूह-न्यातके कहनेसे (३) बलवन्तके कहनेसे (४) देवताओंके कहनेसे (५) मातापितादिके कहनेसे (६) सुखपूर्वक आजीविका नहीं चलती हो। अर्थात् ऐसी हालतमें किसी आजीविकाके निमित्त उक्त कार्य करना भी पडे यह छे प्रकारके आगार है।

अब आनंद श्रावक कहता है कि मुझे कल्पे साधु-निर्ग्रन्थको फासुक, निर्जीव, निर्दोष अशन पान खादिम स्वादिम वस्त्रपात्र

केवल रजोहरण पीठ फलगशय्या संस्थारक औषध भेषज देता हुवा बिचरना। ऐसा अभिग्रह धारण कर भगवानको वन्दन कर प्रश्नादि पूछके अपने स्थानको गमन करता हुवा। आनन्द श्रावक अपने घरपर जायके अपनी भार्या सिवानन्दाको कहता हुवा। हे देवानुप्रिय! मैं आज भगवान वीरप्रभुकी अमृत देशना श्रवण कर सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण किया है वास्ते तुम भी भगवानको वन्दन कर बारह व्रत धारण करो। सिवानन्दा अपने पतिका वचन सहर्ष स्वीकार कर स्नान-मज्जन कर शरीरको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत कर अपनी दासीयां आदि परिवार सहित भगवानके निकट आइ। वन्दन कर श्रावकके १२ व्रतोंको धारण कर अपने स्थानपर आके अपने पतिकी आज्ञाको सुप्रत करती हुइ।

भगवान्को वन्दन कर गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवन्! यह आनन्द श्रावक आपके पास दीक्षा लेगा? भगवान्ने उत्तर दिया कि हे गौतम! आनन्द दीक्षा न लेगा, किन्तु बहुतसे वर्ष श्रावक व्रत पालके अन्तमें अनशन कर प्रथम देवलोकमें अरूणनामका विमानमें उत्पन्न होगा। गौतमस्वामि यह सुनके वन्दना कर आत्मरमणतामें रमण करने लगे।

भगवान् एक समय वाणीयाग्राम नगरके उद्यानसे विहार कर अन्य देशमें विहार करते हुवे विचरने लगे।

आनन्द श्रावक जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष और क्रिया अधिकरणादिका जानकार हुवा जिसकी श्रद्धाको देवादिक भी क्षोभित न कर सके। यावत् निजात्मामें रमण करते हुए विचरने लगा।

आनन्द श्रावक उच्च कोटीके व्रत प्रत्याख्यानादि पालन करते हुवे साधिक चौदह वर्ष पूर्ण कीये उसके बाद एक

समय रात्रीमें धर्मजागरना करते हुवे यह भासमान हुवा कि मैं वाणीयाग्राम नगरमें राजा उपराजा शेठ सेनापति आदिके मानने योग्य हुं परन्तु भगवानके पास दीक्षा लेनेको असमर्थ हुं, वास्ते कल सूर्योदय होते ही विस्तरण प्रकारका आसनादि तैयार करवाके न्यात जातिको बोलके उन्होंको भजन कराके ज्येष्ठ पुत्रको कुटुम्बके आधारभूत स्थापन कर मैं उक्त कोल्लाक सन्निवेशमें अपने मकानपर जाके भगवानसे प्राप्त किये हुवे धर्मसे मेरा आत्मा कल्याण करता हुआ विचरुं। एसा विचार कर सूर्योदय होनेपर वह ही कीया, अपने ज्येष्ठ पुत्रको घरका कारभार सुप्रत कर आप कोल्लाक सन्निवेशमें जा पहुंचा। अब आनन्द श्रावक उसी पौषधशालाको प्रमार्जन कर उच्चार पासवण भूमिको प्रमार्जन कर भगवान वीरप्रभुसे जो आत्मीक ज्ञान प्राप्त कीया था उसके अन्दर रमणता करने लगा।

आनन्द श्रावक वहांपर श्रावककी ११ प्रतिमा (अभिग्रह विशेष) को धारण करके प्रवृत्ति करने लगा। इन्होंका विस्तार शीघ्रबोध भाग ४ मे देखो यावत् साढे पांचवर्ष तक तपश्चर्या करके शरीरको कृश बना दीया अर्थात् शरीरका उस्थान बल कर्मवीर्य और पुरुषार्थ बिलकुल कमजोर हो गया, तब आनन्द श्रावकने विचारा कि अब अन्तिम अनशन 'संलेखना' करना ठीक है। बस, आनन्दने आलोचना करके-अनशन करके अठारा पापस्थान और च्यार आहारका पचखान कर आत्मध्यानमें रमणता करता हुवा। शुभाध्यवसाय-अच्छे परिणाम प्रशस्त लेश्या होनेसे आनन्दको अवधिज्ञान उत्पन्न हुवा सो पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा लवणसमुद्रमें पांचसो पांचसो योजन क्षेत्र और उत्तरमें चुलहेमवन्त पर्वत तक देखने लग गया। उर्ध्व सौधर्मदे-

पलोक और अधो रत्नप्रभा नरकके लोलुच पाथडाके चौरासी हजार वर्षोकी स्थितिवाले नरकावासको देखने लग गया।

उस समय भगवान वीरप्रभु दुतिपलासोद्यानमें पधारे। उन्हीं के समीप रहनेवाले गौतमस्वामि जिन्होंका शरीर गौर वर्ण, प्रथम संहनन संस्थान, सात हाथ देहमान, च्यार ज्ञान चौदहपूर्व पारगामि, छठतपकी तपश्चर्या करनेवाले एक समय छठतपके पारणे भगवानकी आज्ञा लेके वाणीयाग्राम नगरमें समुदाणी भिक्षा कर कोलाक सन्निवेशके पास होके पीछा भगवानके पास आ रहे थे। इतनेमें गौतमने सुना कि भगवान वीरप्रभुका शिष्य आनन्द श्रावक अनशन किया है यह बात सुन गौतमस्वामि आनन्दके पास गये। आनन्दने भी गौतमस्वामिको आते हुवे देखके हर्षके साथ वन्दन-नमस्कार किया और बोला कि हे भगवान ! मेरी शक्ति नहीं है वास्ते आप अपना चरणकमल नजीक करावे ताकि मैं आपके चरणकमलोंका स्पर्श कर मेरा आत्माको पवित्र करुं। तब गौतमस्वामिने अपना चरणकमल आनन्दकी तर्फ कीया आनन्दने अपने मस्तकसे गौतमस्वामिके चरण स्पर्श कर अपना जन्म पवित्र किया। आनन्दने प्रश्न किया कि हे भगवान गृहावासमें रहा हुवा गृहस्थोंको अवधिज्ञान होता है.? गौतमस्वामिने उत्तर दिया कि हे आनन्द गृहस्थोकोभी अवधिज्ञान होता है। आनन्द बोला कि हे भगवान मुझे अवधिज्ञान हुवा है जिसको जरिये मैं पुर्व पश्चिम और दक्षिण इन्ही तीनों दिशा लवणसमुद्रमें पांचसो पांचसो योजन तथा उत्तर दिशामें चुल हेमवन्त पर्वत तक उर्ध्व सौधर्मकल्प, अधो रत्नप्रभा नरकका लोलुच पाथडा देखता हुं। यह सुनके गौतम स्वामि बोलेकि हे आनन्द! गृहस्थको इतना विस्तारवाला अवधिज्ञान नहीं होता है वास्ते हे आनन्द ! इस स्था-

तर्का आलोचना कर प्रायश्चित लेना चाहिये । आनन्दने कहा कि हे भगवान ! क्या यथा वस्तु देखे उतना कहनेवालेको प्रायश्चित आता है अर्थात् क्या सत्य बोलनेवालोंकोभी प्रायश्चित आता है । गौतम बोला कि हे आनन्द सत्य बोलनेवालोंको प्रायश्चित नही आता है । आनन्दने कहा कि सत्य बोलनेवालोंको प्रायश्चित नहीं आता हो तो हे भगवान ! आपही इस स्थानको आलोचन कर प्रायश्चित लो । इतना सुन गौतमस्वामिको शंका हुइ । तब सीधाही भगवानके पास जाके सर्व वार्ता कही । भगवानने फरमाया कि हे गौतम तुमही इस वातकी आलोचना करो । गौतमस्वामि आलोचना करके आनंद श्रावकके पास आये और क्षमत्क्षामणा करके अपने स्थानपर गमन करते हुवे ।

आनन्द श्रावकने साढे चौदह वर्ष श्रावक व्रत पाला, साढे पांच वर्ष प्रतिमाको पालन किया अन्तमें एक मासका अनशन कर समाधि संयुक्त कालकर सौधर्म नामका देवलोकमें अरूणवैमानमें च्यार पल्योपमके स्थितिवाला देव हुवा । उन्ही देवताका भव आयुष्य स्थितिको पुर्ण कर वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें अच्छे उत्तम जाति–कुलके अन्दर जन्म धारण कर दृढपइन्नेकी माफीक केवली धर्मको स्वीकार कर अनेक प्रकारके तपसंयमसे कर्म क्षय कर केवळज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें जावेगा । इसी माफीक श्रावकवर्गकोभी अपने आत्म कल्याण करना । शम्

इति आनन्द श्रावकाधिकार संक्षिप्त सार समाप्तम् ।



(२) अध्ययन दुसरा कामदेव श्रावकाधिकार।



चम्पानगरी पुर्णभद्र उद्यान जयशत्रुराजा, कामदेव गाथापति जीसके भद्राभार्या,- अठारा क्रोड सोनैयाका द्रव्य-जिसमें छे क्रोड धरतीमें, छे क्रोडका व्यापार, छे क्रोडकी घरविक्री और छे वर्ग अर्थात् साठ हजार गौ (गायों) यावत् आनन्दकी माफीक श्री-भगवान वीरप्रभुका पधारना हुवा, राजा और नगरके लोक वन्दनको गये कामदेवभी गया। भगवानने देशना दी। कामदेवने आनन्दकी माफीक स्वइच्छा मर्यादा रखके सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण किया। यावत् अपने ज्येष्टपुत्रको गृहस्थभार सुप्रत कर आप पौषधशालामें अपनी आत्म रमणतामें रमण करने लगे।

एक समय अर्ध रात्रिके समयमें कामदेवके पास एक मिथ्यादृष्टि देवता उपस्थित हुवा, वह देवता एक पीशाचका रूप जो कि महान् भयंकर-देखनेसे ही कायरोंके कलेजा कंपने लग जाता है, एसा रौद्र रूप वैक्रियलब्धिसे धारण कर जहांपर कामदेव अपनी पौषधशालामें प्रतिमा (अभिग्रह) धारण कर बैठे थे, वहांपर आया और बडे ही क्रोधसे कुपित हो, नैत्रोंको लाल बनाये और निलाडपर तीनशल करके बोलता हुवा कि भो कामदेव! मरणकी प्रार्थना करनेवाले, पुन्यहीन कालीचतुर्दशीके दिन जन्मा हुवा, लक्ष्मी और अच्छे गुनरहित तुं धर्म पुन्य स्वर्ग और मोक्षका कामी हो रहा है। इन्द्रोंकी तुझे पीपासा लग रही है। इस बातकी हो तुं आकांक्षा रख रहा है परन्तु देख! आज तेरेको तेरा धर्म जो शील व्रत पचखाण पौषध और तुमारी प्रतिज्ञामें

हुवा अटल-निश्चल रहा। दुष्ट देवने कामदेवको बहुत उपसर्ग किया परन्तु धर्मवीर कामदेवको एक प्रदेश मात्रमें भी क्षोभित करनेको आखीर असमर्थ हुवा। देवताने उपयोग लगाके देखा तो अपनी सब दुष्ट वृति निष्फल हुइ। तब देवताने सर्पका रूप छोड के एक अच्छा मनोहर सुन्दराकार वस्त्राभूषण सहित देव रूप धारण किया और आकाशके अन्दर स्थित रहके बोलता हुवा कि हे कामदेव! तुं धन्य हैं पूर्व भवमें अच्छे पुन्य कीया है। हे कामदेव! तुं कृतार्थ है। यह मनुष्य जन्मको आपने अच्छी तरहसे सफल किया है। यह धर्म तुमको मीला ही प्रमाण है। आपकी धर्मके अन्दर दृढता बहुत अच्छी है। यह धर्म पाया ही आपका सार्थक है। हे कामदेव! एक समय सौधर्म देवलोक की सौधर्मी सभाके अन्दर शक्रेन्द्रने अपने देवताओंके वृन्दमें बैठा हुवा आपकी तारीफ और धर्मके अन्दर दृढताकी प्रशंसा करीथी परन्तु मैं मूढमति उस बातको ठीक नही समजके यहांपर आके आपकी परिक्षाके निमत्त आपको मैंने बहुत उपसर्ग किया है परन्तु हे महानुभाव! आप निर्ग्रन्थके प्रवचनसे किंचत् भी क्षोभायमान नही हुवे। वास्ते मैंने प्रत्यक्ष आपकी धर्म दृढताको देखली है। हे आत्मवीर अब आप मेरा अपराधकी क्षमा करे, ऐसी वारवार क्षमा याचना करता हुवा देव बोला कि अब ऐसा कार्य मैं कभी नहीं करुंगा इत्यादि कहता हुवा कामदेवको नमस्कार कर स्वर्गको गमन करता हुवा।

तत्पश्चात् कामदेव श्रावक निरूपसर्ग जानके अपने अभिग्रह (प्रतिज्ञा) को पालता हुवा।

जिस रात्रीके अन्दर कामदेव श्रावकको उपसर्ग हुवा था

उसीके प्रभातकालमें सूर्योदयके वख्त कामदेवको समाचार आया कि भगवान वीरप्रभु पूर्णभद्र उद्यानमें पधारे हैं। कामदेवने विचारा कि आज भगवानको वन्दन-नमस्कार कर देशना श्रवण करके ही पौषध पारेंगे। ऐसा विचार करते ही अच्छे सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कर भगवानको वन्दन करनेको गया। राजादि और भी परिषदा आइ थी। उन्होंको भगवानने जगतारक देशना दी। देशना देनेके बादमें भगवान वीरप्रभु कामदेव श्रावक प्रति बोले कि हे कामदेव! आज रात्रीके समय देवताने पिशाच, हस्ति और सर्प इस तिन रूपको बनाके तेरेको उपसर्ग कीया था?

कामदेवने कहा कि हाँ, भगवान यह बात सत्य है। मेरेको तीनों प्रकारसे देवने उपसर्ग किया था।

भगवान वीरप्रभु बहुतसे श्रमण-निर्ग्रंथ-साधु तथा साध्वीयोंको आमन्त्रण करके कहते हुवे कि हे आर्य! यह कामदेवने गृहस्थावासमें रह कर घोर उपसर्ग सम्यक् प्रकारसे सहन किये हैं। तो तुम लोगोंने तो दीक्षाव्रत धारण कीये हैं और द्वादशांगीके ज्ञाता हो वास्ते तुम लोगोंको देव, मनुष्य और तिर्यंचके उपसर्गोंको अवश्य सम्यक् प्रकारसे सहन करना चाहिये। यह अमृतमय वचन श्रवण कर साधु साध्वीयोंने विनय सहित भगवानके वचनोंको स्वीकार कीया।

कामदेव भगवानको प्रश्नादि पूछ, वन्दन-नमस्कार कर अपने स्थान प्रति गमन करता हुवा। और भगवान भी यहांसे विहार कर अन्य देशमें विहार करते हुये।

कामदेव श्रावकने १४॥ सढे चौदह वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक धर्मका पालन किया और ५॥ साढेपांच वर्ष प्रतिमा वहन करी।

अन्तमें एक मासका अनशन कर आलोचना कर समाधिमें काल कर सौधर्मदेवलोकमें अरूण नामका विमानमें च्यार पल्योपम स्थितिवाला देव हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष जावेगा ॥ इतिशम् ॥ २ ॥



(३) अध्ययन तीसरा चुलनिपिताधिकार.

बनारसी नगरी कोष्टक उद्यान, जयशत्रु राजा राज करता था। उस नगरीमें एक चुलनिपिता नामका गाथापति बडाही धनाढ्य था। उसको शोभा नामकी भार्या थी। चोवीस क्रोड सोनैयोंका द्रव्य था। जिसमें आठ क्रोड धरतीमें, आठ क्रोड व्यापारमें और आठ क्रोडका घर वीक्रिमें था। और आठ वर्ग अर्थात् एंसी हजार गौ (गायों) थी। आनन्दके माफीक नगरीमें बडा माननीय था।

भगवान वीरप्रभु पधारे। राजा और चुलनिपिता वन्दन करनेको गये। भगवानने धर्मदेशना दी। आनन्दकी माफीक चुलनिपिताने भी स्वइच्छा परिमाण रखके श्रावकके व्रत धारण कर भगवानका श्रावक बन गया।

एक समय पौषधशालामें ब्रह्मचर्य सहित पौषध कर आत्म रमणता कर रहा था। अर्द्ध रात्रीके समय एक देवता हाथमें निलोत्पल नामकी तलवार ले के चुजनिपित श्रावक के पास आया और कामदेवकी माफीक चुलनिपिताको भी धर्म छोडने की अनेक धमकीयां दी। परन्तु चुल० धर्मसे क्षोभायमान नहीं

हुवा। तब देवताने कहा कि अगर तुं धर्म नहीं छोडेगा तो मैं आज तेरे ज्येष्ठ पुत्रको तेरे आगे मारके खंड २ कर रक्त, मेद, और मांस तेरे शरीरपर लेपन करदूंगा, और उसका शेषमांसका शुला बनाके तैलकी कडाइमें तेरे सामने पकाउंगा। उसको देखके तूं आर्तध्यान कर मृत्यु धर्मको प्राप्त होगा। तब भी चुलनिपिता क्षोभायमान न हुवा। देवताने एसाही अत्याचार कर देखाया। पुत्रका तीनतीन खंड कीया। तथापि चुलनीपिताने अपने आत्मध्यानमें रमणता करता हुवा उस उपसर्गको सम्यक् प्रकारसे सहन किया। क्योंकि देवताने धर्म छोडानेका साहस किया था। पुत्रादि अनन्तिवार मीला है यह भी कारमा संबंध है। धर्म है सो निजवस्तु है। चुलनिपिताको अक्षोभ देख देवताने पहेले की माफीक कोपित होके दुसरे पुत्रको भी लाके खंड २ किया, तो भी चुलनिपिता अक्षोभ होके उपसर्गको सम्यक् प्रकारसे सहन किया। तीसरी दफे कनिष्ट (छोटा) पुत्रको लाके उसका भी खंड २ किया। तो भी चुलनिपिता अक्षोभ ही रहा।

देवने कहाकि हे चुलनिपिता! अगर तुं धर्म नहीं छोडेगा तो अब मैं तेरी माता जो भद्रा तेरे देवगुरु समान है उसको मैं तेरे आगे लाके पुत्रोंकी तरह अभी मारुंगा। यह सुनके चुलनिपिताने सोचा कि यह कोइ अनार्य पुरुष ज्ञात होता है कि जिन्होंने मेरे तीन पुत्रोंको मार डाला। अब जो मेरे देवगुरु समान और धर्ममें सहायता देनेवाली भद्रा माता है उसको मारनेका साहस करता है तो मुझे उचित है कि इस अनार्य पुरुषको मैं पकड लूं। एसा विचार कर पकडनेको तैयार हुवा। इतनेमें देवता आकाशमें गमन करता हुवा। और चुलनिपिताके हाथमें एक स्थंभ आगया और कोलाहल हुवा। इस हेतु भद्रा

माता पौषधशालामें आके बोली कि हे पुत्र ! क्या है ? चुलनिपिताने सब बात कही। तब माता बोली कि हे पुत्र ! तेरे पुत्रोंको किसीने भी नहीं मारा है किन्तु कोइ देवता तुझे क्षोभ करनेको आयाथा उसने तुझे उपसर्ग किया है ! तो हे पुत्र ! अब तुं जो रात्रीमें कोलाहल कीया है उससे अपना नियम-व्रत पौषधका भंग हुवा है वास्ते इसकी आलोचना कर अपने व्रतको शुद्ध करना। चुलनिपिताने अपनी माताका वचनको स्वीकार कीया।

चुलनिपिताने साढाचौदह वर्ष गृहस्थावासमें रहके श्रावक व्रत पाला, साढेपांच वर्ष इग्यारे प्रतिमा वहन करी, अन्तमें एक मासका अनसन कर समाधि सहित कालकर सौधर्म देवलोकमें अरूणप्रभ नामका देवविमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिवाला देव हुवा है। वहांसे आयुष्य पूर्णकर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य हो दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त हो मोक्ष जावेगा ॥ इतिशम् ॥ ३ ॥



(४) चोथा अध्ययन सूरादेवाधिकार.

बनारसी नगरी, कोष्टक उद्यान, जयशत्रु राजा था। उस नगरीमें सूरादेव नामका गाथापति था। उसको धन्ना नामकी भार्या थी। कामदेवके माफीक अठारा क्रोड द्रव्य और साठ हजार गायों थी। किसीसे भी पराजय नहीं हो सक्ता था।

भगवान वीरप्रभु पधारे। राजा प्रजा और सूरादेव वन्दनको गया। भगवानने धर्मदेशना दी। सूरादेवने आनन्दके माफीक स्वइच्छा मर्यादा कर सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण किया।

एक रोज सूरादेव पौषधशालामें पौषध कर अपना आत्मध्यान कर रहा था।

अर्ध रात्रीके समय एक देवता आया। जैसे चुलनिपिताको उपसर्ग कीया था इसी माफीक सूरादेवको भी कीया। परन्तु इन्होंके एकेक पुत्रका पांच पांच खंड किया था और चोथीवार कहने लगा कि अगर तुं तेरा धर्म नहीं छोडेगा तो मैं आज तेरे शरीरमें जमगसमगादि सोलह बडे रोग है वह उत्पन्न कर दूंगा। यह सुनके सूरादेव चुलनिपिताकी माफीक पकडनेको प्रयत्न किया। इतनेमें देवने आकाशगमन किया। हाथमें स्थंभ आया। कोलाहाल सुनके धन्ना भार्याने कहा हे स्वामिन्! आपके तीनों पुत्र धरमें सुते हैं परन्तु कोइ देवने आपको उपसर्ग किया है यावत् आप इस स्थानकी आलोचना करना इस वातको सूरादेवने स्वीकार करी।

सूरादेव श्रावकने साडेचौदह वर्ष गृहस्थावासमें रह कर श्रावक व्रत पाला, साडेपांच वर्ष तक इग्यारे प्रतिमा वहन करी। अन्तमें आलोचना कर एक मासका अनशन कर समाधिपूर्वक काल कर सौधर्मदेवलोकमें अरूणकन्त नामका वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिवाला देवता हुवा। वहांसे महाविदेहक्षेत्रमें मोक्ष जावेगा॥ इतिशम॥ ४॥



(५) पांचवा अध्ययन चुलशतकाधिकार.

आलंभीया नगरी, संगवनोद्यान, जयशत्रु राजा था। उस नगरीमें चुलशतक नामका गाथापति वसता था। उसको वाहुला

नामकी भार्या थी और अठारह क्रोडका द्रव्य, साठ हजार गायों यावत् बडाही धनाढ्य था।

भगवान वीरप्रभु पधारे। राजा, प्रजा और चुलशतक वन्दनको गये। भगवानने अमृतमय देशना दी। चुलशतक आनन्द की माफीक स्वइच्छा मर्यादा कर सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण कीया।

चुलनिपिताकी माफीक इसको भी देवताने उपसर्ग कीया। परन्तु एकेक पुत्रके सात सात खंड किया। चौथी वखत देवता कहने लगा कि अगर तुं धर्म नहीं छोडेगा तो मैं तेरा अठारा क्रोड सोनैयाका द्रव्य इसी आलंभीया नगरीके दो तीन यावत् बहुतसे रास्तेमें फेंकदूंगा कि जिन्होंके जरिये तुं आर्तध्यान करता हुआ मृत्यु पामेगा।

यह सुनके चुलशतकने पूर्ववत् पकडनेका प्रयत्न कीया इतनेमें देव आकाश गमन करता हुवा। कोलाहल सुनके बहुला भार्याने कहा कि आपके तीनों पुत्र घरमें सुते हैं यह कोइ देवने आपको उपसर्ग किया है। वास्ते इस बातकी आलोचना लेना। चुलशतकने स्वीकार किया।

चुलशतकने साढे चौदह वर्ष गृहवासमें श्रावकपणा पाला, साढे पांच वर्ष इग्यारा प्रतिमा वहन कीया; अन्तमें आलोचना कर एक मास अनसन कर समाधिमें काल कर सौधर्म देवलोकके अरूणश्रेष्ट वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिमें देवपणे उत्पन्न हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्णकर महाविदहमें मोक्ष जावेगा। इतिशम्॥ ५॥



(६) छट्टा अध्ययन कुंडकोलिकाधिकार.

कपीलपुरनगर, सहस्र आम्र उद्यान, जयशत्रुराजा, उसी नगरीमें कुंडकोलिक नामका गाथापति बडाही धनाढ्य बसता था। उसको पुंसा नामकी भार्याथी. कामदेवकी माफीक अठारा क्रोड सौनैया और साठ हजार गायों थी।

भगवान वीरप्रभु पधारे, राजाप्रजा और कुंडकोलिक वन्दन करनेको गया। भगवानने धर्मदेशना दी। कुंडकोलिकने स्व-इच्छा मर्यादाकर सम्यक्त्व मूळ बारह व्रत धारण कीया।

एक समय मध्याह्नकालकी वख्त कुंडकोलिक श्रावक अशोक वाडीमें गयाथा, सामायिक करनेके इरादासे नामांकित मुद्रिकादि उतारके पृथ्वी शीलापट्टपर रखके भगवानके फरमाये हुवे धर्म चिन्तवन कर रहा था।

उस समय एक देवता आया। वह पृथ्वी शीलापट्टपर रखी हुइ नामांकित मुद्रिकादि उठाके देवता आकाशमें स्थित रहा हुवा कुंडकोलीका श्रावक प्रति ऐसा बोलता हुवा।

भो कुंडकोलिया! सुन्दर है मंखली पुत्र गोशालाका धर्म क्योंकि जिन्होंके अन्दर उत्स्थान (उठना) कर्म (गमन करना) बल (शरीरादिका) वीर्य (जीवप्रभाव) पुरुषाकार (पुरुषार्थाभिमान) इन्होंकी आवश्यकता नहीं है। सर्व भाव नित्य है अर्थात गोशालाके मतमें भवितव्यताको ही प्रधान माना है वास्ते उत्स्थानादि क्रिया कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। और भगवान महावीर स्वामिका धर्म अच्छा नहीं है क्योंकि जिसके अन्दर उत्स्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार बतलाये है

अर्थात् सर्व कार्यकी सिद्धि पुरुषार्थसे ही मानी है वास्ते ठीक नही है।

यह सुनके कुंडकोलिक श्रावक बोला कि हे देव! तेरा कहना है कि गोशालाका धर्म अच्छा है और वीरप्रभुका धर्म खराब है। अगर उत्स्थानादि विना कार्यकी सिद्धि होती है तो मैं तुमको पुछता हूं कि यह प्रत्यक्ष तुमको देवता संबन्धी ऋद्धि मीली है यह उत्स्थानादि पुरुषार्थसे मीली है या विना पुरुषार्थसे मीली है? वह प्रत्यक्ष तेरे उपभोगमें आई है। देवने उत्तर दिया कि मेरेको यह ऋद्धि मीली है वह अनुत्स्थान यावत् अपुरुषार्थसे मीली है। यावत् उपभोगमें आई है। श्रावक कुंडकोलिक बोला कि हे देव! अगर अनुत्स्थान यावत् अपुरुषार्थसे ही जो देवऋद्धि मीलती हो तो जिस जीवोंका उत्स्थानादि नहीं है (एकेन्द्रियादि) उन्होंको देवऋद्धि क्यों नहीं मीलती है। इस वास्ते हे देव! तेरा कहना है कि गोशालाका धर्म अच्छा और महावीर प्रभुका धर्म खराब यह सब मिथ्या है अर्थात् झुठा है।

यह सुनके देव वापस उत्तर देनेमें असमर्थ हुवा और अपनी मान्यतामें भी शंका कंक्षादि हुइ। शीघ्रतासे वह नामांकित मुद्रिकादि वापस पृथ्वीशीलापटपर रखके जिस दिशासे आया था उसी दिशामें गमन करता हुवा।

भगवान वीरप्रभु पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुवे कपीलपुर नगरके सहस्राम्रोद्यानमें पधारे। कामदेवकी माफीक कुंडकोलिक श्रावक वन्दनको गया। भगवानने धर्मकथा फरमाइ। तत्पश्चात् भगवानने कुंडकोलिक श्रावकको कहा कि हे भव्य! कल मध्यान्हमें एक देवता तुमारे पास आया था यावत् हे श्रमणोपासक! तुमने ठीक उत्तर देके उस देवका पराजय किया। कामदेवकी माफीक

भगवानने कुंडकोलिक श्रावककी तारीफ करी। बादमें बहुतसे साधु साध्वीयोंको आमन्त्रण करके भगवानने कहा कि हे आर्यो! यह गृहस्थने गृहवासमें रहते हुवे भी हेतु द्रष्टान्त प्रश्नादि करके अन्य तीर्थ अर्थात् मिथ्यावादीयोंका पराजय किया हैं। तब तुम लोग तो द्वादशांगके पाठी हो वास्ते तुमको तो विशेष मिथ्यावादीयोंका पराजय करना चाहिये। इन्हो हितशिक्षाको सर्व साधुओंने स्वीकार करी। पीछे कुंडकोलिक श्रावक भगवानसे प्रश्नादि पुछ और वन्दन-नमस्कार कर अपने स्थान प्रति गमन करता हुवा। और भगवान भी अन्य जनपद-देशमें विहार करते हुवे।

कुंडकोलिक श्रावकने साढेचौदह वर्ष गृहवासमें श्रावक व्रत पालन किया और साढेपांच वर्ष प्रतिमा वहन करी। सर्वाधिकार कामदेवकी माफीक कहना अन्तमें आलोचना कर एक मासका अनशन समाधि सहित कालधर्म प्राप्त हुवा। वह सौधर्मदेवलोक के अरूणध्वज नामका वैमानमें च्यार पल्योपम स्थितिवाला देव हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें आनन्दकी माफीक मनुष्यभवमें दीक्षा लेके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जायेगा।



(७) सातवां अध्ययन शकडालपुत्राधिकार.

पोलासपुरनगर, सहस्र वनोद्यान, जयशत्रुराजा, उस नगरके अन्दर शकडालपुत्र नामका कुंभकार था, उसको अग्निमित्ता नामकी भार्याथी, तीन क्रोड सोनैया द्रव्य था। जिसमें एक क्रोड धरतीमें, एक क्रोड व्यापारमें, एक क्रोड घर विक्रीमें था और

एक वर्ग अर्थात् दशहजार गायोंथी। तथा शकडालपुत्रके पोला-सपुर बाहीर पांचसो कुंभकारकी दुकानेंथी। उसमें बहुतसा नोकर-मजुर थे कि जिसमें कितनेकको तो दिन प्रत्ये नोकरी दि जाति थी कितनेकको मास प्रति-वर्ष प्रति नोकरी दी जाती थी. वह बहुतसे नोकरों में कीतनेक मट्टीके घडे, अधघडे, झारी, कलंजरा, आदि अनेक प्रकारके बरतन बनातेथे, कितनेक नोकर पोलासपुरके राजमार्गमें बैठके वह घडादि मट्टीके बरतन प्रति-दिन वेचा करतेथे, इसीपर शकडालकुंभकारकी आजीविका चलतीथी।

शकडालकुंभकार आजीवका मतिथा अर्थात् गोशालाका उपासक था। वह गोशालेका मतके अर्थको ठीक तौरपर ग्रहण कियाथा यावत् उसकी हाडहाड की मींजी गोशालाके धर्ममें प्रेमानुरागता हो रहीथी, इतना हि नहीं बल्के जो अर्थ तथा पर-मार्थ जानताथा तो एक गोशालाका मतको ही जानताथा, शेष सर्व धर्मवालोंको अनर्थ ही समझता था, गोशालेका धर्ममें अपना आत्माको भावता हुवा सुखपूर्वक विचरताथा।

एकदिन मध्याह्नके समय शकडालकुंभकार अशोक वाडीमें जाके गोशालेका मत था उसी माफाक धर्म प्रवृत्तिमें वर्त रहा था। उस समय एक देवता शकडालके पास आया, वह देव आकाशमें रहा हुवा जिन्होंके पावोंमें घुघर गमक रहीथी। वह देव शक-डालकुंभकार प्रति बोलता हुवा कि हे शकडाल! महामहान् जिसको उत्पन्न हुवा है केवलज्ञान केवल दर्शन तथा भूत भविष्य वर्तमानको जानने वाले, जिन=अरिहंत=केवली सर्वज्ञ, त्रैलोक्य पूजित, देव मनुष्य असुरादिको अर्चन वन्दन पूजन करने योग्य, उपासना-सेवा-भक्ति करने योग्य, या-

यत् मोक्षके कामी, कल यहांपर पधारेंगे। हे शकडाल! उसका तुम वन्दना करना यावत् सेवा-भक्ति करके पाट, पाटला, मकान संस्तारक आदिका आमन्त्रण करना। ऐसा दो तीनवार कहके वह देवता जिस दिशासे आयाथा उस दिशामें चला गया।

दुसरे ही दिन भगवान वीरप्रभु अपने शिष्य मंडल-परिवारसे युक्त पृथ्वी मंडल पवित्र करते पोलासपुर नगरके बहार सहस्राम्रोद्यानमें पधारे। राजा, प्रजा भगवानको वन्दन करनेको गये। यह बात शकडालको मालुम हुइ तब शकडाल गोशालाका भक्त होने पर भी स्नान कर सुन्दर वस्त्राभूषण सज बहुतसे मनुष्योंको साथ ले के पोलासपुर नगरके मध्य बजारसे चलता हुवा भगवानके समीप आये। वन्दन नमस्कार कर योग्य स्थानपर बैठा। भगवानने उस विस्तारवाली परिषदाको धर्मदेशना सुनाइ जब देशना समाप्त हुई तब भगवान। शकडालपुत्र कुंभकार गोशालाके उपासकसे कहते हुये कि हे शकडाल कल अशोकवाडीमें तेरे पास एक देवता आयाथा, उसने तुमको कहाथा कि कल महामहन्त आयेगा यावत उन्होंको पांचसो दुकानों ओर शय्या संथाराका आमन्त्रण करना। क्या यह बात सत्य है? हां, भगवान यह बात सत्य है मुझे ऐसाही कहाथा।

हे शकडाल! देवताने गोशालाकी अपेक्षा नहीं कहाथा। इस पर शकडालने विचार किया कि जो अरिहंत=केवली=सर्वज्ञ=है तो भगवान वीरप्रभु ही है। वास्ते मुझे उचित है कि मेरी पांचसो दुकानों और पाट पाटला शय्या संस्थारा भगवानसे आमन्त्रण करुं। शकडालने अपनी दुकानों आदिकी आमन्त्रण करी ओर भगवानने भविष्यका लाभ जानके स्वीकार कर पोलासपुरके बहार पांचसो दुकानों ओर शय्या संथारको पडिहारा " लेके पीछा देना " ग्रहन करा।

एक समय शकडाल अपने मकानके अन्दरमे बहूतसे मट्टीके धरतनोंकों बाहार धूपमे रख रहाथा, उन्ही समय भगवान शग-डालसे पुच्छा कि हे शकडाल! यह मटीके वरतन तुमने कैसे वनाया है? । शकडालने उत्तर दिया कि हे भगवान पहिले हम लोग मटी लायेथे फीर इन्होंके साथ पाणी राखादिक मीलाके चक्रपर चडाके यह वरतन वनाये हैं।

हे शकडाल! यह मटीके वरतन तैयार हुवा है वह उस्थानादि पुरुषार्थ करनेसे हुवे हैं कि विन पुरुषार्थसे।

हें भगवान! यह सर्व नित्यभाव है भवीतव्यता है इस्में उस्थानादि पुरुषार्थकी क्या जरूरत है।

हे शकडाल! अगर कोइ पुरुष इस तेरे मटीका वरतनकों कीसी प्रकारसे फोडे तोडे इधर उधर फेंक दे चौरीकर हरन करे तथा तुमारी अग्रमित्ता भार्यासे अत्याचार अर्थात् भोगविलास करता हो, तो तुम उन्ही पुरुषको पकडेगा नही दंड करेगा नही यावत् जीवसे मारेगा नही तव तुमारा अनुस्थान यावत् अपुरुषार्थ और सर्व भाव नित्यपणा कहना ठीक होगा, (ऐसा वरताव दुनियांमे दीसता नहीं है। यह एक कीस्मकी अनीति अत्याचार है और जहांपर अनीति अत्याचार हो वहांपर धर्म केसे हो सक्ता है) अगर तुम कहोगा कि मैं उन्हीं नुकशान कर्ता पुरुषको मारुंगा पकडुंगा यावत् प्राणसे घात करुंगा तो तेरा कहना अनुस्थान यावत् अपुरुषाकार सर्व भाव नित्य है वह मिथ्या होगा। इतना सुनतेही शकडाल को ज्ञान हो गया कि भगवान फरमाते है वह सत्य है क्यों कि पुरुषार्थ विना कीसी भी कार्यकी सिद्धि नहीं होती है। शकडालने कहा कि हे भगवान मेरी इच्छा है कि मैं आपके मुखार्विन्दसे विस्तारपूर्वक धर्म

श्रवण करं तब भगवानने शकडालको विस्तारसे धर्म सुनाया। यह शकडालपुत्र गोशालेका भक्त, भगवान वीरप्रभुकी मधुर भाषासे स्याद्वाद रहस्ययुक्त आत्मतत्त्व ज्ञानमय देशना श्रवण कर बडे ही हर्षको प्राप्त हुवा, बोला कि हे भगवान! धन्य है जो राजेश्वरादि आपके पास दीक्षा ग्रहन करते है मैं इतना समर्थ नही हुं परन्तु मैं आपकि समीप श्रावक धर्म ग्रहन करना चाहता हूं। भगवानने फरमाया कि जैसे सुख हो वैसा करो परन्तु धर्म कार्यमें विलम्ब करना उचित नही है। तब शकडाल पुत्र कुंभकारने भगवानके पास आनन्दकी माफीक सम्यक्त्व मूल बारह व्रतको धारण कीया परन्तु स्वइच्छा परिमाण किया जिस्में द्रव्य तीन क्रोड सोनैया तथा अग्रमित्ता भार्या और दुकानादि मोकली रखी थी। शेष अधिकार आनन्दकी माफीक समझना। भगवानको वन्दन नमस्कार कर पोलासपुरके प्रसिद्ध मध्य बजार हो के अपने घरपे आया, और अपनी भार्या अग्रमित्ताको कहा कि मैंने आज भगवान वीरप्रभुके पास बारह व्रत ग्रहन कीया है तुम भी जाओ भगवानसे वन्दन नमस्कार कर बारह व्रत धारण करो। यह सुनके अग्रमित्ता भी बडे ही धामधूम आडम्बरसे भगवानको वन्दन करनेको गइ और सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण कर भगवानको वन्दन नमस्कार कर अपने घरपे आके अपने पतिको आज्ञा सुप्रत करती हुइ। अब दम्पति भगवानके भक्त हो भगवानके धर्मका पालन करते हुवे आनन्दमें रहने लगे। भगवान भी वहांसे विहार कर अन्य देशमें गमन किया।

शकडाल कुंभकार और अग्रमित्ता भार्या यह दोनों जीवाजी-

व आदि पदार्थके अच्छे ज्ञाता हो गये थे। और श्रावकव्रतको अच्छी तरहसे पालते हुवे भगवानकी आज्ञाका पालन कर रहे थे।

यह वार्ता गोशालाने सुनि कि शकडाल० वीरप्रभुका भक्त बन गया है तब वहांसे चलकर पोलालपुरको आया। उसका विचार था कि शकडालको समझाके पीछा अपने मतमें ले लेना। गोशालाने अपने भंडोपकरण रखके सिधा ही शकडाल पुत्र श्रावकके पास आया। किन्तु शकडाल श्रावकने गोशालाको आदर-सत्कार नहीं दिया, इतना ही नहीं किन्तु मनमें अच्छा भी नहीं समझा और बुलाया भी नहीं तब गोशालाने विचारा कि इन्हीके दुकानों सिवाय कोइ उताराकी जगा भी नहीं है इसके लिये अब भगवान महावीर स्वामिका गुण किर्त्तन करने के विना अपनेको उतारनेको स्थान मीलना मुशकील है। एसा विचार कर गोशाला, शकडाल श्रावक प्रति बोला-क्यों शकडाल पुत्र! यहांपर महा महान् आये थे?

शकडाल बोला कि कौनसा महा महान्?

गोशालाने कहा कि भगवान वीरप्रभु महा महान्।

शकडाल बोला कि कीस कारणसे महामहान्?

गोशाला बोला कि भगवान् महावीर प्रभु उत्पन्न केवलज्ञान केवल दर्शनके धरनेवाले त्रैलोक्य पूजनीय यावत् मोक्षमें पधारनेवाले हैं (जिसका उपदेश है कि महणो महणो) वास्ते भगवान् वीरप्रभु महामहान है।

गोशाला बोला कि हे शकडाल! यहां पर महागोप आये थे?

शकडालने कहा कि कौन महागोप?

गोशालाने कहा कि भगवान वीरप्रभु महागोप?

शकडालने कहा किस कारण महागोप है ?

गोशालाने कहा कि संसार रूपी महान् अटवी है जिसमें बहुतसे जीव, विनाशको प्राप्त होते हुए छिन्न भिन्नादि खराब दशा को पहुंचते हुये को धर्मरूपी दंड हाथमें ले के सिधा सिद्धपुर पाटणके अन्दर ले जा रहे है वास्ते महागोप वीरप्रभु है।

गोशालाने कहा कि हे शकडाल! यहां महासार्थवाह आये थे?

शकडालने कहा कि कौन महासार्थवाह ?

गोशालाने कहा कि भगवान् वीरप्रभु महासार्थवाह है।

शकडालने कहा कि कीस कारणसे ?

गोशालाने कहा कि संसाररूपी महा अटवीमें बहुतमें जीव नासते हुवे-यावत् विलुपत हुये को धर्मपन्थ बतलाते हुये निवृतिपुरमें पहुंचा देते है। वास्ते भगवान वीरप्रभु महासार्थवाह है।

गोशाला बोला कि हे शकडाल! यहां पर महाधर्मकथक आये थे ?

शकडालने कहा कि कौन महाधर्म कथा कहनेवाले।

गोशालाने कहा कि भगवान वीरप्रभु।

शकडालने कहा कि किस कारणसे।

गोशालाने कहा कि संसारके अन्दर बहुतसे प्राणी नाश पामते यावत् उन्मार्ग जा रहे हैं उन्हों को सन्मार्ग लगानेके लिये महाधर्म कथा केहके चतुर्गति रूपी संसारसे पार करनेवाले भगवान् वीरप्रभु महाधर्म कथाके केहनेवाले है।

गोशालाने कहा कि हे सकडाल! यहां पर महा निर्यामक आये थे ?

शकडालने कहा कि कौन महा निर्जामक ?

गोशालाने कहा भगवान वीरप्रभु महा निर्जामक है ।

शकडालने कहा किस कारणसे !

गोशालाने कहा कि संसार समुद्रमें बहुतसा जीव डुबते हुवे को भगवान वीरप्रभु धर्मरूपी नावमें बैठाके निवृतिपुरीके सन्मुख कर देतें हैं वास्ते भगवान् वीरप्रभु महा निर्जामक है ।

शकडाल बोला कि हे गोशाला ! इस वखत तुं मेरे भगवानका गुणकीर्त्तन कर रहा है यथा गुण करनेसे तुं नितिज्ञ है विज्ञानवन्त है तो क्या हमारे भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद (शास्त्रार्थ) कर सकेगा ?

गोशालाने कहा कि मैं भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद करनेको समर्थ नहीं हुं ।

शकडाल बोला कि किस कारणसे असमर्थ है ।

गोशाला बोला कि हे शकडाल ! जैसे कोइ युवक मनुष्य बलवान् यावत् विज्ञानवन्त कलाकौशल्यमें निपुण मजबुत स्थिर शरीरवाला होता है वह मनुष्य एलक, सूवर, कुकड, तीतर, भटेवर, लाहाग, पारवा, काग, जलकागादि पशुवोंके हाथ, पग, पांख, पुच्छ, शृंग, चर्म, रोम आदि जो जो अवयव पकडते है वह मजबुत ही पकडते है । इसी माफीक भगवान वीरप्रभु मेरे प्रश्न-हेतु वगरणादि जो जो पकडते है उन्हीमें फीर मुझे बोलनेका अवकाश नहीं रहते है । अर्थात् उन्होंके आगे मैं कोनसी चीज हुं । वास्ते हे शकडाल ! मैं तुमारे धर्माचार्य भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद करनेको असमर्थ हुं ।

यह सुनके शकडालपुत्र श्रावक बोला कि हे गोशाला ! तुं

आज साफ हृदयसे मेरे भगवानको यथार्थ गुण करता है वास्ते मैं तुझे उतरनेको पांचसो दुकानें और पाटपाटला शय्या संथारकी आज्ञा देता हुं किन्तु धर्मरूप समझके नहीं देता हुं, वास्ते जाओ कुंभकारकी दुकानों आदि भोगवो (काममें लो)। बस। गोशालो उन्ही दुकानों आदिको उपभोगमें लेता हुवा और भी शकडाल प्रत्ये हेतु युक्ति आदिसे बहुत समझाया। परन्तु जिन्होंने आत्मवस्तु तत्वज्ञान कर पहेचान लिया है। उन्होंको मनुष्य तो क्या परन्तु देवता भी समर्थ नहीं है कि एक प्रदेशमात्रमें क्षोभ कर सके। गोशालेकी सर्व कुयुक्तियोंको शकडाल श्रावक न्यायपूर्वक युक्तियों द्वारा नष्ट कर दी। बादमें गोशाला वहांसे विहार कर अन्य क्षेत्रोंमें चला गया।

शकडालपुत्र श्रावक बहुत काल तक श्रावक व्रत पालते हुवे। एक दिन पौषधशालामें पौषध किया था. उन्ही समय आधी रात्रिमें एक देव आया, और चुलणी पिताकी माफीक तीन पुत्रका प्रत्येकका नौ नौ खंड किया, और चोथीवार अग्नमित्ता भार्या जो धर्मकार्यमें सहायता देती थी उन्होंको मारणेका देवने दो तीन दफे कहा तब शकडालने अनार्य समझके पकडनेको उठा यावत् अग्नमित्ता भार्या कोलाहल सुन सर्व पूर्ववत् साढाचौदा वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक व्रत. साढापांच वर्ष प्रतिमा अन्तिम आलोचनापूर्वक एक मासका अनशन कर समाधिसहित काल कर सौधर्म देवलोकके आरुणभूत वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिवाला देवता हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाती-कुलमें उत्पन्न हो फीर दीक्षा लेके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा ॥ इतिशम् ॥

—※(◎)※—

(८) आठवा अध्ययन महाशतकाधिकार।

राजगृह नगर, गुणशीला उद्यान, श्रेणिक राजा, उन्ही नगरमें महाशतक गाथापति बडा ही धनाढ्य था, जिन्होंके रेवंती आदि तेरा भार्यावों थी। चौवीस क्रोडका द्रव्य था, जिन्होंमें आठ क्रोड धरतीमें, आठ क्रोड वैपारमें, आठ क्रोड घरविखरामें और आठ गोकुल अर्थात अस्सी हजार गायों थी। और महाशतकके रेवंती भार्याके बापके घरसे आठ क्रोड सोनैया और अस्सी हजार गायो दानमें आइ थी तथा शेष बारह भार्यावोंके बापके घरसे एकेक क्रोड सोनैया और दश दश हजार गायो दानमें आइ थी। महाशतक नगरमें एक प्रतिष्ठित माननिय गाथापति था।

भगवान वीरप्रभुका पधारणा राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमें हुवा। श्रेणिक राजा तथा प्रजा भगवानको वन्दन करनेको गये। महाशतक भी वन्दन निमित्त गया। भगवानने देशना दी। महाशतकने आनन्दकी माफीक सम्यक्त्व मूल बारह व्रतोच्चारण कीया, परन्तु चौवीस क्रोड द्रव्य और तेरह भार्यावों तथा कांसीपात्रसे द्रव्य देना पीच्छा दुगुनादि लेना, एसा वैपार रखा, शेष त्याग कर जीवादिपदार्थका जानकार हो अपनि आत्मरमणताके अन्दर भगवानकी आज्ञाका पालन करता हुवा विचरने लगा।

एक समय रेवंती भार्या रात्रि समय कुटुम्ब जागरण करती एसा विचार किया कि इन्ही बारह शोक्योंके कारणसे मैं मेरा पति महाशतकके साथ पांचो इन्द्रियोंका सुख भोगविलास स्वतंत्रतासे नहीं कर सकुं; वास्ते इन्ही बारह शोक्योंको अग्निविष तथा शस्त्रके प्रयोगसे नष्ट कर इन्होंके एकेक क्रोड सोनैया तथा

एकेक वर्ग गायोंका मैं अपने कब्जे कर मेरा भरतारके साथ मनुष्य संबन्धी कामभोग अपने स्वतंत्रतासे भोगवती हुइ रहुं।

एसा विचार कर छे शोक्योंको शस्त्र प्रयोगसे और छे शोक्योंको विषप्रयोगसे मृत्युके धामपर पहुंचा दी अर्थात् मार डाली। और उन्होंका बारह क्रोडो द्रव्य और बारह गोकुल अपने कबजे कर महाशतकके साथमें भोगविलास करती हुइ स्वतंत्रतासे रहने लगी। स्वतंत्रता होनेसे रेवंतीनि. मायापतिने मांस मदिरा आदि भक्षण करना भी प्रारंभ कर दीया।

एक समय राजगृह नगरके अन्दर श्रेणिक राजाने अमारी पडह बजवाया था कि किसी भी जीवको कोइ भी मारने नहीं पावे। यह बात सुनके रेवंतीने अपने गुप्त मनुष्योंको बोलाके कहा कि तुम जावो मेरे गायोंके गोकुलसे प्रतिदिन दोय दोय गोणा (वाछरू) मेरेको ला दीया करो। वह मनुष्य प्रतिदिन दोय दोय वाछरू रेवंतीको गुप्त कर देना स्वीकार किया, रेवंती उन्होंका मांस शोला बनाके मदिराके साथ भक्षण कर रही थी।

महाशतक श्रावकसाधिक चौदा वर्ष श्रावक व्रत पालके अपने जेष्ट पुत्रको घरभार सुप्रत कर आप पौषधशालामें जाके धर्मसाधन करने लग गया।

इधर रेवंती मंसमदिरादि आचरण करतां हुइ कामविकारसे उन्मत्त बनके एक समय पौषधशालमें महाशतक श्रावकके पासमें आइ और कामपिडित होके स्वइच्छा श्रृंगारके साथ स्त्रीभाव अर्थात् कामक्रीडाके शब्दोंसे महाशतक श्रावक प्रति बोलती हुइ कि भो महाशतक तुं धर्म पुन्य स्वर्ग और मोक्षका भी हो रहा है, इन्होंकि पिपासा तुमको लग रही है इसकी ही तुमको कंक्षा लग रही है जिससे तुम मेरे साथ मनुष्य सम्बन्धी काम

भोग नही भोगवते हो। ऐसा वचन सुनके महाशतक रेवंतीके वचनोंको आदरसत्कार नहीं दीया और वलाभी नही और अच्छा भी नही जाना. मौन कर अपनी आत्मरमणतामें ही रमण करने लगा। कारण यह सर्व कर्मो की विटम्बना है अज्ञानके जरिये जीव क्या क्या नहीं करता है सर्व कुच्छ करता है। रेवंतीने दो तीन वार कहा परन्तु महाशतकने बीलकुल आदर नही दीया वास्ते रेवंती अपने स्थान पर चली गइ।

महाशतकने श्रावककि इग्यारा प्रतिमा वहन करनेमें साढा पांच वर्ष तक घोर तपश्चर्या कर अपने शरीरको सुके भुखे लुखे बना दीया अन्तिम आलोचना कर अनशन कर दीया। अनशनके अन्दर शुभाध्यवशाया विशुद्ध परिमाण प्रशस्थ लेश्या होनेसे महाशतकको अवधि ज्ञानोत्पन्न हुवा। सो पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें हजार हजार योजन और उत्तर दिशामें चुल हेमवन्त पर्वत उर्ध्व सौधर्म देवलोक अधो प्रथम रत्नप्रभा नरकका लोलुच नामका पाथडाकि चौरासी हजार वर्षोकि स्थिति तकके क्षेत्रको देखने लगा।

रेवंती और भी उन्मत होके महाशतक श्रावक अनशन करा था, वहां पर आइ और भी एक दो तीन वार असभ्य भाषासे भोग आमन्त्रण करी। उन्ही समय महाशतकको क्रोध आया और अवधिज्ञानसे देखके बोलाकि अरे रेवंती! तुं आजसे सात अहोरात्रीमें अलसके रोगके जरिये आर्तरौद्र ध्यानसे असमाधिमें काल करके प्रथम रत्नप्रभा नरकके लोलुच नामके पात्थडेमें चौरासी हजार वर्षोंकि स्थितिवाले नैरियेपने उत्पन्न होगी। यह वचन सुनके रेवंतीको बडा ही भय हुवा त्रास पामी उद्वेग प्राप्त हुवा विचार हुवा कि यह महाशतक मेरे पर कुपित हुवा है न

जाने मुझे कीसकूमौत मारेगा वास्ते पीच्छी हटती हुइ अपने स्थान चली गइ। बस. रेवंतीको सात रात्रीमें उक्त रोग हो के काल कर न्होलुच पाथडेमें चौरासी हजार वर्षकी स्थितिवाले नैरियापने नारकीमें उत्पन्न होना ही पडा।

भगवान वीरप्रभु राजग्रह नगरके गुणशीलोद्यानमें पधारे राजादि वन्दनको आये, भगवानने धर्मदेशना दी। भगवान गौतम स्वामीको आमन्त्रण कर कहते हुये कि हे गौतम! तुम महाशतक श्रावकके पास जावों और उन्होंको कहो कि अनशन किये हुयेको सत्य होने पर भी परमात्माको दुःख हो एसी कठोर भाषा बोलनी तुमको नहीं कल्पे और तुमने रेवंती भार्याको कठोर शब्द बोला है वास्ते उन्हीकी आलोचना प्रतिक्रमण कर प्रायश्चित ले अपनी आत्माको निर्मळ बनावो। गौतमस्वामीने भगवानके बचनोंको सविनय स्वीकार कर वहांसे चलके महाशतक श्रावकके पास आये। महाशतक, भगवानगौतमस्वामीको आते हुये देख हर्ष वन्दन नमस्कार किया। गौतमस्वामीने कहा कि भगवान वीर प्रभु मुझे आपके लीये भेजा है वास्ते आपने रेवंतीको कठोर शब्द कहा है इसकी आलोचना करो। महाशतकने आलोचन कर प्रायश्चित लेके अपनी आत्माको निर्मल बनाके गौतमस्वामी को वन्दन नमस्कार करी वीर गौतमस्वामी मध्य बजार होके भगवानके पास आये। भगवान वीर वहांसे विहार कर अन्य क्षेत्रमें गमन करते हुये।

महाशतक श्रावक एक मासका अनशन कर अन्तिम समाधिपूर्वक काल कर सौधर्म देवलोकके अरुणवतंसिक वैमानमें च्यार पल्योपम स्थितिवाले देवता हुवा, वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष जायेगा। इतिशम्।

(९) नववां अध्ययन नन्दनीपिताधिकार ।

सावत्थी नगरी कोष्टकोद्यान जयशत्रु राजा । उन्ही नगरीमें नन्दनीपिता गाथापती था उन्होंके अश्वनि नामकी भार्या थी और बारह क्रोड सोनइयाका द्रव्य तथा चार गौकुल अर्थात् चालीस हजार गायों थी जैसे आनन्द ।

भगवान पधारे आनन्दकी माफीक श्रावक व्रत ग्रहण किये साधिक चौदा वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक व्रत पालन कीये साढा पांच वर्ष श्रावक प्रतिमा वहन करी अन्तिम आलोचन कर एक मासका अनशन कर समाधिपूर्वक काल कर सौधर्म देवलोकके अरुणग्रवे वैमानमें च्यार पल्योपम स्थितिके देवता हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष जावेगा । इतिशम् ।



(१०) दशवां अध्ययन शालनीपिताधिकार ।

सावत्थी नगरी कोष्टकोद्यान जयशत्रु राजा । उन्ही नगरीमें शालनीपिता नामका गाथापति वसता था । उन्होंके फाल्गुनि नामकी भार्या थी । बारह क्रोड सोनइयाका द्रव्य और चालीस हजार गायों थी ।

भगवान पधारे आनन्दकी माफीक श्रावक व्रत ग्रहण किये । साढा चौदा वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक व्रत, साढा पांच वर्ष श्रावक प्रतिमा वहन करी अन्तिम आलोचन कर एक मासका अनशन कर समाधिपूर्वक काल कर सौधर्म देवलोकमें अरुणकिल वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिमें देवतापणे उत्पन्न हुवे वहां

मे आयुष्य पुर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष जावेगा नववां और दशवां श्रावकको उपसर्ग नही हुवा था। इतिशम्।

॥ इति दश श्रावकोंका संक्षिप्ताधिकार समाप्तं ॥

ग्राम.	श्रावक.	भार्यानाम.	द्रव्यकोड.	गोकुल (गायों)	वैमान नाम.	उपसर्ग.
वाणीयाग्राम	आनन्द	सेवानन्द	१२ कोड	४००००	अरुण	०
चम्पापुरी	कामदेव	भद्रा	१८ ,,	६००००	अरुणाभ	देवकृत
बनारसी	चुलनीपिता	सोमा	२४ ,,	८००००	अरुणप्रभा	,,
बनारसी	सुरादेव	धन्ना	१८ ,,	६००००	अरुणकन्त	,,
आलंभीया	चुल्लशतक	बहुला	१८ ,,	६००००	अरुणश्रेष्ठ	,,
कम्पिलपुर	कुंडकोलीक	फुसा	१८ ,,	६००००	अरुणध्वज	देवमनवर्ती
पोलासपुर	शकडाल	अग्निमित्रा	३ ,,	१००००	अरुणभूत	देवकृत
राजगृह	महाशतक	रेवत्यादि१३	२४ ,,	८००००	अरुणवतंस	रेवतीका
सावत्थी	नन्दनीपिता	अश्विनी	१२ ,,	४००००	अरुणगव	०
सावत्थी	शालनिपिता	फाल्गुनी	१२ ,,	४००००	अरुणकील	०

आचार्य सवसे वीरप्रभु है गृहवासमें श्रावक व्रत साढाचौदे वर्ष प्रतिमा साढापांच वर्ष एवं सर्व वीस वर्ष श्रावक व्रत पालन कर एकेक मासका अनसन समाधिमें कालकर प्रथम सौधर्म देवलोकमें च्यार पल्योपमस्थिति महा विदेहक्षेत्रमें मोक्ष जावेगा। इतिशम

इति उपासगदशांग सार संक्षप्त समाप्तम्

—*—

श्री अन्तगडदशांगसूत्रका संक्षिप्त सार.

(१) पहेला वर्ग जिस्का दश अध्ययन है।

प्रथम अध्ययन—चतुर्थ आरेके अन्तिम यादवकुलशृंगार बालब्रह्मचारी बावीसमा तीर्थंकर श्री नेमिनाथ प्रभुके समयकी बात है कि इस जम्बूद्विपकी भारतभूमिके अलंकार सामान्य बारह योजन लम्बी नव योजन चोडी सुवर्णके कोट रत्नोंके कंगरे गढमढ मन्दिर तोरण दरवाजे पोल तथा उंचे उंचे प्रासाद मानो गगनसेही वार्तो न कर रहेहो और बडे बडे शीखरवाले देवालयपर विजय विजयन्ति पताकावोंपर अवलोकन किये हुवे सिंहादिके चिन्ह जिन्होंके डरके मारे आकाश न जाने उर्ध्व दिशामें गमनकरतेके पीच्छ अति वेगसे जारही हो तथा दुपद चतुष्पद ओर धन्न धान्य मणि माणक मोती परवाल आदिसे समृद्ध ओर भी अनेक उपमा संयुक्त एसी द्वारामती (द्वारका) नामकी नगरीथी। वह नगरी धनपति-कुवेर देवताकि कलाकौशल्यसे रची गइथी शास्त्रकार व्याख्यान करते है कि वह नगरी प्रत्यक्ष देवलोक सदृश मानों अलकापुरी ही निवास कीया हो जनसमुहके मनको प्रसन नेत्रोंको तृप्त करनेवाली बडीही सुन्दराकार स्वरूपसे अपनी कीर्ति सुरलोक तक पहुंचादीथी। नगरीके लोक बडेही न्यायशील स्वसंपत्ती स्वदारासेही संतोष रखतेथे वहलोक परद्रव्य लेनेमें पंगु थे, परस्त्री देखनेमें अन्धे थे, परनिंदा सुननेकों बेरे थे, परापवाद बोलनेकों मुंगे थे, उन्ही नगरीके अन्दर दंडका नाम फक्त मन्दिरों के शिखर पर ही देखा जाते थे और

बन्धका नाम औरतोंकि वेणी पर ही पाये जाते थे। वह नगरी के लोक सदैवके लिये प्रमुदित चित्तसे कामअर्थधर्म मोक्ष इन्हीं च्यारों कार्यमें पुरुषार्थ करते हुये आनन्दपूर्वक नगरीकी शोभामें वृद्धि करते थे।

द्वारकानगरी के बाहार पूर्व और उत्तर दिशाके मध्य भाग इशानकोनमें सिखर टुंक गुफायों मेखलायों कन्दरों निझरणा और अनेक वृक्षलतायोंसे सुशोभनिक रेवन्तगिरि नामका पर्वत था।

द्वारकानगरी और रेवन्तगिरि पर्वत के बिचमें अनेक कुंये वापी सर द्रह और चम्पा, चमेली, केतकि, मोगरा, गुलाब, जाइ, जुइ, दौना, अनार, दाडिम, द्राक्ष, खजुर, नारंगी, नाग पुनागादि वृक्ष तथा नामलता अशोकलता चम्पकलता और भी गुच्छा गुल्म वेलि तृण आदि लक्ष्मीसे अपनी छटाको दीपाते हुवा, भोगी पुरुषों को विलास और योगिपुरुषोंको ज्ञान ध्यान करने योग्य मानो मेरूके दूसरा वनकि माफीक 'नन्दन' वन नामका उद्यान था वह छहों रतुके फल-फूलके लिये बडा ही उदार-दातार था।

उसी नन्दनवनोद्यानमें बहुतसे देवता देवीयों विद्याधर और मनुष्यलोक अपनी अरतीका अन्त कर रतिके साथ रमनता करते थे।

उसी उद्यानके एक प्रदेशमें अच्छे सुन्दर विशाल अनेक स्थानोंपर तोरण, रंभासी मनोहर पुतलीयोंसे मंडित सुरप्पीय यक्षका यक्षायतन था। वह सुरप्पीय यक्ष भी चीरकालका पुराणा था बहुतसे लोकोंके वन्दन पुजन करने योग्य था अगर भक्तिपूर्वक जो उसीका स्मरण करते थे उन्होंके मनोकामना पूर्ण कर अच्छी

प्रतिष्टाको प्राप्त कर अपना नाम "देवसच्चे" एसा विश्व व्यापक कर दीया था।

उसी यक्षायतनके नजीकमें सुन्दर मूल स्कन्ध कन्द शाखा प्रतिशाखा पत्र पुष्प फलसे नमा हुवा श्रमको दुर करनेवाला शीतल छाया सहित आशोक नामका वृक्ष था। जीसके आश्रयमें दुपद चतुष्पद पशु पंखी अति आनंद करते थे।

उसी अशोक वृक्षके नीचे मेघकी घटाके माफीक श्याम वर्ण सुन्दराकार अनेक चित्रविचित्र नाना प्रकारके रुपोंसे अलंकृत सिंहासनके आकार पृथ्वीशीला नामका पट था। इन्ही सर्वका वर्णन उववाई सूत्रसे देखना।

द्वारका नगरीके अन्दर न्यायशील सूरवीर धीर पूर्ण पराक्रमी स्वभुजावोंसे तीन खंडकी राज्यलक्ष्मीको अपने आधिन कर लीथी। सुरनर विद्याधरोंसे पूजित जिन्होंका उज्वल यश तीन लोकमें गर्जना कर रहा था। उत्तरमें वैताढ्यगिरि और पूर्व पश्चिम दक्षिणमें लवण समुद्र तक जिन्होंका राजतंत्र चल रहा है एसा श्रीकृष्ण नामका वासुदेव राजा राज कर रहा था। जिस धर्मराज्यमें बडे बडे सत्वधारी महान् पुरुष निवास कर रहे थे। जैसे कि समुद्रविजयादि [1]दश दसारेण राजा, बलदेव आदि पंच महावीर, प्रद्योतन आदि साढा तीन क्रोड केसरीये कुमर, साम्ब आदि साठ हजार दुर्दांत राजकुमार।

महासेनादि छपन्नहजार बलवन्त वर्ग, वीरसेनादि एकवीसहजार वीरपुरुष उग्गरसेनादि सोलाहजार मुगटबन्ध राजा हा-

---

1 समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमीत, सागर, हेमवन्त, अचल, धरण, पुरण, अभिचन्द वसुदेव इन्ही दशों भाइयोंको शास्त्रकारोंने दश दसारेणके नामसे ओलखाया है।

जरीमें रेहते थे। रुखमणी आदि सोलाहजार अन्तेवर तथा अनेक सेना आदि अनेक हजारों गणकावों और भी बहुतसे राजेश्वर युगराजा तालंवर मांडबी कोटंबी शेठ इभशेठ सेनापति सत्थवहा आदि नगरीके अन्दर आनन्दमें निवास करते थे।

उसी द्वारकानगरीके अन्दर अन्धकावृष्णि राजा अनेक गुणोंसे शोभित तथा उन्होंके धारणी नामकी पट्टराणी सर्वांग सुन्दराकार अपने पतिसे अनुरक्त पांचेन्द्रियोंका सुखभोगवती थी।

एक समय कि बात है कि धारणी राणी अपने सुने योग्य सेजामें सुती थी आधी रात्रीके वखतमें न तो पूर्ण जागृत है न पूर्ण निद्रामें है एसी अवस्थामें राणीने एक सुपेत मोत्योंके हारके माफीक सुपेत। सिंह आकाशसे उतरता हुवा और अपने मुहमें प्रवेश होता हुवा स्वप्नमें देखा। एसा स्वप्न देखते ही राणी अपनि सेजासें[1] उठके जहां पर अपने पतिकि सेजा थी वहांपर आई। राजाने भी राणीका वडा ही सत्कार कर भद्रासन पर बेठनेकि आज्ञा दि। राणी भद्रासन पर बेठी और समाधि के साथ बोली के हे नाथ! आज मुझे सिंहका स्वप्न हुवा है इसका क्या फल होगा। इस बातको ध्यानपूर्वक श्रवण कर बोला कि हे प्रिया! यह महान् स्वप्न अति फलदाता होगा। इस स्वप्नसें पाये जाते है कि तुमारे नव मास परिपूर्ण होनेसे एक शूरवीर पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। राणीने राजाके मुखसे यह सुनके दोनों करकमल शिरपर चढाके बोली "तथास्तु" राजाकी रजा होनेसे राणी अपने स्थानपर चली गइ और विचार करने लगी कि यह मुझे उत्तम स्वप्न मीला है अगर

१ पति और पत्नीकी सेजा अलग अलग थी तवी ही आपस आपसमें स्नेहभावकी हमेशों वृद्धि होती थी नहीं तो " अति परिचयादवज्ञा "

चाणु (१९२) बोलोंको दायचो जिन्होंकी क्रोडों सोनैयोंकी किमत है एसी राजलीलामें दम्पति देवतावोंकी माफीक कामभोग भोगवने लगे। तांके यह भी मालम नहीं पडता था कि वर्ष, मास, तीथी और वार कोनसा है।

एक समयकी बात है कि जिन्होंका धर्मचक्र आकाशमें चल रहा है। भामंडल अज्ञान अन्धकारको हटाके ज्ञानोद्योत कर रहा है। धर्मध्वज नभमें लहेर कर रही है सूवर्णकमल आगे चल रहे है। इन्द्र और करोंडों देवता जिन्होंके चरणकमलकी सेवा कर रहे है एसे बावीसमा तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान अठारे सहस्र मुनि और चालीश सहस्र साध्वीयोंके परिवारसे भूमंडलको पवित्र करते हुवे द्वारकानगरीके नन्दनवनोद्यानको पवित्र करते हुवे।

वनपालकने यह खबर श्री कृष्णनरेश्वरको दी कि हे भूनाथ! जिन्होंके दर्शनोंकी आप अभिलाषा करते थे वह तीर्थंकर आज नन्दनवनमें पधार गये है यह सुनके त्रीखंडभोक्ता कृष्ण वासुदेवने साढेबारह लक्ष द्रव्य खुशीका दिया और आप सिंहासनसे उठके वहांपर ही भगवानको नमोत्थुणं करके कहा कि हे भगवान्! आप सर्वज्ञ हो मेरी वन्दना स्वीकार करावें।

श्रीकृष्ण कोटवालको बोलायके नगरी श्रृंगारनेका हुकम दिया और सेनापतिको बोलाके च्यार प्रकारकी सैना तैयार करनेकी आज्ञा देके आप स्नानमज्जन करनेको मज्जनघरमें प्रवेश करते हुवे।

इधर द्वारकानगरीके दोय तीन च्यार तथा बहुत रास्ते एकत्र होते है। वहां जनसमुह आपस आपसमें वार्तालाप कर रहे थे कि अहो देवानुप्रिय! श्री अरिहंत भगवानके नाम गोत्र श्रवण

करनेका भी महाफल है तो यहाँ नन्दनवनमें पधारे हुवे भगवानको वन्दन-नमस्कार करनेको जाना, देशना सुनना प्रश्नादि पुच्छना। इस फल (लाभ) का तो कहना ही क्या? वास्ते चलो, भगवानको वन्दन करनेको। बस! इतना सुनते ही सब लोक अपने अपने स्थान जाके स्नानमज्जन कर अच्छा२ बहुमूल्य आभूषण वस्त्र धारण कर कितनेक गज, अश्व, रथ, सेविक, समदानी, पिंजस, पालखी आदि पर और कितनेक पैदल चलनेको तैयार हो रहे थे। इधर बडे ही आडंबरके साथ श्रीकृष्ण च्यार प्रकारकी सैन्य लेके भगवानको वन्दनको जा रहा था।

द्वारकानगरीके मध्य बजारसे बडे ही उत्सवसे लोग जा रहे थे, उन्ही समय इतनी तो गडदी थी कि लोगोंका बजारमें समावेश नहीं होता था। एक दुसरेको बोलानेमें इतना तो गुंझ शब्द हो रहा था कि एक दुसरेका शब्द पूर्ण तौरपर सुन भी नहीं सके थे।

जिस समय परिषदा भगवानको वन्दन करनेको जा रही थी, उस समय "गौतमकुमार" अपने अन्तेवरके साथ भोगविलास कर रहा था। जब परिषदाकी तर्फ द्रष्टिपात करते ही कंचुकी (नगरीकी खबर देनेवाला) पुरुषको बुलायके बोला-क्या आज द्वारकानगरीके बाहार किसी इन्द्रका महोत्सव है। नागका, यक्षका, भूतका, वैश्रमणका, नदी, पर्वत, तलाव, कुंवा आदिका महोत्सव है ताके जनसमुह एक दिशामें जा रहा है? कंचुकी पुरुषने उत्तर दिया कि हे नाथ! आज किसी प्रकारका महोत्सव नहीं है। आज यादवकुलके तीलक समान बावीशमा तीर्थंकरका आगमन हुवा है, वास्ते जनसमुह उन्ही भगवानको वन्दन करनेको जा रहा है। यह सुनके गौतमकुमारकी भावना हुइ के इतने

लोक जा रहे है तो अपने भी चल कर वहां क्या हो रहा है वह देखेंगे।

आदेश करते ही रथकारद्वारा च्यार अश्ववाला रथ तैयार हो गया, आप भी स्नानमज्जन कर वस्त्राभूषणसे शरीरको अलंकृत कर रथपर बैठके परिषदाके साथ हो गये। परिषदा पंचाभिगम धारण करते हुवे भगवानके समोसरणमें जाके भगवानको तीन प्रदक्षिणा देके सब लोग अपने अपने योग्यस्थानपर बैठ गये और भगवानकी देशना पानकी अभिलाषा कर रहे थे।

भगवान् नेमिनाथ प्रभुने भी उस आइ हुइ परिषदाको धर्मदेशना देना प्रारंभ किया कि हे भव्य जीवो! इस अपार संसारके अन्दर परिभ्रमण करते हुवे जीव नरक, निगोद, पृथ्वी, अप, तेउ, वायु, वनस्पति और त्रसकायमें अनन्त जन्म-मरण किया है और करते भी है। इस दुःखोंसे विमुक्त करनेमें अग्रेश्वर समकितदर्शन है उन्हीको धारण कर आगे चारित्रराजाका सेवन करो तांके संसारसमुद्रसे जलदी पार करे। हे भव्यात्मन्! इस संसारसे पार होनेके लिये दो नौका है (१) एक साधु धर्म (सर्वव्रत) (२) श्रावक धर्म (देशव्रत) दोनोंको सम्यक् प्रकारसे जाणके जैसी अपनी शक्ति हो उसे स्वीकार कर इसमें पुरुषार्थ कर प्रतिदिन उच्च श्रेणीपर अपना जीवन लगा देंगे तो संसारका अन्त होनेमें किसी प्रकारकी देर नहीं है इत्यादि विस्तारपूर्वक धर्मदेशनाके अन्तमें भगवानने फरमाया कि विषय-कषाय, राग-द्वेष यह संसारवृद्धि करता है। इन्होंको प्रथम त्यागो और दान, शील, तप, भाव, भावना आदिको स्वीकार करो, सबका सारांश यह है कि जीतना नियम व्रत लेते हो उन्होंको अच्छी तरहसे पालन कर आराधीपदको प्राप्त करो तांके शिघ्र शिवमन्दिरमें

पहुंच जावे। कृष्णादि परिषदा अमृतमय देशना श्रवण कर अत्यन्त हर्षसे भगवानको वन्दन-नमस्कार कर स्वस्थान गमन करती हुई।

गौतमकुमार भगवानकी देशना श्रवण करते ही हृदयकमलमें संसारकि असारता भासमान हो गइ। और विचार करने लगा कि यह सुख मैंने मान रखा है परन्तु ये तो अनन्त दुःखोंका एक बीज है इस विषमिश्रत सुखोंके लिये अमूल्य मनुष्यभवको खो देना मुझे उचित नहीं है। एसा विचारके भगवानको वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे त्रैलोक्य पूजनीय प्रभु! आपका वचनकि मुझे श्रद्धा प्रतित हुई और मेरे रोमरोममें रूच गयें है मेरी हाडहाडकी मींजी धर्मरंगसु रंगाइ गइ है आप फरमाते है एसाही इस संसारका स्वरूप है। हे दयालु! आप मेरेपर अच्छी कृपा करी है मैं आपके चरणकमलमें दीक्षा लेना चाहता हुं परन्तु मेरे मातापिताको पुछके मैं पीछा आता हुं। भगवानने फरमाया कि "जहासुखम" गौतमकुमार भगवानको वन्दन कर अपने घर पर आया और माताजीसे कहता हुवा कि हे माताजी! मैं आज भगवानका दर्शन कर देशना सुनी है जिससे संसारका स्वरूप जानके मैं भय प्राप्त हुवा हुं अगर आप आज्ञा देवे तो मैं भगवानके पास दीक्षा ले मेरा आत्माका कल्याण करुं। माता यह वचन पुत्रका सुनते ही मूर्छित हो धरतीपर गीर पडी दासीयोंने शीतल पाणी और वायुका उपचार कर सचेतन करी। माता हुसीयार होके पुत्र प्रति कहने लगी। कि हे जाया! तु मारे एक ही पुत्र है और मेरा जीवनही तेरे आधारपर है और तुं जो दीक्षा लेनेकी बात करता है यह मेरेको श्रवण करनाही कानोंको कंटक तुल्य दुःखदाता है। बस,। आज तुमने यह बात करी है परन्तु आइंदासे हम एसी बातें

सुनना मनसे भि नही चाहती है। जहाँतक तुमारे मातापिता जीवे वहाँतक संसारका सुख भोगवो। जब तुमारे मातापिता कालधर्म प्राप्त हो जाय बाद में तुमारे पुत्रादिकि वृद्धि होनेपर तुमारी इच्छा हो तो खुशीसे दीक्षा लेना।

माताका यह वचन सुन गौतमकुमार बोला कि हे माता! एसा मातापिता पुत्रका भव तो जीव अनन्तीवार कीया है इन्होंसे कुछ भी कल्यान नही है और मुझे यह भी विश्वास नही है कि मैं पहेला जाउंगा कि मातापिता पहिले जावेगा अर्थात् कालका विश्वास समय मात्रका भी नही है वास्ते आप आज्ञा दो तो मैं भगवानके पास दीक्षा ले मेरा कल्यान करुं।

माता बोली हे लालजी! तुमारे बाप दादादि पूर्वजोंके संग्रह कीया हुवा द्रव्य है इन्हीको भोगविलासके काममें लो और देवांगना जेसी आठ राजकन्या तुमको परणाइ है इन्होंके साथ कामभोग भोगवो फीर यावत् कुलवृद्धि होनेसे दीक्षा लेना।

कुमार बोला कि हे माता! मैं यह नही जानता हुं कि यह द्रव्य ओर स्त्रियों पहले जावेगी कि मैं पहला जाउंगा। कारण यह धन जोवन स्त्रियादि सर्व अस्थिर है ओर मैं तो थीरवास करना चाहता हुं वास्ते आज्ञा दो दीक्षा लेउंगा।

माता निराश हो गइ परन्तु मोहनीकर्म जगतमें जबरदस्त है माता बोली कि हे लालजी! आप मुझे तो छोड जावोगा परन्तु पेहला खुब दीर्घदृष्टीसे विचार करीये यह निग्रन्थके प्रवचन एसे ही है कि इन्होंका आराधन करनेवालोंको जन्मजरा मृत्यु आदिसे मुक्तकर अक्षय स्थानको प्राप्त करा देता है परन्तु याद रखो संजम खांडाकी धारपर चलना है, वेलुका कवलीया जेसा असार है, मयणके दान्तोंसे लोहाका चीना चाबना है नदीके सामे पुर चलना

है समुद्रको भुजासे तीरना है हे वत्स ! साधु होनेके बाद शिरका लोच करना होगा। पैदल विहार करना होगा, आवज्जीव स्नान नही होगा घरघरसे भिक्षा मांगनी पडेगी कबी न मीलनेपर ' संतोष रखना पडेगा। लोगोंका दुर्वचन भी सहन करना पडेगा आधाकर्मी उद्देशी आदि दोष रहीत आहार लेना होगा इत्यादि बावीस परिसह तीन उपसर्ग आदिका विवरण कर माताने खुब समझाया और कहा कि अगर तुमको धर्मकरणी करना हो तो घरमें रहके करलो संयम पालना बडाही कठिन काम है।

पुत्रने कहा हे माता ! आपका कहना सत्य है संयम पालना बडाही दुष्कर है परन्तु वह कीसके लिये ? हे जननी ! यह संयम कायरोंके लिये दुष्कर है जो इन्ही लोगके पुद्गलीक सुखोंका अभिलाषी है। परन्तु हे माता ! मैं तेरा पुत्र हु मुझे संजम पालना किंचित् भी दुष्कर नही है कारण में नरक निगोदमें अनन्त दुःख सहन कीया है।

इतना वचन पुत्रका सुन माता समज गई कि अब यह पुत्र घरमें रहनेवाला नही है। तब माताने दीक्षाका बडा भारी महोत्सव कीया जेसेकि थावञ्चापुत्र कुमारका दीक्षा महोत्सव कृष्णमहाराजने कीया था (ज्ञातासूत्र अध्य० ५ वे)इसी माफीक कृष्णवासुदेव महोत्सव कर गौतमकुमारको श्री नेमिनाथ भगवान पासे दीक्षा दरादी । विस्तार देखो ज्ञातासे ।

श्री नेमिनाथ प्रभु गौतमकुमारको दीक्षा देके हितशिक्षा दी कि हे भव्य ! अब तुम दीक्षित हुये हो तो यत्नासे हलनचलन आदि क्रिया करना ज्ञान ध्यानके सिवाय एक समय मात्र भी प्रमाद नही करना।

गौतममुनिने भगवानका वचन सप्रमाण स्वीकार कर स्वल्प

समयमें स्थिवरोंकी भक्ति कर इग्यारा अंगका ज्ञान कण्ठस्थ कर लिया। बादमे श्री नेमिनाथप्रभु द्वारकानगरीसे विहार कर अन्य जनपद देशमें विहार करते हुवे।

गौतम नामका मुनि चोथ छठ अठमादि तपश्चर्या करता हुवा एक दिन भगवान नेमिनाथको वन्दन नमस्कार कर अर्ज की कि हे भगवान! आपकी आज्ञा हो तो मैं "मासीक भिखु प्रतिमा"[1] नामका तप करुं, भगवानने कहा "जहासुखम्" एवं दो मासीक तीन मासीक यावत् बारहवी एकरात्रीक भिखुप्रतिमा नामका तप गौतममुनिने कीया और भी मुनिकी भावना चढ जानेसे वन्दन नमस्कार कर भगवानसे अर्ज करी कि हे दयालु! आपकी आज्ञा हो तो मैं गुणरत्न समत्सर नामका तप करुं। "जहासुखं" जब गौतममुनि गुणरत्न समत्सर तप करना प्रारंभ कीया। पहेले मासमें एकान्तर पारणा, दुसरे मासमें छठ छठ पारणा, तीसरे मासमें अठम अठम पारणा एवं यावत् सोलमे मासमें सोला२ उपवासका पारणा एवं सोला मास तक तपश्चर्या कर शरीरको बीलकुल कृष अर्थात् सूका हुवा सर्पका शरीर माफीक हलते चलते समय शरीरकी हडीका अवाज जेसे काष्टके गाडाकी माफीक तथा सूके हुवे पत्तोंकी माफीक शब्द हो रहा था।

एक समय गौतम मुनि रात्रीमें धर्मचिंतवन कर रहा था उसी समय विचारा कि अब इस शरीरके पुद्गल बिलकुल कमजोर हो गये हैं हलते चलते बोलते समय मुझे तकलीफ हो रही है तो मृत्युके सामने केसरीया कर मुझे तैयार हो जाना चाहिये अर्थात् अनशन करना ही उचित है। बस, सूर्योदय होते ही

---

१ भिखुकी बारह प्रतिमाका विस्तारपूर्वक विवरण दशाश्रुत स्कन्ध सूत्रमें है वह देखो शीघ्रबोध भाग चोथा।

भगवानसे अर्ज करी कि मैं श्रीशत्रुंजय तीर्थ (पर्वत) पर जाके अनशन करुं। भगवानने कहा "जहासुखम्" बस, गौतममुनि सर्व साधुसाध्वीयोंको खमाके धीरे धीरे शत्रुंजय तीर्थ पर स्थिवरोंके साथ जाके आलोचना कर सब बारह वर्षकी दीक्षा पालके अनशन कर दीया. आत्मसमाधिमें एक मासका अनशन पूर्ण कर अन्त समय केवल ज्ञान प्राप्त कर शत्रुओंका जय करनेवाले शत्रुंजय तीर्थ पर अष्ट कर्मोंसे मुक्त हो शाश्वता अव्याबाध सुखोंके अन्दर सादि अनन्त भांगे सिद्ध हो गये। इति प्रथम अध्ययन।

इसी माफीक शेष नव अध्ययन भी समझना यहां पर नाम मात्र ही लिखते है। समुद्रकुमार १ सागरकुमार २ गंभिरकुमार ३ स्तिमितकुमार ४ अन्चलकुमार ५ कपिलकुमार ६ अक्षोभकुमार ७ प्रश्नकुमार ८ विष्णुकुमार ९ एवं यह दश ही कुमार अन्धक विष्णु राजा और धारणी राणीका पुत्र है। आठ आठ अन्तेगर और राज त्याग कर श्रीनेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा ग्रहण करी थी तपश्चर्या कर एक मासका अनशन कर श्रीशत्रुंजय तीर्थ पर कर्मशत्रुओंको हटाके अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये थे इति प्रथम वर्ग समाप्तम्।



(२) दुसरा वर्ग जिसके आठ अध्ययन है।

अक्षोभकुमर १ सागरकुमर २ समुद्रकुमर ३ हेमवन्तकुमर ४ अचलकुमर ५ पूरणकुमर ६ धरणकुमर ७ और अभिचन्द्रकुमर ८ यह आठ कुमारोंके आठ अध्ययन "गौतम" अध्ययनकी माफीक विष्णु पिता धारणी माता आठ आठ अन्तेवर त्यागके श्रीनेमिनाथ भगवान समीपे दीक्षा ग्रहण गुणरत्नादि अनेक प्रकारके तप

कर कुल सोला वर्ष दीक्षा पालके अन्तिम श्रीशत्रुंजय तीर्थपर एक मासका अनशन कर अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें पधार गये इति द्वितीवर्गके आठ अध्ययन समाप्त।



(३) तीसरा वर्गके तेरह अध्ययन है।

(प्रथमाध्ययन)

भूमिके भूषणरुप भद्दलपुर नामका नगर था। उस नगरके इशान कोणमें श्रीवन नामका उद्यान था और जयशत्रु नामका राजा राज कर रहा था वर्णन पूर्वकी माफीक समझना। उसी भद्दलपुर नगरके अन्दर नाग नामका गाथापति निवास करता था वह बडाही धनाढ्य और प्रतिष्ठित था जिन्होंके गृहश्रृंगाररुप सुलसा नामकी भार्या थी वह सुकोमल और स्वरुपवान थी। पतिकी आज्ञा प्रतिपालक थी। नागगाथापति और सुलसाके अंगसे एक पुत्र जनमा था जिसका नाम " अनययश " दीया था वह पुत्र पांच धातृ जेसे कि (१) दुध पीलानेवाली (२) मज्जन करानेवाली (३) मंडन काजलकी टीकी वस्त्राभूषण धारण करानेवाली (४) क्रीडा करानेवाली (५) अंक-एक दुसरेके पास लेजानेवाली इन्ही पांचो धातृ मातासे सुखपुर्वक वृद्धि जेसे गिरिकंदरकी लताओं वृद्धिको प्राप्ति होती है एसे आठ वर्ष निर्गमन होनेके बाद उसी कुमरको कलाचार्यके वहां विद्याभ्यासके लीये भेजा आठ वर्ष विद्याभ्यास करते हुवे ७२ कलामें प्रवीण हो गये नागगाथापतिने भी कलाचार्यको वहुत द्रव्य दीया जब कुमर १६ वर्षकी अवस्था अर्थात् युवक वय प्राप्त हुवा तव मातापिताने वत्तीस

इभ सेठोंकी ३२ वर तरुण जोवन लावण्य चातुर्यता युक्त वय सर्व कुमरके सदृश देखके एकही दिनमें ३२ वर कन्याओंके साथमें कुमरका पाणिग्रहण (विवाह) कर दीया उसी बत्तीस कन्याओंके पिताओं नागसेठको १९२ बोलोंका जेसे कि बत्तीस क्रोड सोनइयाका, बत्तीस क्रोड रुपइया, बत्तीस हस्ती, बत्तीस अश्व, रथ दास दासीयों दीपक सेज गोकल आदि बहुतसा द्रव्य दीया नागशेठके बहुओं पगे लागी उसमें वह सर्व द्रव्य बहुओंको दे दीया नागशेठने बत्तीस बहुवोंके लीये बत्तीस प्रासाद और बीचमें कुमरके लीये बडा मनोहर महेल बना दीया जिन्होंकि अन्दर बत्तीस सुरसुन्दरीयोंके साथ मनुष्य सम्बन्धी पंचेन्द्रियके भोग सुखपुर्वक भोगवने लगे।

बत्तीस प्रकारके नाटक हो रहे थे मर्दंगके शिर फुट रहे थे जिन्होंसे काल जानेकि मालम तक कुमरको नही पडती थी यह सब पूर्व किये हुये सुकृतके फल है।

पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुये बावीसमा तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान सपरिवार–भद्रलपुर नगरके श्रीवनोद्यानमें पधारे। राजा च्यार प्रकारकी सैनासे तथा नगर निवासी बडे ही आडम्बरके साथ भगवानको वन्दन करनेको जा रहे थे। उस समय अनयवशकुमर देखके गौतमकुमर कि माफीक भगवानको वन्दन करनेको गया भगवान की देशना सुन बत्तीस अन्तेवर और धनधान्य को त्यागके प्रभु पासे दीक्षा ग्रहण करके सामायिकादि चाउदे पूर्व ज्ञानाभ्यास कीया। बहुत प्रकारकि तपश्चर्या कर सर्व वीस वर्ष कि दीक्षापालनकर अन्तमें श्री शत्रुंजय तीर्थपर एक मासका अनसनकर अन्तिम केवलज्ञान प्राप्त कर शास्वते सिद्धपदको वरलीया इति प्रथमाध्ययन।

इसी माफीक अनंतसेन (१) अनाहितसेन (२) अजितसेन (३) देवयश (४) शत्रुसेन (५) यह छवों नागसेठ सुलसा शेठाणी के पुत्र है वत्तीस वत्तीस रंभावोंको त्याग नेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा ले चौदा पूर्व अध्ययनकर सर्व वीस वर्ष दीक्षा व्रत पाल अन्तिम सिद्धाचलपर एकेक मासका अनसनकर चरम समय केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गया इति छे अध्ययन।

सातवा अध्ययन—द्वारका नगरीमें वसुदेव राजा के धारणी राणी सिंह स्वप्न सूचित–सारण नामका कुमरका जन्म पूर्ववत् ७२ कलाप्रविण ५० राजकन्यावोंका पाणीग्रहण पचास पचास वोलोंका दत्त भोगविलासमें मग्न था। नेमिनाथप्रभु कि देशना सुण दीक्षा ले चौदा पूर्वका ज्ञान। वीस वर्ष दीक्षापालके अन्तिम श्री सिद्धाचलजी पर एक मासका अनसन अन्तमें केवलज्ञान प्राप्तीकर मोक्ष गये। इति सप्तमाध्ययन समाप्त।

आठवाध्ययन—द्वारका नगरीके नन्दनवनोद्यानमें श्री नेमिनाथ भगवान समोसरते हुवे। उस समय भगवानके छे मुनि सगे भाइ सदृशत्वचा वय वडेही रूपवन्त नलकुवेर (वैश्रमणदेव) सदृश जिस समय भगवान पासे दीक्षा ली थी उसी दिन अभिग्रह किया था कि यावत्‌जीव छठ तप–पारणा करना। जब उन्ही छवों मुनियोंके छठका पारणा आया तब भगवानकि आज्ञा ले दो दो साधुओंके तीन संघाडे हो के द्वारका नगरीका सहस्र वनोद्यानसे निकल द्वारका नगरीमें समुदाणी भिक्षा करते हुवे प्रथम दो साधुवोंका सिंघाडा वसुदेव राजा कि देवकी नाम कि राणीका मकानपर आये। मुनियोंको आते हुवे देख के देवकी राणी अपने आसन से उठके सात आठ पग सामने गइ और भक्तिपूर्वक वन्दन नमस्कार कर जहाँ भात–पा-

णीका घर था वहां मुनिको लेगइ वहां पर सिंह केसरिया मोदक उज्वल भावनासे दान दीया बादमें सत्कारपूर्वक विदा कर दीये। इतनेमें दुसरे सिंघाडे भि समुदाणी भिक्षा करते हुवे देवकीराणीके मकान पर आ पहुंचे उन्होंको भी पूर्वके माफीक उज्वल भावनासे सिंह केसरिये मोदकका दान दे विसर्जन किया। इतनेमें तीसरे सिंघाडेवाले मुनि भि समुदाणी भिक्षा करते देवकीराणीके मकानपर आ पहुंचे। देवकीराणीने पुर्वकी माफीक उज्वल भावनासे सिंह केसरिये मोदकोंका दान दीया। मुनिवर जाने लगे। उस समय देवकीराणी नम्रतापूर्वक मुनियोंसे अर्ज करने लगी कि हे स्वामिनाथ! यह कृष्ण वसुदेवकी द्वारकानगरी जो बारह योजनकि लम्बी नव योजनकि चोडी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक सदृश जिन्होंके अन्दर बडे बडे लोक निवास करते है परन्तु आश्चर्य यह है कि क्या श्रमण निग्रन्थोंको अटन करने पर भि भिक्षा नहीं मिलती हे कि वह वार वार एक ही कुल (घर) के अन्दर भिक्षाके लिये प्रवेश करते है?* मुनियोंने उत्तर दिया कि हे देवकीराणी! एसा नहीं है कि द्वारकानगरीमें साधुयोंको आहारपाणी न मीले परन्तु हे श्राविका तुं ध्यान दे के सुन भद्रलपुर नगरका नागशेठ और सुलसाभार्याके हम छ पुत्र थे हमारे माता-पिताने हम छेवों भाइयोंको बत्तीस बत्तीस इभ्य शेठोंकि पुत्रीयों हमको परणाइथी दानके अन्दर १९२ बोलोंमें अगणित द्रव्य आया था हम लोग संसारके सुखोंमें इतने तो मस्त बन गये थे कि जो काल जाता था उन्होंका हमलोगोंको ख्याल भी नहीं था। एक समय जादवकुल श्रृंगार बावीसमा तिर्थंकर नेमिनाथ

* मुनियोंने स्वप्रज्ञासे जान लिया कि हमारे दोय सिंघाडे भी पेहला यहांसे ही आहार-पाणी ले गये होंगे वास्ते ही देवकीराणीने यह प्रश्न कीया है तो अब इन्होंकी शंकाका पूर्ण ही समाधान करना चाहिये।

भगवान वहांपर पधारे थे उन्हों कि देशना सुन हम छवों भाइ संसारके सुखोंको दुःखोंकि खान समझके भगवानके पासमें दीक्षा ले अभिग्रह कर लिया कि यावत् जीव छठ छठ पारणा करना। हे देवकी! आज हम छवों मुनिराज छठके पारणे भगवानकि आज्ञा ले द्वारका नगरीके अन्दर समुदाणी भिक्षा करनेको आये थे हे वाइ! जो पेहले दोय सिंघाडे जो तुमारे वहां आगये थे वह अलग है और हम अलग है अर्थात् हम दोय तीनवार तुमारे घर नहीं आये है। हम एक ही वार आये है एसा कहके मुनि तो वहांसे चलके उद्यानमें आ गये।

वाद में देवकीराणीकों एसे अध्यवसाय उत्पन्न हुवे कि पोलासपुर नगरमें अमंता नामके अनगारने मुझे कहा था कि हे देवकी! तुं आठ पुत्रोंकों जनम देगी वह पुत्र अच्छे सुन्दर स्वरूपवाले जेसे कि नल-कुवेर देवता सदृश होगा, दुसरी कोइ माता इस भरतक्षेत्रमें नहीं है। जोकि तेरे जैसे स्वरूपवान पुत्रको प्राप्त करे। यह मुनिका वचन आज मिथ्या (असत्य) मालुम होता है क्यों कि यह मेरे सन्मुख ही ६ पुत्र देखनेमें आते है कि जो अभी मुनि आये थे। और मेरे तो एक श्रीकृष्ण ही है देवकीने यह भी विचार कीया कि मुनियोंके वचन भी तो असत्य नहीं होते है। देवकी राणीने अपनी शंका निवृत्तन करनेको भगवान नेमिनाथजीके पास जानेका इरादा कीया। तब आज्ञाकारी पुरुषोंकों वुलवायके आज्ञा करी कि चार अश्ववाला धार्मीक रथ मेरे लीये तैयार करो। आप स्नान मज्जन कर दासीयों नोकर चाकरोंके वृन्दसे वडेही आडम्बरके साथ भगवानको वन्दन करनेको गइ विधिपुर्वक वन्दन करनेके वादमें भगवान् फरमाते हुवे कि हे देवकी! तुं छे मुनियोंको देखके

अमन्ता मुनिके वचनमें असत्यकी शंका कर मेरे पास पुछनेको आइ है। क्या यह बात सत्य है ? हाँ भगवान यह बात सत्य है में आपसे पुछनेको ही आइ हुं।

भगवान नेमिनाथ फरमाते है कि हे देवकी ! तुं ध्यान देके सुन। इसी भरतक्षेत्रमें भद्दलपुर नगरके अन्दर नागसेट और सुलसा भार्या निवास करते थे। सुलसाको बालपणेमें एक निमत्तीयेने कहा था कि तुं मृत्यु बालकको जनम देवेगी उस दिनमें सुलसाने हिरणगमेसी देवकी एक मूर्ति बनाके प्रतिदिन पुजा कर पुष्प चढाके भक्ति करने लगी। एसा नियम कर लीया कि देव की पुजा भक्ति विना किये आहार निहार आदि कुछ भी कार्य नही करना। एसी भक्तिसे देवकी आराधना करी। हिरणगमेसी देव सुलसाकी अति भक्तिसे संतुष्ट हुवा। हे देवकी ! तुमारे और सुलसाके साथही में गर्भ रहता था और साथही में पुत्रका जन्म होता था उसी समय हिरणगमेसी देव सुलसाके मृत बालक तेरे पास रखके तेरा जीता हुवा बालकको सुलसाको सुप्रत कर देता था। वास्ते दरअसल यह छवों पुत्र सुलसाका नही किन्तु तुमारा ही है। एसे भगवानके वचन सुन देवकीको बडे ही हर्ष संतोष हुवा भगवानको वन्दन नमस्कार कर जहाँ पर छे मुनि था वहां पर आई उन्होंको वन्दन नमस्कार कर एक दृष्टिसे देखने लगी इतनेमें अपना स्नेह इतना तो उत्सुक हो गया कि देवकीके स्तनोमें दुध वर्षने लगा और शरीरके रोम रोम वृद्धिको प्राप्त हो देह रोमांचित हो गइ। देवकी मुनिओंको वन्दन नमस्कार कर भगवानके पास आके भगवानको प्रदक्षिणापुर्वक वन्दन करके अपने रथ पर बैठके निज आवास पर आगइ।

देवकीराणी अपनि शय्याके अन्दर बेठीथी उन्ही समय

एसा अध्यवसाय उत्पन्न हुवाकि मैं नलकुबेर सदृश सातपुत्रोंकों ज़न्म दीया परन्तु एक भी पुत्रकों मेरे स्तनोंका दुध नही पीलाया लाडकोड नही कीया रमत नही रमाया खोलेमें-गोदमें नही हुलराया बच्चोंकि मधुर भाषा नही सुनी इत्यादि मेने कुच्छभी नही कीया, धन्यहे जगतमें वह माताकि जो अपने बालकोंकों रमाते है खेलाते है यावत् मनुष्यभवकों सफल करते है। मैं जगतमें अधन्या अपुन्या अभागी हु कि सात पुत्रोंमें एक श्रीकृष्णकों देखती हु सो भी छे छे माससे पगवन्दन मुजरां करनेको आता है। इसी बात कि चिंतामे माता बेठीथी।

इतनेमें श्री कृष्ण आया और माताजी के चरणोंमें अपना शिर जुकाके नमस्कार किया; परन्तु देवकितो चिंताग्रस्तथी। उन्होंकों मालमही क्यों पडे। तब श्री कृष्ण बोलाकि हे माताजी अन्यदिनोंमें मैं आताहुं तब आप मुझे आशिर्वाद देते हैं मेरे शिरपर हाथ धरके बात पुछते हो ओर आज में आया जिस्की आपको मालमही नहीं है इसका क्या कारण है?

देवकी माता बोली कि हे पुत्र! भगवान नेमिनाथद्वारा मालुम हुइ है कि मैं सात पुत्र रत्नकों जनम दिया है जिस्में तुं एकही दीखाई देताहै। छ पुत्रतो सुलसाके वहां वृद्धिहोके दीक्षा ले लि। तुं भी छे छे माससे दीखाइ देता है वास्ते धन्य है वह माताओंको कि अपने पुत्रोंकों बालवयमें लाड करे.

श्रीकृष्ण बोलाकि हे माताजी आप चिंता न करो। मेरे छोटाभाइहोगा एसा मैं प्रयत्न करूगा अर्थात् मेरे छोटाभाइ अवश्य होगा उसे आप खेलाइये (एसे मधुर वचनोंसे माताजीकों संतोष देके श्री कृष्ण वहांसे चलके पौषदशालामे गया हरण गमेषी देवकों अष्टम कर स्मरण करने लगा। हरणगमेषी देव आयके बोला हे

मांसंडभोक्ता! आपके लघु बन्धव होगा परन्तु बलभावसे मुक्त होके श्री नेमिनाथ भगवानके पास दीक्षा लेगा। दोय तीनवार एसा कहके देव नीज स्थान चला गया। श्री कृष्ण पौषद पार माताजी पासे आके कह दीया कि मेरे लघु बन्धव होगा तदनंतर श्रीकृष्ण अपने स्थान पर चले गये।

देवकी राणीने एक समय अपने सुखसेजाके अन्दर सुती हुइ सिंहका स्वप्ना देखा। तदनुसार नव मास प्रतिपूर्ण साडा सात रात्री बीत जाने पर गजके तालव, लाखफेरस, उदय होता सूर्यके माफीक पुत्रको जन्म दीया. सर्व कार्य पूर्ववत् कर कुमरका नाम "गजसुकुमाल" दे दीया। देवकी राणीने अपने मनके मनोरथोंको अच्छी तरह पूर्ण कर लीया। गजसुकुमाल ७२ कलामें प्रवीण हो गया, युवक अवस्था भी प्राप्त हो गइ।

द्वारका नगरीमें सोमल नामका ब्राह्मण जिसकी सोमश्री नामकी भार्याके अंगसे सोमा नामकी पुत्री उत्पन्न हुइ थी वह सोमा युवावस्थाको धारण करती हुइ उत्कृष्ट रूप जोवन लावण्य चतुरता को अपने आधिन कर रखा था. एक समय सोमा स्नानमज्जन कर वस्त्राभूषण धारण कर बहुतसे दासीयोंके साथ राजमार्गमें क्रीडा कर रही थी।

द्वारका उद्यानमें श्रीनेमिनाथ भगवान पधारे। खबर होने पर नगरलोक वन्दनको जाने लगे। श्रीकृष्ण भी बडे ठाठसे हस्ती पर आरूढ हो गजसुकुमालको अपने गोदके अन्दर बेठाके भगवानको वन्दन करनेको जा रहा था।

रस्तेमें सोमा खेल रही थी उन्हीका रूप जोवन लावण्य देख विस्मय हो श्री कृष्णने नोकरोंसे पुछा कि यह कीसकी

लडकी है ? आदमी बोले कि यह सोमल ब्राह्मणकी लडकी है कृष्णने कहा कि जावो इसको कुमारे अन्तेवरमें रख दो गजसुकुमालके साथ इसका लग्न कर दीया जावेगा। आज्ञाकारी पुरुषोंने सोमाके बापकी रजा ले सोमाको कुमारे अन्तेवरमें रख दी।

कृष्णवासुदेव गजसुकुमालादि भगवान समीप वन्दन नमस्कार कर योग्य स्थान पर बेठ गये। भगवानने धर्मदेशना दी. हे भव्य जीवों! यह संसार असार है जीव रागद्वेषके बीज बोके फीर नरक निगोदादीके दुःखरुपी फलोंका आस्वादन करते हैं "खीण-मत्त सुखा बहुकाल दुःखा" क्षणमात्रके सुखोंके लीये दीर्घकालके दुःखोंको खरीद कर रहे हैं। जो जीव बाल्यावस्थामें धर्मकार्य साधन करते है वह रत्नोंके माफीक लाभ उठाते है जो जीव युवावस्थामें धर्मकार्य साधन करते है वह सुवर्णकी माफीक और जो वृद्धावस्थामें धर्म करते है वह रुपेकी माफीक लाभ उठाते है। परन्तु जो उम्मरभरमें धर्म नहीं करते हैं वह दालीद्र लेके परभव जाते है वह परम दुःखको भोगवते है। वास्ते हे भव्य! यथाशक्ति आत्मकल्याणमें प्रयत्न करो इत्यादि देशना श्रवण कर यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान कर परिषदा स्वस्थान गमन करती हुइ। गजसुकुमाल भगवानकी देशना सुन परम वैराग्यको धारण करता हुवा बोला कि हे भगवान! आपका फरमाया सत्य है मैं मेरे मातपिताओंसे पुछके आपके पास दीक्षा लेउंगा ? भगवानने कहा "जहासुखम्" गजसुकुमाल भगवानको वन्दन कर अपने घरपर आया मातासे आज्ञा मांगी यह बात श्रीकृष्णको मालुम हुइ कृष्णने कहा हे लघु बान्धव! तुम दीक्षा मत लो राज करो। गजसुकुमाल बोला कि यह राज, धन, संप्रदा सभी कारमी है और मैं अक्षय सुख चाहता हुं अनुकूल प्रतिकूल बहुतसे प्रश्न हुवे परन्तु जिसको आन्तरीक वैराग्य हो उसको कोन मीटा सकते

है। आखीरमें श्री कृष्ण तथा देवकी माताने कहा कि हे लालजी! अगर तुमारा एसाही इरादा हो तो तुम एक दिनका राज्यलक्ष्मी को स्वीकार कर हमारा मनोरथको पुरण करो। गजसुकुमालने मौन रखी। बडे ही आडम्बरसे राज्याभिषेक करके श्रीकृष्ण बोला कि हे भ्रात आपक्या इच्छते है? आदेश दो गजसुकमालने कहा कि लक्ष्मीके भंडारमें तीन लक्ष सोनइया नीकालके दोलक्षके रजो-हरण पात्रे और एक लक्ष हजमको दे दीक्षायोग हजाम करायां। कृष्ण नरेश्वरने महायलकी माफीक बडा भारी महोत्सव करायके नेमिनाथजीके पास गजसुकुमालको दीक्षा दिरा दी। गजसुखमाल मुनि इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य पालन करने लगा। उसी दिन गजसुकुमाल मुनि भगवानको वन्दन कर बोला कि हे सर्वज्ञ! आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल नामके स्मशानमें जाके ध्यान करुं। भगवानने कहा "जहासुखं" भगवानको वन्दन कर स्मशा-नमें जाके भूमिका प्रतिलेखन कर शरीरको किंचित् नमायके साधुकी बारहवी प्रतिमा धारण कर ध्यान करने लग गया।

इधर सोमल नामका ब्राह्मण जो गजसुकुमालजीके सुसरा था वह विवाहके लिये समाधिके काष्टतृण दुर्वादि लानेकों नगरी बाहार पेहला गया था सबे सांमग्री लेके पीछा आ रहाथा वह महाकाल स्मशानके पाससे जाता हुवा गजसुकुमाल मुनिकों देखा (उस वख्त श्याम (संज्ञा) काल हो रहाथा) देखते ही पूर्व भवका वैर स्मरणमें होते ही क्रोधातुर हो बोला कि भो गजसुकु-माल! हीणपुन्या अंधारी चवदसके जन्मा हुवा आज तेरा मृत्यु आया है कि मेरी पुत्री सोमाकों विनोंही दुषण त्यागन कर तुं शिरकों मुंडाके यहां ध्यान किरता है एसा वचन बोलके दिशा-वलोकन कर सरस मट्टी लाके मुनिके शिरपर पाल बाधी मानोके

सुसराजी शिरपर एक नवीन पेचाही बंधा रहा है। फीर स्मशानमें खेर नामका काष्ट जल रहाथा उन्हीका अंगार लाके वह अग्नि गजसुकुमालके शिरपर धर आप वहांसे चला गया। गजसुकमालमुनिको अत्यन्त वेदना होनेपरभी सोमल ब्राह्मणपर लगारभी द्वेष नही कीया। यह सब अपने किये हुवे कर्मोकाही फल समझके आनन्दके साथ करजाको चुका रहाथा। एसा शुभाध्यवसाय, उज्वल परिणाम, विशुद्ध लेश्या, होनेसे च्यार घातीयां कर्मोका क्षयकर केवलज्ञान प्राप्ती कर अन्तगढ केवली हो अनन्ते अव्याबाध शास्वत सुखोंमे जाय विराजमान होगये अर्थात गजसुकुमालमुनि दीक्षा ले एकही रात्रीमें मोक्ष पधार गये। नजीकमें रेहनेवाले देवतावोंने वडाही महोत्सव कीया पंचवर्णके पुष्पों आदि ५ द्रव्यकि वर्षा करी और वह गीत–गान करने लगे।

इधर सूर्योदय होतेही श्रीकृष्ण गज असवारीकर छत्र धरावाते चमर उढते हुवे बहुतसे मनुष्योंके परिवारसे भगवानको वंदन करनेको जा रहाथा। रहस्तेमें एक वृद्ध पुरुष वडी तकलीफके साथ एकेक ईंठ रहस्तेसे उटाके निज घरमें रखते हुवेको देखा। कृष्णको उन्ही पुरुषकी अनुकम्पा आइ आप हस्तीपर रहा हुवा एक ईंट लेके उन्ही वृद्ध पुरुषके घरमें रखदी एसा देखके सर्व लोकोंने एकेक ईंट लेके घरमें रखनेसे वह सर्व ईंटोंकी रासी एकही साथमें घरमें रखी गई फीर श्री कृष्ण भगवानके पासे जाके वन्दन नमस्कार कर इधर उधर देखेते गजसुकुमालमुनि देखनेमें नही आया तब भगवानसे पुच्छा कि हे भगवान मेरा छोटाभाइ गजसुकुमाल मुनि कहां है मै उन्होंसे वन्दन करू ?

भगवानने कहाकि हे कृष्ण! गजसुखमालने अपना कार्य सिद्ध कर लिया। कृष्ण कहाकि केसे। भगवानने कहाकिं गज-

सुकुमाल दीक्षा ले-महाकाल स्मशानमे ध्यान धरा वहां एक पुरुष उन्ही मुनिको सहायता अर्थात शिरपर अग्नि रख देणेसे मोक्ष गया.

कृष्ण बोलाकि हे भगवान उन्ही पुरुषने केसे सहायता दी। भगवानने कहाकि हे कृष्ण! जेसे तुं मेरे प्रति वन्दनकों आ रहा था रहस्तेमें वृद्ध पुरुषको साहिता दे के सुखी कर दीया था इसी माफीक गजसुखमालकों भी सुखी कर दीया है।

हे भगवान एसा कोन पुन्यहीन कालीचौदसका जन्मा हुवा है कि मेरा लघु बांधवकों अकाल मृत्युधर्म प्राप्त करा दीया अब मैं उन्ही पुरुषकों केसे जान सकु। भगवानने कहा हे कृष्ण तुं द्वारामतीमें प्रवेश करेगा उस समय वह पुरुष तेरे सामने आते ही भयभ्रांत होके धरतीपर पडकेमृत्यु पामेगा उसको तुं समजना कि यह गजसुखमालमुनिको साज देनेवाला है। भगवानकों वन्दनकर कृष्ण हस्तीपर आरूढ हो नगरीमें आते समय भाइकी चिंताके मारे राजरहस्तेको छोडके दुसरे रहस्ते जा रहाथा।

इधर सोमल ब्राह्मणने विचारा कि श्रीकृष्ण भगवानके पास गये है और भगवान तो सर्व जाणे है मेरा नाम बतानेपर नजाने श्री कृष्ण मुजे कोन कुमोत मारेगा तो मुजे यहांसे भाग जाना ठीक है यहभी राजरहस्ता छोडके उन्ही रहस्ते आया कि जहांसे श्रीकृष्ण जा रहाथा। श्री कृष्णको देखते ही भयभ्रांत हो धरतीपर पडके मृत्यु धर्मके शरण हो गया श्री कृष्णने जानलियाकि यह दुष्ट मेरे भाइको अकाल मृत्युका साहाज दीया है फोर श्रीकृष्णने उन्ही सोमलके शरीरकी बहुत दुर्दशा कर अपने स्थानपर गमन करता हुवा। इति तीजा वर्गका अष्टमा गजसुकुमालमुनिका अध्ययन समाप्तम्।

नवमाध्ययन-द्वारका नगरी वलदेवराजा धारणी राणीके सिंह स्वप्न। सूचित सुमुह नामका कुमरका जन्म हुवा कलाप्रविण पचास राजकन्यावोंके साथ कुमारका लग्न कर दीया दतदायजो पूर्व गौतमकि माफीक यावत् भोगविलासोंमें मग्न हो रहाथा।

श्री नेमिनाथ भगवानका आगमन। धर्म देशना श्रवण कर सुमुह कुमार संसार त्याग दीक्षाव्रत ग्रहन कीया चौदा पूर्व ज्ञान वीस वरस दीक्षा व्रत एक मासका अनसन श्री शत्रुंजय तीर्थपर अन्तिम केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। इसी माफीक दशवा ध्ययनमें दुमुहकुमार इग्यारवा ध्ययनमें कोवीदकुमार यह तीनो भाइ वलदेवराजा धारणी राणीके पुत्र दीक्षा लेके चौदाह पूर्व ज्ञान वीस वर्ष दीक्षा एक मास अनसन शत्रुंजय अन्तगड केवली हो मोक्ष गये। और बारहवा दारुणकुमार तेरवा अनाधीठकुमार यह वासुदेवराजा धारणीराणीके पुत्र पचास अन्तेवर त्याग दीक्षा ले सुमुहकि माफीक श्री सिद्धाचल तीर्थपर अन्तगड केवली हो मोक्ष गया। इति तीजा वर्गके तेरवां अध्ययन तीजा वर्ग समाप्तम्।



(४) चोथा वर्गका दश अध्ययन।

द्वारामती नगरी पूर्ववत् वर्णन करने योग्य है। द्वारामतीमें वसुदेवराजा धारणी राणी सिंह स्वप्न सूचित जाली नामका कुमारका जन्म हुवा मोहत्सव पूर्ववत् कलाचार्यसे ७२ कलाभ्यास जोवन वय ५० अन्तेवरसे लग्न दतदायजो पूर्ववत्।

श्री नेमिनाथ भगवानकी देशनासुन दीक्षा लीनी द्वादशांगका ज्ञान सोलावर्ष दीक्षापाली शत्रुंजय तीर्थपर एक मासका अनसन अन्तिम केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गया इति। इसी माफीक

(२) मयालीकुमर (३) उवयायालीकुमर (४) पुरुषसेन (५) वारिसेन यह पांचो वासुदेव धारणीसुत (६) प्रजुनकुमार परन्तु कृष्णराजा रूक्मिणी सुत (७) सम्बुकुमार परन्तु कृष्णराजा जंबुवन्ती राणीका पुत्र (८) अनिरुद्धकुमर परन्तु प्रजुन पिता वेदरबी माता (९) सत्यनेमि (१०) द्रढनेमि परन्तु समुद्रविजय राजा सेवादेवीके पुत्र है। यह दशों राजकुमार पचास पचास अन्तेयर त्याग बावीशमा तीर्थंकर पासे दीक्षा द्वादशांगका ज्ञान सोले वर्ष दीक्षा शत्रुंजय तीर्थ पर एक मासका अनशन अन्तिम केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये इति चोथो वर्ग दश अध्ययन समाप्तं।



(५) पांचमा वर्गके दश अध्ययन.

द्वारिका नगरी कृष्णवासुदेव राजा राज कर रहा था यावत् पुर्वकी माफक समझना। कृष्ण राजाके पद्मावती नामकी अग्र महिषी राणी थी। स्वरुप सुन्दराकार यावत् भोगविलास करती आनन्दमें रहेती थी।

श्रीनेमिनाथ भगवानका आगमन हुवा कृष्णादि बडे ही ठाठ से वन्दन करनेको गये पद्मावती राणी भी गइ। भगवानने धर्मदेशना फरमाइ। परिषदा श्रवण कर यथाशक्ति त्याग वैराग कर स्वस्वस्थाने गमन कीया, कृष्ण नरेश्वर भगवानको वन्दन नमस्कार कर अर्ज करी कि हे भगवान सर्व वस्तु नाशवान हैं तो यह प्रत्यक्ष देवलोक सदृश द्वारिका नगरीका विनाश मूल कौन कारण से होगा?

भगवानने फरमाया हे धराधिप द्वारिका नगरीका विनाश

मदिरा प्रसंग द्विपायनके कारण अग्निके योगसे द्वारिका नष्ट होगा।

यह सुनके वासुदेवने बहुत पश्चाताप किया और विचारा कि धन्य है जालीमयाली यावत् दृढ नेमिको जो कि राज धन अन्तेवर त्यागके दीक्षा ग्रहण करी। मैं जगतमें अधन्य अपुन्य अभाग्य जो कि राज अन्तेवरादि कामभोगमें गृहीत हो रहा हुं ताके भगवानके पास दीक्षा लेनेमें असमर्थ हुं।

कृष्णके मनकी वातोंको ज्ञानसे जानके भगवान बोले कि क्युं कृष्ण तेरा दीलमें यह विचार हो रहा है कि मैं अधन्य अपुन्य हुं यावत् आर्तध्यान करता है क्या यह वात सत्य है? कृष्णने कहा हाँ भगवान सत्य है। भगवानने कहा हे कृष्ण! यह वात न हुइ न होगा कि वासुदेव दीक्षा ले। कारण सव वासुदेव पुर्व भव निदान करते है उस निदानके फल हे कि दीक्षा नहीं ले सके।

कृष्णने प्रश्न किया कि हे भगवान! मैं जो आरंभ परिग्रह राज अन्तवरमें मुर्छित हुवा हुं तो अव फरमाइये मेरी क्या गति होगी?

भगवानने उत्तर दीया कि हे कृष्ण यह द्वारिका नगरी मदिरा अग्नि और द्विपायणके योगसे विनाश होगी, उसी समय मातपिताको निकालनेके प्रयोगसे कृष्ण और वलभद्र द्वारिकासे दक्षिणकी वेली सन्मुख युधिष्ठिर आदि पांच पांडवों की पंडु मथुरा होके कसुंवी वनमें वड वृक्षके नीचे पृथ्वीशीला पटके उपर पीत वस्त्रसे शरीरको आच्छादित कर सुवेगा, उस समय जराकुमार तीक्ष्ण वाण वाम पांवमें मारनेसे काल कर तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वीमें जाय उत्पन्न होगा।

यह बात सुन कृष्णको वडा ही रंज हुवा कारण मैं पसी

साहिबीकाधाणी आखीर उसी स्थानमें जाउंगा। एसा आर्तध्यान कर रहा था।

एसा आर्तध्यान करता हुवा कृष्णको देखके भगवान बोले कि हे कृष्ण तुं आर्तध्यान मत कर तुम तीजी पृथ्वीमें उज्वल वेदना सहन कर अन्तर रहीत वहांसे नीकलके इसी जम्बुद्वीपके भरतक्षेत्रकी आवती उत्सर्पिणीमें पुंड नामका जिनपद देशमें सत्यद्वारा नगरीमें [1]बारहवा अमाम नामका तीर्थंकर होगा। वहां बहुत काल केवलपर्याय पाल मोक्षमें जावेगा।

कृष्ण नरेश्वर भगवानका यह वचन श्रवण कर अत्यंत हर्ष संतोषको प्राप्त हो खुशीका सिंहनाद कर हाथलसे गर्जना करता हुवा विचार करा कि मैं आवती उत्सर्पिणीमें तीर्थंकर होउंगा तो बीचारी नरकवेदना कोनसी गीनतीमें है। सहर्ष भगवन्तको वन्दन नमस्कार कर अपने हस्ती पर आरूढ हो वहांसे चलके अपने स्थान पर आया सिंहासन पर विराजमान हो आज्ञाकारी पुरुषोंको बुलवाके आदेश कीया कि तुम जावे। द्वारिका नगरीका दोय तीन च्यार तथा बहुतसा रस्ता एकम मीले वहां पर उद्घोषणा करो कि यह द्वारिका नगरी प्रत्यक्ष देवलोक सरखी है यह मदिरा अग्नि और द्विपायनके प्रयोगसे विनाश होगा वास्ते जो राजा युवराजा शेठ इभ्यशेठ सेनापति सार्थवाहा आदि तथा मेरी राणीयों कुमार कुमारीयों अगर भगवान नेमिनाथजी पासे दीक्षा ले उन्होंको कृष्ण महाराजकी आज्ञा है अगर कीसीको कोइ प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा हो तो कृष्ण महाराज करेगा पीछेले कुटुम्बका संरक्षण करना हो तो

1 वसुदेव हंडादि ग्रन्थोंमें कृष्णका ३ भव तथा ५ भव भी लीखा है परन्तु यहां तो अन्तर रहीत नीकलके तीर्थंकर होना लिखा है। तत्वंकेवलीगम्यं।

कृष्ण महाराज करेगा - दीक्षाका महोत्सव भी बड़ा आडम्बर से कृष्ण महाराज करेगा। आपका विलम्ब होगी यानी दीक्षा जल्दी लो।

ऐसी पुकार कर मेरी आज्ञा मुझे सुप्रत करो। आज्ञाकारी कृष्ण महाराजका हुकमको सविनय शिर चढाके शहरमें उद्‌घोष कर आज्ञा सुप्रत कर दी।

इधर पद्मावती राणी भगवानकी देशना सुन हर्ष-संतोष होके बोली कि हे भगवान! आपका वचनमें मुझे श्रद्धा प्रतित आइ श्रीकृष्णको पुछके मैं आपके पास दीक्षा लउंगा। भगवानने कहा "जहासुखं."

पद्मावती भगवानको वन्दन कर अपने स्थानपर आइ. अपने पति श्रीकृष्णको पुछा कि आपकी आज्ञा हो तो मैं भगवानकी पास दीक्षा ग्रहन करूं "जहासुखं" कृष्णमहाराजने पद्मावती राणी का दीक्षाका बडा भारी महोत्सव किया। हजार पुरुषसे उठाने योग्य सेबीकामें बैठाके बडा बनोडाके साथ भगवानके पास जाके वन्दन कर श्रीकृष्ण बोलता हुवा कि हे भगवान! यह पद्मावती राणी मेरे बहुतही इष्ट यावत परमवल्लभा थी. परन्तु आपकी देशना सुन दीक्षा लेना चाहती है। हे भगवान! मैं यह शिष्य-णीरूपी भिक्षा देता हुं आप स्वीकार करावे।

पद्मावती राणी वस्त्राभूषण उतार. शिरलोच कर भगवानके पास आके बोली हे भगवान! इस संसारके अन्दर अलीता-पलीता लग रहा है आप मुझे दीक्षा दे मेरा कल्यान करे। तब भगवानने स्वयं पद्मावती राणीको दीक्षा दे यक्षणाजी साध्विकी शिष्याणी बनाके सुप्रत कर दी फीर यक्षणाजीने पद्मावतीको दीक्षा-शिक्षा दी।

पद्मावती साध्वि इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य पालती यक्षणाजीके पास एकादशांग सूत्राभ्यास किया, फीर चोथ छठ अठमादि विस्तरण प्रकारसे तपस्या कर पूर्ण वीश वर्ष दीक्षा पाल एक मासका अनशन कर, अन्तिम केवलज्ञान प्राप्त कर, अपना आत्माके कार्यको सिद्ध कर मोक्षमें विराजमान हो गइ। इति प्रथमाध्ययन समाप्तं। इसी माफीक (२) गोरीराणी, (३) गंधारीराणी, (४) लक्ष्मणा, (५) सुसीमा, (६) जांबवती, (७) सत्यभामा (८) रूक्षमणी. यह आठों कृष्णमहाराजकी अग्रमहिषी पट्टराणीयों परमवल्लभ थी। यह नेमिनाथ भगवानके पास दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें गई। (९) मूलश्री, (१०) मूलदत्ता, यह दोय जांबवतीका पुत्र सांबुकुमारकी राणीयां थी। कृष्णमहाराज दीक्षामहोत्सव कर परमेश्वरके पास दीक्षा दीराइ। पद्मावतीकी माफीक केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इति पंचमवर्गके दशाध्ययन समाप्तं। पंचमवर्ग समाप्तं।



(६) छट्ठा वर्गके सोलाध्ययन.

प्रथम अध्ययन—राजगृह नगरके बहार गुणशीला नामका उद्यान था वहांपर राजा श्रेणिक न्यायसंपन्न अनेक राजगुणोंसे संयुक्त था जिन्होंके चेलणा नामकी पटराणी थी। राजतंत्र चलानेमें बडा ही कुशल, शाम, दाम, भेद, दंडके ज्ञाता और बुद्धिनिधान एसा अभयकुमार नामका मंत्री था। उसी नगरमें बडा ही धनाढ्य और लोगोंमें प्रतिष्ठित एसा माकाइ नामका गाथापति निवास करता था।

उसी समय भगवान वीरप्रभु राजगृह नगरके गुणशील

चैत्यके अन्दर पधारे, राजा श्रेणिक, चेलणा राणी और नगरजन भगवानको वन्दन करनेको गये, यह बात माकाइ गाथापति श्रवण कर वह भी भगवानको वन्दन करनेको गये।

भगवानने उस आइ हुइ परिषदाको अमृतमय धर्मदेशना दी। श्रोतागण सुधारस पान कर यथाशक्ति त्याग-वैराग धारण कर स्वस्थान गमन किया। माकाइ गाथापति देशना सुन संसारको असार जान कर अपने जेष्टपुत्रको कुटुम्बभार सुप्रत कर भगवानके पास दीक्षा ग्रहन करी। माकाइमुनि इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्यको पालन करता हुवा तथारूपके स्थिवर भगवन्तोंकी भक्ति विनय कर एकादशांगका ज्ञानाभ्यास किया। बादमें बहुतसी तपश्चर्या करते हुवे महामुनि गुणरत्न संवत्सर तप कर अपने शरीरको जर्जरित बना दीया। सर्व सोला वर्ष दीक्षा पालके अन्तिम विपुल (व्यवहारगिरि) गिरि पर्वतके उपर एक मासका अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त कर शाश्वत सुखको प्राप्त हुवे। इति प्रथम अध्ययन। इसी माफीक किंकम नामका गाथापति भगवान समीपे दीक्षा ले व्यवहारगिरि तीर्थपर मोक्षप्राप्ति करी। इति दुसरा अध्ययन समाप्तं।

तीसरा अध्ययन—राजगृह नगर, गुणशीला उद्यान, श्रेणिक राजा, चेलणा राणी वर्णन करने योग्य जेसे पूर्व कर आये थे। उसी राजगृह नगरके अन्दर अर्जुन नामका माली रहता था जिन्होंके बन्धुमती नामकी भार्या अच्छे स्वरूपवन्ती थी। उसी नगरके बहार अर्जुन मालीका एक पुष्पाराम नामका बगेचा था वह पंच वर्णके पुष्पोरूपी लक्ष्मीसे अच्छे सुशोभीत था। उसी बगेचाके अति दूर भी नहीं अति नजीक भी नहीं एक मोगरपाणी यक्षका यक्षायतन था। वह अर्जुन मालीके बापदादा परदादा

आदि वंशपरंपरा चीरकालसे उसी मोगरपाणी यक्षकी सेवाभक्ति करते आये थे और यक्ष भी उन्होंकी मनकामना पुर्ण करता था।

मोगरपाणी यक्षकी प्रतिमाने सहस्रपल लोहसे बना हुवा मुद्गल धारण कर रखा था। अर्जुनमाली बालपणेसे मोगरपाणी यक्षका परम भक्त था। उन्हीको सदैवके लिये एसा नियम था कि अब अपने घरसे प्रतिदिन बगेचेमें जाके पांच वर्णके पुष्प चूंटके एकत्र कर अपनी वन्धुमती भार्या के साथ पुष्प ले मोगरपाणी यक्षके देवालयमें जाके पुष्पों चढाके ढींचण नमाके परिणाम कर फीर राजगृहनगरके राजमार्गमें वह पुष्पोंका विक्रय कर अपनी आजीविका करता था।

राजगृह नगरके अन्दर छे गोटीले पुरुष बस्ते थे, वह अच्छे और खराब कार्यमें स्वेच्छासे वीहार करतेथे। एक समय राजगृह नगरमें महोत्सव था। वास्ते अर्जुनमाली अपने घरसे पुष्प भरणेकी छावों ग्रहणकर पुष्प लानेकों अपनी वन्धुमती भार्याकों साथ ले बगेचामें गयेथे। वहांपर दम्पति पुष्पोंकों चुंटके एकत्र कर रहेथे।

उसी समय वह छ गोटीले पुरुष क्रीडा करते हुवे मोगरपाणी यक्षके देवालयमें आये इदर अर्जुनमाली अपनी भार्याके साथ पुष्प ले के मोगरपाणी यक्षके मन्दिरकि तर्फ आ रहेथे। अब छे गोटीले पुरुषोंने वन्धुमती मालणका मनोहर रूप देखके विचार किया कि अपने सब एकत्र हो इस अर्जुनमालीकों त्रिविड बन्धनसें बान्ध कर इस वन्धुमती भार्याके साथ मनुष्य-संबन्धी भोग (मैथुन) भोगवे। एसा विचार कर छे वों गोटीले पुरुष उस मन्दिरके किवाडके अन्तरमे अनबोलते हुवे गुपचुप छिपकर बैठ गये।

इदरसे अर्जुनमाली और बन्धुमती भार्या दोनों पुष्प लेके मोगरपाणी यक्षके पासमें आये। पुष्पोंका ढेर कर (चढाके अर्जुनमाली अपना शिर झुकाके यक्षको प्रणाम करता था इतनेमें तो पीच्छेसे वह छे गोटीले पुरुष आके अर्जुनमालीको पकड निबिड (घन) बन्धनसे बान्ध कर एक तर्फ डाल दीया और बन्धुमतीमालणके साथ वह लंपट भोग भोगवना (मैथुन कर्म सेवन करने लग गये) शरू कर दीया।

अर्जुनमाली उस अत्याचारको देखके विचार कीयाकि मैं बालपणेसे इस मोगरपाणी यक्ष प्रतिमाकी सेवा-भक्ति करता हुं और आज मेरे उपर इतनी विपत्तपडने परभी मेरी साहिता नही करता है तो न जाणे मोगरपाणी यक्ष हे या नही। मालम होता है कि केवल काष्टकी प्रतिमाही बेठा रखी हैं इसी माफीक देवपर अश्रद्धा करता हुवा निराश हो रहा था।

इदर मोगरपाणी यक्षने अर्जुनमालीका यह अध्यवसाय जानके आप (यक्ष) मालीके शरीरमे आके प्रवेश किया। बस। मालीके शरीरमे यक्षका प्रवेश होते ही वह बन्धन एकही साथमें तुट पडे और जो सहस्र पलसे बना हुवा मुद्गल हाथमे लेके छे गोटीले पुरुष और सातवी अपनी भार्या उन्होंका चकचुर कर अकार्यका प्रत्यक्षमे फल देता हुवा परलोक पहुंचा दिया।

अर्जुन मालीको छे पुरुष और सातवी स्त्रीपर इतना तो द्वेष हो गया कि अपने शरीरमें यक्ष होनेसे सहस्रपलवाले मुद्गल द्वारा प्रतिदिन छे पुरुष और एक स्त्रीको मारनेसे ही किंचित् संतोष होता था अर्थात् प्रतिदिन सात जीवोंकी घात करता था। यह बात राजगृह नगरमें बहुतसे लोगों द्वारा सुनके राजा श्रेणिकने नगरमें उद्‌घोषणा करा दी कि कोइ भी मनुष्य तृण, काष्ट, पाणी

आदिके लिये नगरके बहार न जावें कारण वह अर्जुन माली यक्ष इससे सात जीवोंकी प्रतिदिन घात करता है वास्ते बहार जानेवालोंके शरीरको और जीवको नुकशान होगा वास्ते कोइ भी बहार मत जावो।

राजगृह नगरके अन्दर सुदर्शन नामका श्रेष्ठी बसता था। वह बडा ही धनाढ्य और श्रावक, जीवाजीवका अच्छा ज्ञाता था। अपना आत्माका कल्याणके रस्ते बस्त रहा था।

उसी समय भगवान वीरप्रभु अपने शिष्यरत्नोंके परिवारसे भूमंडलको पवित्र करते हुवे राजगृह नगरके गुणशीलोद्यानमें समवसरण किया।

अर्जुन मालीके भयके मारे बहुत लोग अपने स्थानपर ही भगवानको वन्दन कर आनन्दको प्राप्त हो गये। परन्तु सुदर्शन श्रेष्ठी यह बात सुनी कि आज भगवान् बगेचेमें पधारे है। वन्दनको जानेके लिये मातापिताको पुछा तब मातापिताने उत्तर दीया कि हे लालजी! राजगृह नगरके बहार अर्जुनमाली सदैव सात जीवोंको मारता है। वास्ते वहां जानेमें तेरे शरीरको बाधा होगा वास्ते सब लोगोंकी माफीक तुं भी यहां ही रह कर भगवानको वन्दन कर ले। वह भगवान् सर्वज्ञ है तेरी वन्दना स्वीकार करेंगे। सुदर्शनश्रेष्ठीने उत्तर दीया कि हे माता! आज पवित्र दिन है कि वीरप्रभु यहां पधारे हैं तो मैं यहां रहके वन्दन कैसे करुं? आपकी आज्ञा हो तो मैं तो वहां ही जायके भगवानका दर्शन कर वन्दन करूं। जब पुत्रका बहुत आग्रह देखा तब मातापिताने कहा कि जैसे तुमको सुख होवे वैसे करो।

सुदर्शनश्रेष्ठी स्नानमज्जन कर शुद्ध वस्त्र पहेरके पैदल ही भगवानको वन्दन करनेको चला, जहां मोगरपाणी यक्षका मन्दिर

था वह आता था, इतनेमें अर्जुन माली सुदर्शनको देखके वडा भारी कुपित होकर हाथमें सहस्त्रपल लोहका मुद्गल लेके सुदर्शनको मारनेको आरहा था। श्रेष्ठीने मालीको आता हुवा देखके किंचित् मात्रभी भय क्षोभ नहीं करता हुवा वस्त्राचलसे भूमिकाको प्रतिलेखन कर दोनों कर शिरपे लगाके एक नमुत्थुणं सिद्धोंको और दुसरा भगवान् वीरप्रभुको देके बोला कि मैं पहलेही भगवानसे व्रत लिये थे और आज भी भगवानकी साक्षीसे सर्वथा प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन एवं अठारा पाप और च्यारों प्रकारके आहारका प्रत्याख्यान जावजीवके लीये करता हुं परन्तु इस उपसर्गसे बच जाउं तो यह सागारी संथारा पारना मुझे कल्पे है अगर इतनेमें काल करजाउं तो जावजीवका अनशन है एसा अभिग्रह धारण कर आत्मध्यानमें मग्न हो रहा था, शेठीजीने यह भी विचार किया था कि अज्ञानपणे विषयकषायके अन्दर अनन्तीवार मृत्यु हुवा है परन्तु एसा मृत्यु आगे कबी भी नहीं हुवा है और जितना आयुष्य है वह तो अवश्य भोगवना ही पडेगा वास्ते ज्ञानमें ही आत्मरमणता करना ठीक है।

अर्जुनमाली सुदर्शनाश्रेष्ठीके पास आया क्रोधसे पूर्ण प्रज्वलत हो के मुद्गलसे मारना वहुत चाहा परन्तु धर्मके प्रभाव हाथ तक भी उंचा नहीं हुवा मालीजीने शेठीजीके सामने जाया इतने में जो मालीके शरीरमें मोगरपाणि यक्ष था वह मुद्गल ले के वहां से विदा हो गये अर्थात् निज स्थानमें चला गया।

शरीरसे यक्ष चले जाने पर माली कमजोर हो के धरतीपर गीर पडा, इधर शेठीजीने निरूपसर्ग जांनके अपनी प्रतिमा पालन कर अनसन पारा। इतनेमें अर्जुनमाली सचेत हो के बोला कि आप कौन है और कहां पर जाते है। शेठीजीने उत्तर दिया कि

में सुदर्शन शेठ भगवान वीरप्रभुको वन्दन करनेको जाता हुं। माली बोला कि मुझे भी साथमें ले चलो। शेठजी बोला कि बहुत अच्छी बात है। दोनों भगवानके पास आके वन्दन नमस्कार कर योग्य स्थान बेठ गये। इतनेमें तो उपसर्गरहीत रस्ता आनये और भी परिषदा समोसरनमें एकत्र हो गइ। परन्तु सुदर्शनकी धर्मश्रद्धा कीतनी मजबुत थी। एसेको दृढधर्मी कहते है।

भगवान वीरप्रभुने उसी परिषदाको बडे ही विस्तारपूर्वक धर्मदेशना सुनाइ अन्तिम फरमाया कि हे भव्य जीवों। अनन्ते भवोंके किये हुवे दुष्कर्मोंसे छोडानेवाला संयम है इन्हीका आराधन करो वह तुमको एकही भवमें आरापार संसारसमुद्रसे पार कर अक्षय स्थान पर पहुंचा देगा।

सुदर्शनादि देशनापान कर स्वस्वस्थान पर गये। अर्जुन मालीने विचार कीया कि में पांच मास तेरह दिनोंमें ११४१ जीवोंकी घात करी है तो एसा घोर अत्याचारोंके पापसे निवृत्ति होनेका कोइ भी दुसरा रस्ता नहीं है। वास्ते मुझे उचित है कि भगवान वीरप्रभुके चरणकमलोंमें दीक्षा ले आत्मकल्याण करुं। एसा विचारके भगवानके पासे पांच महाव्रतरुपी दीक्षा धारण करी। अधिकता यह है कि जिस दिन दीक्षा ली थी उसी दीन अभिग्रह कर लीया कि मुझे जावजीव तक छठ छठ तप पारणा करना। प्रथम ही छठ कर लीया। जब छठ तपका पारणा था उस रोज पहले पहोरमें सझाय, दुसरे पहोरमें ध्यान, तीसरे पहोरमें मुहपत्ती आदि प्रतिलेखन कर वीरप्रभुकी आज्ञा ले राजगृह नगरके अन्दर समुदाणी भिक्षाके लिये अटन कर रहे थे।

अर्जुनमुनिको देखके बहुतसे पुरुष स्त्रीयों लडके युवक और

वृद्ध कहने लगे कि अहो। इस पापीने मेरे पिताको मारा था कोइ कहते है कि मेरी माताको मारी थी। कोइ कहते है कि मेरे भाइ बहेन औरत पुत्र पुत्री और सगे-सम्बन्धीओंको मारा था इसीसे कोइ आक्रोष वचन तो कोइ हीलना पथरोंसे मारना तर्जना ताडना आदि दे रहे थे। परन्तु अर्जुन मुनिने लगार मात्र भी उन्हों पर द्वेष नहीं कीया मुनिने विचारा कि मैंने तो इन्होंके संबन्धीयोंके प्राणोंका नाश कीया है तो यह तो मेरेको गालीगुप्ता ही दे रहे है। इत्यादि आत्मभावनासे अपने बन्धे हुवे कर्मोको सम्यक् प्रकारसे सहन करता हुवा कर्मशत्रुओंका पराजय कर रहा था।

अर्जुन मुनिको आहार मीले तो पाणी न मीले, पाणी मीले तो आहार न मीले। तथापि मुनिश्री किंचित् भी दीनपणा नही लाता था वह आहारपाणी भगवानको दीखाके अमूर्छितपणे कायाको भाडा देता था, जेसे सर्प बीलके अन्दर प्रवेश करता हैं इसी माफीक मुनि आहार करते थे। एसेही हमेशांके लीये छठ२ पारणा होता था।

एक समय भगवान राजगृह नगरसे विहार कर अन्य जनपद देशमें गमन करते हुवे। अर्जुनमुनि इस माफीक क्षमा सहीत घोर तपश्चर्या करते हुवे छ मास दीक्षा पाली जिस्में शरीर को पुर्णतया जर्जरित कर दीया जेसे खंदकमुनिकी माफीक।

अन्तिम आधा मास अर्थात् पन्दरा दीनका अनशन कर कर्मोंसे विमुक्त हो अव्याबाघ शाश्वत सुखोंमें विराजमान हो गये मोक्ष पधार गये इति।

च्योथा अध्ययन—राजगृह नगर गुणशीलोद्यान श्रेणीक राजा चेलना राणी। उसी नगरमें कासव नामका गाथापति बडाही धनाढ्य वसता था। भगवान पधारे मकाईकी माफिक दीक्षा ले

एकादशांग ज्ञानाभ्यास सोला वर्षकी दीक्षा एक मासका अनशन पालके वैभार गिरि पर्वत पर अन्तसमय केवल ले मोक्ष गये। इति ४ एवं क्षेमनामा गाथापति परन्तु वह काकंदी नगरीका था।५। एवं धृतहर गाथापति काकंदीका। ६। एवं कैलास गाथापति परन्तु संकेत नगरका था और बारह वर्षकी दीक्षा।७। एवं हरिचन्द गाथापति। ८। एवं वरतनामा गाथापति परन्तु वह राजगृह नगरका था। ९। एवं सुदर्शन गाथापति परन्तु वाणीया ग्राम नगरका था यह पांच वर्षकी दीक्षा पाल मोक्ष गया। १०। एवं पुर्णभद्रगाथा०। ११। एवं सुमनभद्र परन्तु सावत्थी नगरीका बहुत वर्ष दीक्षा पाली थी। १२। एवं सुप्रतिष्ट गाथापति सावत्थी नगरीका सत्तावीश वर्षकी दीक्षा पाल मोक्ष गया। १३। मेघ गाथापति राजगृह नगरका था यह बहुत वर्ष दीक्षा पाल मोक्ष गया। १४। यह सब विपुलगिरि-व्यवहारगिरि पर्वतपर मोक्ष गये हैं। इति।

पन्दरवा अध्ययन—पोलासपुर नगर श्रीवनोद्यान विजय नामका राजा राज करता था, उस राजाके श्रीदेवी नामकी पट्टराणी थी। उस राणीको अतिमुक्त-अमंतो नामका कुमार था वह बडाही सुकुमाल और बाल्यावस्थासे ही बडा होशीयार था—

भगवान वीरप्रभु पोलासपुरके श्री वनोद्यानमें पधारे। वीरप्रभुका बडा शिष्य इन्द्रभूति-गौतमस्वामि छठके पारणे भगवानकी आज्ञाले पोलासपुर नगरमें समुदायी भिक्षाके लिये अटन कर रहेथा।

उस समय अमंतो कुमार स्नान मज्जन कर सुन्दर वस्त्र भूषण धारण कर बहुतसे लडके लडकीयों कुमर कुमरियोंके साथ

क्रीडा करनेको रास्तेमे आता हुवा गौतमस्वामिकों देखके अ-मन्तों कुमर बोलाकि हे भगवान! आप कोनहो ओर कीस वास्ते इधर उधर फीरते हो? गौतमस्वामिने उत्तर दीयाकि हे कुमर हम इर्यासमिति यावत् ब्रह्मचर्य पालने वाले मुनि है ओर समु-दाणी भिक्षाके लिये अटन कर रहे है। अमन्तोकुमार बोलाकि हे भगवान हमारे वहां पधारे हम आपकों भिक्षा दीरावेंगे,, एसा कहके गौतमस्वामिकी अंगुली[1] पकडके अपने घरपर ले आये श्री देवीराणी गौतमस्वामिकों आते हुवे देखके हर्ष संतोषके साथ अपने आसनसे उठ सात आठ पग सन्मुख गई वन्दन नमस्कार कर भात्त पाणीके घरमे ले जायके च्यार प्रकारका आहारका सहर्ष दान दीया।

अमन्तोकुमर गौतमस्वामिसे अर्ज करी कि हे भगवान आप कहांपर विराजते हो? हे अमन्ता! इस नगरके बाहार श्री-वनोद्यानमे हमारे धर्माचार्य धर्मकी आदिके करनेवाले श्रमण भग-वान वीरप्रभु विराजते है उन्होंके चरण कमलोमें हम निवास करते है। अमन्तोकुमरबोलाकि हे भगवान! में आपके साथ चलके आपके भगवान वीर प्रभुका चरण वन्दन करू " जहा सुखं। " तब अमन्तों कुमर भगवान गौतमस्वामिके साथ होके श्रीवनोद्या-नमे आके भगवान वीरप्रभुकों वन्दन नमस्कार कर सेवा भक्ति करने लगा।

भगवान गौतमस्वामि लाया हुवा आहार भगवानकों बताके पारणो कर तप संयममें रमनता करने लगा।

---

१ ढुंढीये लोक कहते है कि एक हाथमे गौतमके झोलीथी दुसरे हाथकि अंगुली अमन्तेने पकडली तो फीर खुले मुहवातों कसे करी वास्ते मुहपति बन्धनेकोंथी? उत्तर एक हाथकि कुणीपर झोळी औरहाथमे मुहपत्तीसे यत्ना करीथी दुसरे हाथकी अंगुली अमन्ताने पकडीथी आजभी जैन मुनि ठीक तौरपर बोल सकते हैं।

सर्वज्ञ वीर प्रभु अमन्ताकुमारकों धर्म देशना सुनाइ। अमन्ताकुमर बोलाकी हे करूणासिंधु आपकि देशना सुनमें संसारमे भयभ्रांत हुवा मैं मेरे मातापिताकों पुच्छके आपके पास दीक्षा लेउंगा "जहा सुखं" प्रमाद मत करों। अमन्ताकुमर भगवानकों वन्दनकर अपने मातापिताके पास आया और बोलाकि हे माता आजमें वीरप्रभुकि देशना सुनके जन्ममरणके दुःखोंसे मुक्त होनेके लिये दीक्षा लेउंगा। ऐसीवातें सुनके दुसरोंकि मातायोंकों रंज हुवा करता था परन्तुयहां अमन्ताकुमार कि माताको विस्मय हुवा और बोली की हे वत्स! तुं दीक्षा और धर्मकों क्या जानता है? कुमरजीने उत्तर दिया कि हे माता! मैं जानता हुं उसको तों नहीं जानता हुं और नहीं जानता हुं उसकों जानता हु। माताने कहा कि यह कैसा?

हे माता! यह मैं निश्चित जानता हुं कि जितने जीव जन्मते है वह अवश्य मृत्युकों भी प्राप्त होते है परन्तु मैं यह नहीं जानता हुं कि किस समयमें किस क्षेत्रमें और किस प्रकारसे मृत्यु होगी। हे माता! मैं नहीं जानता हुं कि कोनसा जीव कौस कर्मोंसे नरक तीर्यंच मनुष्य और देवगतिमें जाता है, परन्तु यह वात मैं निश्चय जानता हुं कि अपने अपने किये हुये शुभाशुभ कर्मोंसे नारकी तीर्यंच मनुष्य और देवतोंमें जाते हैं। इस वास्ते हे माता! मैं जानता हुं वह नहीं जानता और नहीं जानता वह जानता हुं। वस! इतनेमें माता समझ गइ कि अव यह मेरा पुत्र घरमें रहेनेवाला नहीं है। तथापि मोहप्रेरित वहुतसे अनुकूल-प्रतिकुल शब्दोंसे समझाया, परन्तु जिन्होंकों असली वस्तुका भान हो गया हो वह इस कारमी मायासे कवी लोभीत नहीं होता है अमन्ताकुमार कों तो शिवसुन्दरीसे इतना बडा प्रेम हो राहा था कि मैं कीतना जल्दी जाके मीलु।

माताजीने कहा कि हे पुत्र! अगर आप दीक्षा ही लेना चाहते हो तो एक दिनका राज कर मेरे मनोरथकों पूर्ण करों। अमन्तोकुमर इस बातको सुनके मौन रहा। जब माता-पिताने बडा ही आडम्बर कर कुमरका राजअभिषेक कर बोले कि हे लालजी आप कि क्या इच्छा है आज्ञा करों। कुमरने कहा कि तीन लक्ष सोनइया लक्ष्मीके भंडारसे निकाल दो लक्षके रजोहरण पात्रा और एकलक्ष हजामकों दे मेरे दीक्षा कि तैयारी करावों। जेसे महाबलकुमरके दीक्षाका महोत्सव कीया इसी माफीक बडे ही महोत्सव पूर्वक भगवानके पास अमन्ताकुमरको भी दीक्षा दराइ। तथारूपके स्थिवरों के पास एकादशांगका ज्ञान कीया।* बहुतसे वर्ष दीक्षा पाली गुणरत्न समत्सरादि तप कर अन्तमे व्यवहार गिरिपर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया॥ १५॥

सोलवा अध्ययन-बनारसी नगरी काम बनोद्यान अलख नामका राजाथा, उस समय भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा, कोणककी माफीक अलखराजाभी वन्दन करने कों गया। धर्म

---

* भगवतीसूत्र शतक ५ उ० ४ में लिखा हैं कि एक समय बडी बरसाद वर्षनेके बादमें स्थिवरोंके साथमें अमन्तोबालऋषि स्थंडिले गया था स्थिवर कुच्छ दूर गये अमन्तोऋषि पीच्छे आते समय पाणींके अन्दर मट्टीकी पाल बान्ध अपने पासकी पातरी उस्मे डाल तीरती हुइ देख बोलता है कि यह मेरी नइया (नौका) तिर रही है। दुरसें स्थिवरोंने देखा उसी समय स्थिवरोंकों बडा ही विचार हुवा कि देखो यह बालऋषि क्या अनुचित क्रीडा कर रहा है। वह एक तर्फसे भगवानके समिप आके पुच्छा कि हे भगवान! आपका शिष्य अमन्तो बालऋषि कितना भव कर मोक्ष जावेगा। भगवानने उत्तर दिया की हे स्थिवरों अमन्ताऋषि कि हीलना मत करों यावत् अमन्तोऋषि चरम शरीरी अर्थात् इसी भवमें मोक्ष जावेगा। वास्ते तुम सब मुनि बालऋषिकि व्यावच करो। इति।

देशना सुन अपने जेष्ठ पुत्रकों राज देके उदाई राजाकी माफीक दीक्षा ग्रहन करी एका दशांग अध्ययन कर विचत्र प्रकारकि तपश्चर्या करते हुवे बहुतसे वर्ष दीक्षा पाल अन्तमे विपुलगिरि (व्यवहारगिरि) पर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये इति सोलयाध्ययन। इति छट्ठावर्ग समाप्त।



(७) सातवा वर्गके तेरह अध्ययन

राजग्रह नगर गुणशीलोद्यान श्रेणिकराजा चेलनाराणी अभयकुमारमंत्री भगवान वीरप्रभुका आगमन, राजा श्रेणककायन्दनको जाना यहसर्वाधिकर पूर्वके माफीक समझना। परन्तु श्रेणकराजा कि नन्दानामकि राणी भगवानकि धर्मदेशना श्रवण कर श्रेणिकराजाकि आज्ञा लेके प्रभु पासे दीक्षा ग्रहनकर चन्दनबालाजीके समिप रहेतीहुइ एकादशांगका अध्ययन कर विचित्र प्रकारकी तपश्चर्या करती हुइ कर्मशत्रुवोंका पराजयकर केवलज्ञान पाके मोक्षगइ इति।१। एवं (२) नन्दमती (३) नन्दोतरा (४) नन्दसेना (५) मरुता (६) सुमरुता (७) महामरुता (८) मरूदेवा (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमाणसा (१३) भुतादिन्ना यह तेरहा राणी या अपने पति श्रेणकराजाकि आज्ञासे भगवान वीर प्रभुके पास दीक्षा लेके सर्वने इग्यारे अंगका ज्ञान पढा। बहुतसी तपस्याकर अन्तमे केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गइ हैं इति सातवा वर्ग समाप्तं।



(८) आठवा वर्गके दश अध्ययन है।

चम्पानगरी पुर्णभद्र उद्यान कोणक नामका राजा राज कर रहाथा। उसी चम्पानगरीमें श्रेणीक राजाकि राणी कोणक राजाकि चुलमाता [1]कालीनामकि राणी निवास करतीथी.

भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा नन्दाराणीकि माफीक कालीराणी भी देशना सुन दीक्षा ग्रहन कर इग्यारे अंग ज्ञानाभ्यासकर चोत्थ छठ्ठादि विचित्र प्रकारसे तपश्चर्याकर अपनि आत्माकों भावती हुइ वीचर रहीथी।

एक समय काली साध्विने आर्य चन्दन बाला साध्विको वन्दन कर अर्ज करी कि आपकी रजा हो तो में रत्नावली तप प्रारंभ करु ? जहासुखम्।

आर्या चन्दन बालाजीकी आज्ञा होनेसे काली साध्वीने रत्नावली तप शरु किया। प्रथम एक उपवास किया पारणेके दिन "सव्वकामगुण" सर्व विगइ अर्थात् दूध दहीं घृत तैल मीठा इसे जेसे मीले वेसाही आहारसे पारणो कर सके। सब पारणेमें एसी विधि समझना। फिर दोय उपवास कर पारणो करे। फिर तीन उपवास कर पारणो करे बादमें आठ छठ (वेला) करे पारणो कर, उपवास करे, पारणो कर, छठ करे, पारणो कर अठम करे, पारणो कर च्यारोपास, पारणो कर पांचोउपवास पारणो कर छ उपवास, पारणो कर सात उपवास, पारणो कर आठ उपवास, एवं नव दश इग्यारा बारह तेरह चौदा पन्दर सोला उपवास करे, पारणो कर लगता चौतीस छठ करे, पारणो कर फीर

१ कालीराणीका विशेषाधिकार निरयावलिका सूत्रकि भाषामें लिखा जावेगा।

सोला उपवास करे, पारणो कर पन्दरा उपवास करे, एवं चौदा तेरह बारह इग्यार दश नव आठ सात छे पांच चार तीन दोय और पारणो कर एक उपवास करे। बादमें आठ छठ करे पारणो कर तीन उपवास करे, पारणो कर छठ करे, और पारणो कर एक उपवास करे, यह प्रथम ओली हुइ अर्थात् इस तपके हारकी पहेली लड हुइ इसको एक वर्ष तीन मास और बावीस दिन लगते है जिसमें ३८४ दिन तपस्या और ८८ पारणा होता है पारणे पांचों विगइ सहीत भी कर सकते है। इसी माफीक दुसरी ओली (हारकीलड) करी थी परन्तु पारणा विगइ वर्ज करते थे। इसी माफीक तीसरी ओली परन्तु पारणा लेपालेप वर्ज करते थे। एवं चोथी ओली परन्तु पारणे आंबिल करते थे। यह तपरुपी हारकी च्यार लडकों पांच वर्ष दोय मास अठ्ठावीस दिन हुये जिसमें च्यार वर्ष तीन मास छे दिन तपस्याके और इग्यार मास बावीस दिन पारणेके एसे घोर तप करते हुये काली साध्वीका शरीर सुके लुक्खे भुक्खे हो गया था चलते हुये शरीरके हाड खडखड शब्दसे बाजने लग गया अर्थात् शरीर बीलकुल कृप बन गया तथापि आत्मशक्ति बहुत ही प्रकाशमान थी। गुरुणीजिकी आज्ञासे अन्तिम एक मासका अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गई इति।

इसी माफीक दुसरा अध्ययन सुकालीराणीका है परन्तु रत्नावली तपके स्थान कनकावली तप कीया था रत्नावली और कनकावली तपमे इतना विशेष है कि रत्नावली तपमे दोय स्थान पर आठ आठ छठ एक स्थानपर चौतीस छठ किया था यहां कनकावली तपमे अठम तप कीया है वास्ते तपकाल पंच वर्ष नव मास और अटारा दिन लगा हैं शेष कालीराणीकी माफीक कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त हो मोक्ष गई। २।

इसी माफीक महाकालीराणी दीक्षा ले यावत् लघु सिंहकी चाली माफीक तप करा यथा--एक उपवास कर पारणा कीया फीर दोय उपवास कीया पारणा कर, एक उपवास पारणा कर तीन उपवास पारणा कर दोय उपवास, पारणोकर च्यार उपवास पारणो कर तीन उपवास, पारणों कर पांच उपवास, पारणो कर च्यार उपवास, पारणो कर छे उपवास, पारणो कर पांच उपवास, पारणो कर सप्त उपवास, पारणो कर छे उपवास, पारणो कर आठ उपवास करे, सात उपवास करे०, नव उप०, आठ उप०, नव उप०, सात उप०, आठ उप०, छे उप०, सात उप०, पांच उ०, छे उ०, च्यार उ०, पांच उ०, तीन उ०, च्यार उ०, दोय उ०, तीन उ०, एक उ०, दोय उ०, एक उ०, एक ओलीकों १८७ दिन लागे पूर्ववत् च्यार ओलीकों दोय वर्ष अठावीश दिन लागे। यावत् सिद्ध हुई ॥ ३ ॥

इसी माफीक कृष्णाराणीका परन्तु उन्होंने महासिंह निकल तप जो लघुसिंह० वडते हुवे नव उपवास तक कहा है इसी माफीक १६ उपवास तक समझना एक ओलीकों एक वर्ष छ मास अढारा दिन लगा था। च्यार ओली पूर्ववत्कों छे वर्ष दोय मास बारह दिन लगा था यावत् मोक्ष गइ ॥ ४ ॥

इसी माफीक सुकृष्णराणी परन्तु सत्त सत्तमियों कि भिक्षु प्रतिमा तप कीया था यथा-सात दिन तक एक एक आहार कि दात[1] एकेक पाणीकी दात। दूसरे सात दिन तक दो आहार दो

---

1 दातार देते समय विचमे धार खंडित न हो उसे दात केहेते हैं जेसे मोदक देते समय एक बुर पड जावे तथा पाणी देते समय एक बुंद गिर जावे तो उसे भी दात कहते हैं। अगर एक ही साथमे थालभर मोदक ओर घडाभर पाणी देतो भी एकही दात हैं

पाणीकी दात। तीसरे सात दिन तीन तीन आहार तीन तीन पाणीकी दात यावत् सातमे सातदिन, सात सात दात आहार पाणी कर लेते है एवं एकोणपचास दिन और एकसो छीनव दात आहार एक सो छीनव दात, पाणी की होती है। फीर बादमें अठ अठमिया भिक्षु प्रतिमा तपकरा यह प्रथम आठ दिन एकेक दात्त आहार एकेक दात्त पाणी कि एवं यावत् आठवे आठ दिन तक आठ आठ दात्त आहारकी आठ आठ दात्त पाणीकी सर्व चौसठ दिन और दोय सो इठीयासी दात आहार दोय सो इठीयासी दात पाणीकी होती हैं। बादमें नव नवमियों कि भिक्षु प्रतिमा तप पूर्ववत् इकीयासी दिन और च्यारसो पंच दात्त संख्या होती है। बादमें दश दशमियां भिक्षु प्रतिमा तप करा जिस्का एक सो दिन और साढापांचसो दात्त संख्या होती है। यह प्रतिमा सर्व अभिग्रह तप है बादमें ही वहुतसे मास क्षमणादि तप कर केवलज्ञान प्राप्त कर अन्तिम मोक्षमें जा विराजे इति ॥ ५ ॥

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

इसी माफीक महाकृष्णा राणी परन्तु लघु सर्वतो भद्र तप कराया यथा यंत्र प्रथम ओलीकों तीनमास दशदिन एवं च्यार ओलीकों एक वर्ष एकमास दशदिन, पारणा सब रत्नावली तपकि माफीक समझना। अन्तिम मोक्ष मे विराजमान हुवे। ६।

इसी माफीक वीर कृष्णा राणी परंतु महा सर्वतो भद्र तप कीया था । यथा यंत्र एक ओलीने आठ मास पांच दिन एवं च्यार ओलीने दोय वर्ष आठ मास और वीस दिन लगा था। पारणमे भोजनविधि सर्वरत्नावली तपकि माफीक समजना औरभी विचित्र प्रकारसे तपकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें विराजमान हुये इति । ७ ।

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

इसी माफीक रामकृष्णा राणी परन्तु भद्रोत्तर प्रतिमा तप कीयाथा । यथा यंत्र एक ओलीकों छे मास ओर वीस दिन तथा च्यार ओलीकों दोय वर्ष दोय मास ओर विसदिन औरभी वहुत तप कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें विराजमान हुवे इति ।८।

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

इसी माफीक पितुसेन कृष्णाराणी परन्तु मुक्तावली तप कीया यथा—एक उपवास कर पारणा कर छठ कीया पारणा कर एक

उपवास पारणा कर तीन उपवास पारणाकर एक उपवास च्यार उप० एक उप० पांच उप० एक उप० छ उप० एक उप० सात उप० एक उप० आठ उप० एक उप० नव उप० एक० दश० एक० इग्यारे० एक० बारह० एक० तेरह एक० चौदा० एक० पंदरा० एक० सोला उपवास इसी माफीक पीछा उतरतां सोला उपवाससे एक उपवास तक कीया। एक ओलीकों साढाइग्यारे मास लागे और च्यारो ओलीकों तीन वर्ष और दश मास काल लगा पारणेका भोजन जेसे रत्नावली तपकि माफीक यावत् शाश्वता सुखमे विराजमान हो गये इति। ९।

इसी माफीक महासेण कृष्णा परन्तु इन्होंने आंबिल वर्द्धमान नामका तप किया था। यथा—एक आंबिल कर एक उपवास दो आंबिल कर एक उपवास, तीन आंबिल कर एक उपवास एवं च्यार आंबिल एक उपवास पांच आंबिल कर एक उप० छे आंबिल एक उप० सात आंबिल इसी माफीक एकेक आंबिलकि वृद्धि करते हुवे यावत् नियाणवे आंबिल कर एक उपवास कर सो आंबिल कीये इस तप पुरा करनेको चौदा वर्ष तीन मास विसदिन लगा था सर्व सतरा वर्षकी दीक्षा पालके अन्तिम एक मासका अनसन कर मोक्ष गया ॥ १० ॥

यह श्रेणिकराजा कि दशों राणीयों वीरप्रभुके पास दीक्षा लि। इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कर, पूर्व बतलाइ हुइ दशों प्रकारकि तपश्चर्या कर अन्तिम एकेक मासका अनसन कर कर्मशत्रुका पराजय कर अन्तगढ केवली हो के मोक्षमें गइ इति।

॥ इति आठवांवर्गके दशाध्ययन समाप्तम् ॥

इति अन्तगढ दशांगसूत्र का संक्षिप्त सार समाप्तम्।

—※(◎)※—

श्री अनुत्तरोववाइ सूत्रका संक्षिप्त सार.



(प्रथम वर्गके दश अध्ययन है.)



(१) पहला अध्ययन—राजगृह नगर गुणशीलोद्यान श्रेणिक राजा चेलनाराणी इसका विस्तार अर्थ गौतमकुमारके अध्ययन से समझना।

श्रेणकराजा के धारणी नामकी राणीकों सिंह स्वप्न सूचित जाली नामक पुत्रका जन्म हुवा महोत्सवके साथ पांच धायांसे पालीत आठ वर्षका होनेके बाद कलाचार्यसे बहुत्तर कलाभ्यास यावत् युवक अवस्था होने पर बडे बडे आठ राजावोंकी आठ कन्यावों के साथ जालीकुमारका विवाह कर दीया दत दायजो पूर्ववत् समझना। जालीकुमार पूर्व संचित्त पुन्योदय आठ अन्तेउरके साथ देवतावों कि माफीक सुखोंका अनुभव कर रहा था।

भगवान वीरप्रभुका आगमन राजादि वन्दन करने को पूर्व-वत् तथा-जालीकुमर भी वन्दनकों गया देशना श्रवण कर आठ अन्तेवर और संसारका त्याग कर माता-पिताकी आज्ञा ले बडे ही महोत्सवके साथ भगवान वीरप्रभुके पास दीक्षा ग्रहण करी, विनयभक्तिसे इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कर चोत्थ छठ अठमादि तपस्या करते हुवे गुणरत्न समत्सर तपकर अपनि आत्माकों उज्वल वनाते हुवे अन्तिम भगवानकी आज्ञा ले साधु साध्वीयोंसे क्षमत्क्षामणा कर स्थिवर भगवानके साथे विपुलगिरि पर्वत पर अनसन किया सर्व सोला वर्षकी दीक्षा पाली। एक मास

के अनसनके अन्तमें काल कर उर्ध्व सौधर्मइशान यावत् अच्युत देवलोकके उपर नव ग्रीवैक से भी उर्ध्व विजय नामका वैमान में उत्पन्न हुवे। जब स्थिवर भगवान जालीमुनि काल प्राप्त हुवा जानके परि निर्वणार्थ काउस्सगकीया (जाली मुनिके अनसनकि अनुमोदन) काउस्सगकर जालीमुनिका वस्त्र पात्र लेके भगवान के समिप आये यह वस्त्र पात्र भगवान के आगे रखा गौतम स्वामीने प्रश्न कियाकि हे भगवान! आपका शिष्य जाली अनगार प्रकृतिका भद्रीक विनित यावत् कालकर कहां पर उत्पन्न हुवा होगा भगवानने उतर दीयाकि मेराशिष्य जाली मुनि यावत् विजयवैमानके अन्दर देव पणे उत्पन्न हुवा है उन्होंकी स्थिति बत्तीस सागरोपमकि है। गौतमस्वामिने पुच्छाकि हे भगवान जालिदेव विजय वैमानसे फीर कहां जावेगा? भगवानने उत्तर दीयाकि हे गौतम! जालीदेव. वहांसे कालकर महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति कुलके अन्दर जनम लेगा वहांभी केवली परुपित धर्मका सेवनकर दीक्षाले केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जावेगा इति प्रथमाध्ययन समाप्त।

इसी माफीक (२) मयालीकुमर (३) उवयालीकुमर (४) पुरुषसेन (५) वीरसेन (६) लठदन्त (७) दीर्घदंत यह सातों श्रेणिक राजाकि धारणी राणीके पुत्र है ओर (८) वहेलकुमर (९) विहासे कुमार यह दोय श्रेणकराजाकि चेलना राणी के पुत्र है (१०) अभयकुमार श्रेणक राजाकि नन्दाराणीका पुत्र है एवं दश राजकुमर भगवान वीरप्रभु पासे दीक्षा ग्रहन करी थी।

इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास। पहले पांच मुनियोंने १६ वर्ष दीक्षा पाली क्रमसे छठ्ठा, सातवां, आठवां, बारह वर्ष दीक्षा पाली नववां दशवां पांच वर्ष दीक्षा पाली। गति-पहला विजयवैमान, दुसरा विजयन्त वैमान, तीसरा जयन्त

वैमान, चोथा अप्राजत वैमान, पांचवा छटा सर्वार्थसिद्ध वैमान। शेष च्यार मुनि विजय वैमानमे उत्पन्न हुवे। वहांसे चवके सब महाविदेह क्षेत्रमें पूर्ववत् मोक्ष जावेगा। इति प्रथम वर्गके दशाध्यायन समाप्तम्। प्रथम वर्ग समाप्तम्।



(२) दुसरें वर्गका तेरह अध्ययन है !

प्रथम अध्ययन—राजगृह नगर श्रेणिकराजा धारणी राणी सिंह सुपनसूचित दीर्घसेन कुमरका जन्म बाल्यावस्था कलाभ्यास पाणीग्रहन आठ राजकन्यावोंके साथ विवाह यावत् मनुष्य संबंधी पांचो इन्द्रियके सुख भोगवते हुवे विचर रहाथा। भगवान वीर प्रभुका आगमन हुवा धर्मदेशना सुनके दीर्घसेन कुमार दीक्षा ग्रहण करी सोला वर्षकी दीक्षा पालके विपुलगिरि पर्वत पर एक मासका अनसन कर विजय वैमान गये वहांसे एकही भव महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति कुलमें जन्म ले के फीर केवली प्ररूपित धर्म स्वीकार कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा। इति प्रथमाध्ययन समाप्तम्। १।

इसी माफीक (२) महासेन कुमर (३) लठदन्त (४) गूढ दन्त (५) सुद्धदन्त (६) हलकुमर (७) दुम्मकु० (८) दुमसेन कु० (९) महादुमसेन (१०) सिंह (११) सिंहसेन (१२) महासिंहसेन (१३) पुन्यसेन यह तेरह राजकुमर श्रेणिक राजाकि धारणी राणीके पुत्र थे भगवान समिप दीक्षा ले १६ वर्ष दीक्षा पाली विचित्र प्रकारकि तपश्चर्या कर अन्तिम विपुलगिरि पर्वतपर अनसन करके क्रमःसर दोय मुनि विजयवैमान, दोय मुनि विजयन्त वैमान, दोय मुनि जयन्त वैमान शेष सात मुनि स-

र्वार्थसिद्ध वैमानमें देवपणे उत्पन्न हुवे वहांसे तेरहही देव एक भव महाविदेह क्षेत्रमें करके दीक्षा पाके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें जावेगा । इति दुसरे वर्गके तेरवाध्ययन समाप्तम् । २ ।

इति दुसरा वर्ग समाप्तम् ।



(३) तीसरे वर्गके दश अध्ययन है ।

प्रथम अध्ययन—काकंदी नामकी नगरी सहस्राम्रवनोद्यान जयशत्रु नामका राजा । सबका वर्णन पूर्ववत् समझना । काकंदी नगरीके अन्दर बडीही धनाढ्य भद्रा नामकी सार्थवाहिणी वसती थी वह नगरीमें अच्छी प्रतिष्ठित थी । उस भद्रा शेठाणीके एक स्वरूपवान धन्नो नामको पुत्र थो, उस्के कला आदिका वर्णन महाबलकुमारकी माफीक यावत् बहोतेर कलामें प्रविन युवक अवस्थाको प्राप्त हो गया था । जब भद्रा शेठाणीने उस कुमारको बत्तीस इभ्यशेठोंकी कन्यावोंके साथ विवाह करनेका इरादासे बत्तीस सुन्दराकार प्रासाद बनाके विचमें धन्नाकुमारका महेल बना दिया । उस प्रासाद महेलोंके अन्दर अनेक स्थंभ पुतलीयो तोरणादिसे अच्छे शोभनिय बना दीया था उसी प्रासादोंका शिखरमानो गगनसे वातोंही न कर रहा हो अर्थात् देवप्रासादके माफीक अच्छा रमणीय था ।

बत्तीस इभ्यशेठोंकी कन्यावों जो कि रूप, यौवन, लावण्य, चातुर्यता कर ६४ कलावोमें प्रविन कुमारके सदृश वयवाली बत्तीस कन्यावोंका पाणीग्रहण एकही दिनमें कुमारके साथ करा दिया उन्ही बत्तीस कन्यावोंका मातापिता अपरिमित दत दायजो दियो थो यावत् बत्तीस रंभावोंके साथ धन्नोकुमार मनुष्य

संवन्धी कामभोग भोगव रहा था अर्थात् वत्तीस प्रकारके नाटक आदि से आनन्दमें काल निर्गमन कर रहा था। यह सब पूर्व सुकृतका ही फल है।

पृथ्वीमंडलको पवित्र करते हुवे बहुत शिष्योंके परिवारसे भगवान वीरप्रभुका पधारना काकंदी नगरीके सहस्राम्रवनोद्यानमें हुवा।

कोणक राजाकी माफीक जयशत्रु राजा भी च्यार प्रकारकी सैनाके साथ भगवानको वन्दन करनेको जा रहा था, नगरलोक भी स्नानमज्जन कर अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर गज, अश्व, रथ, पिंजस, पालखी, सेविका समदाणी आदिपर सवार हो और कितनेक पैदल भी मध्यबजार होके भगवानको वन्दन करनेको जा रहे थे।

इधर धन्नोकुमार अपने प्रासादपर बैठो हुवो इस महान् परिषदाको एकदिशामें जाती हुइ देखके कंचुकी पुरुषसे दरियाफ्त करनेपर ज्ञात हुवा कि भगवान् वीरप्रभुको वन्दन करनेको जनसमुह जा रहे है। वादमें आप भी च्यार अश्ववाले रथपर बैठके भगवानको वन्दन करनेको परिषदाके साथमें हो गये। जहाँ भगवान विराजमान थे वहां आये सवारी छोडके पांच अभिगम कर तीन प्रदक्षिणा दे वन्दन नमस्कार कर सब लोग अपने अपने योग्य स्थानपर वेठ गये। आये हुवे जनसमुह धर्माभिलाषीयोंको भगवानने खुब ही विस्तार सहित धर्मदेशना सुनाइ। जिस्में भगवानने मुख्य यह फरमाया था कि—

हे भव्य जीवो! यह जीव अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमन कर रहा है जिस्का मूलहेतु मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग हैं इन्होंसे शुभाशुभ कर्मोका संचय होता है तव कभी राजा महाराजा

शेठ सेनापति होके पुन्यफलको भोगवता है कभी रंक दरिद्री पशुयादि होके रोग-शोकादि अनेक प्रकारके दुःख भोगवता है और अज्ञानके वस हो यह जीव इन्द्रियजनित क्षण मात्र सुखोंके लिये दीर्घकाल तक दुःख सहन करते है।

इसी दुःखोंसे छुडाने वाला सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र है वास्ते हे भव्य जीवों! इसी सर्व सुख संपन्न चारित्रको स्वीकार कर इन्हींका ही पालन करों तांके आत्मा सदैवके लिये सुखी हो।

अमृतमय देशना श्रवण कर यथाशक्ति त्याग वैरागको धारण कर परिषदाने स्व स्व स्थान गमन कीया।

धन्नोकुमर देशना श्रवणकर विचार किया कि अहो आज मेरा धन्य भाग्य है कि एसा अपूर्व व्याख्यान सुना। और जगतारक जिनेन्द्र देवोंने फरमाया कि यह संसार स्वार्थका है पौद्गलीक सुखोंके अन्ते दुःख है क्षण मात्रके सुखोंके लिये अज्ञानी जीवों घोर कालके दुःख संचय करते है यह सब सत्य है. अब मुझे चारित्र धर्मका ही सरणा लेना चाहिये। धन्नोकुमार भगवानसे वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे करुणासिन्धु। मुझे आपका प्रवचन पर श्रद्धा प्रतीत आइ और यह वचन मुझे रुचता भी है आप फरमाते है एसे ही इस संसारका स्वरुप है मैं मेरी माताकों पुच्छके आपके पास दीक्षा ग्रहन करुगा "जहासुखम्" परन्तु हे धन्ना। धर्म कार्यमें प्रमाद नही करना चाहिये।

धन्नोकुमर भगवान कि आज्ञाकों स्वीकार कर वन्दन नमस्कार कर अपने च्यार अश्वके रथपर बेठके स्व स्थानपर आया निज मातासे अर्ज करी कि हे माता आज मैं भगवानकि देशना श्रवण कर संसारसे भयभ्रांत हुवा हुं। वास्ते आप आज्ञा देवे मैं भगवानके पास दीक्षा ग्रहन करुं। माताने कहा कि हे लालजी

तुं मेरे एक ही पुत्र है तुझे बत्तीस ओरतो परणाइ है और यह अपरिमत्त द्रव्य जो तुमारे बापदादावोंके संचे हुवे है इसको भोगवो बादमें तुमारे पुत्रादिकी वृद्धि होनेपर भुक्त भोगी हो जावोंगे फीर हम काल धर्मको प्राप्त हो जावे बादमें दीक्षा लेना।

कुमरजीने कहा कि हे माता यह जीव भव भ्रमन करते हुवे अनेक वार माता पिता स्त्रि भरतार पुत्र पितादिका संवन्ध करता आया है कोइ कीसीको तारणेको समर्थ नही है धन दोलत राजपाट आदि भी जीवको बहुतसी दफे मीला है इन्हीसे जीवका कल्याण नही है। वास्ते आप आज्ञा दो में भगवानके पास दीक्षा लुंगा। माताने अनुकुल प्रतिकुल बहुत समझाया परन्तु कुमरतो एक ही बातपर कायम रहा आखिर माताने यह विचारा कि यह पुत्र अब घरमे रहेनेवाला नही है तो मेरे हाथसे दीक्षाका महोत्सव करके ही दीक्षा दिरादुं। एसा विचार कर जेसे थावच्चा शेठाणी कृष्णमहाराजके पास गइ थी ओर थावच्चा पुत्रका दीक्षामहोत्सब कृष्णमहाराजने किया था इसी माकीक भद्रा शेठाणीने भी जयशत्रुराजाके पास भेटणो (निजरांणा) लेके गइ और धनाकुमारका दीक्षामहोत्सव जयशत्रुराजाने कीया इसी माफीक यावत् भगवान वीरप्रभुके पास धन्नोकुमर दीक्षा ग्रहनकर मुनि बनगया इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करने लग गया.

जिस दिन धन्नाकुमारने दीक्षा लीथी उसी दिन अभिग्रह धारण कर लीयाथा कि मुझे कल्पे है जावजीव तक छठ छठ तप पारणा ओर पारणेके दिन भी आंबिल करना। जब पारणेके दिन आंबिलका आहार संस्पृष्ट हस्तोंसे देनेवाला देवे। यह भी बचा हुवा अरस निरस आहार वह भी श्रमण शाक्यादि माहण ब्राह्मणादि अतीथ कृपण वणीमंगादि भी उस आहारकी इच्छा न करे

एसा पारणे आहार लेना। इस अभिग्रहमें भगवानने भी आज्ञा देदी कि 'जदासुखं'।

धन्ना अनगारके पहला छठ तपका पारणा आया तब पहले पहोरमें स्वाध्याय करी दुसरे पहोरमें ध्यान (अर्थचिंतवन) कीया तीसरे पहोरमें मुहपत्ती तथा पात्रादि प्रतिलेखन किया बादमें भगवानकी आज्ञा लेके काकंदी नगरीमें समुदाणी गौचरी करनेमें प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु धन्ना मुनि आहार एसा लेता था कि बिलकुल रांक वणीमग पशु पंखी भी इच्छा न करे इस कारणसे मुनिकों आहार मीले तो पाणी नही मीले और पाणी मीले तो आहार नही मीले तथापि उसमें दीनपणा नही था व्यग्रचित्त नही शुन्य चित्त नही कुलुषित चित्त नही विपवाद नही, समाधि चित्तसे यत्नाकी घटना करता हुवा एपणा संयुक्त निर्दोषाहारकी खप करता हुवा यथापर्याप्ति गौचरी आ जानेपर काकंदी नगरीसे नीकल भगवानके समिप आये भगवानको आहार दीखाके अमूर्च्छीत अगर्हित सर्प जेसे बीलमे शीघ्रता पूर्वक जाता है इसी माफीक स्वाद नही करते हुये शीघ्रता पूर्वक आहार कर .तप संयममे रमणता कर रहाथा इसी माफीक हमेशां प्रति पारणे करने लगे।

एक समय भगवान वीरप्रभु काकंदी नगरीसे विहार कर अन्य जनपद देशमें विहार करते हुये धन्नो अनगार तपश्चर्या करता हुवा तथा रूपके स्थिवर भगवानका विनय भक्ति कर इग्यारा अंगका ज्ञान अभ्यासभी कियाथा।

धन्ना अनगारने प्रधान घोर तपश्चर्या करी जिसका शरीर इतना तो कृष-दुर्बल बन गयाकि जिस्का व्याख्यान सुद शास्त्रकारोंने इस मुजब कीया है।

(१) धन्ना अनगारका पग जेसे वृक्षकि शुकी हुइ छाली तथा

काटकी पावडीयों ओर जरग (पुराणे जुते) कि माफीक था वहांभी मांस रुधीर रहीत केवल हाड चर्मसे विटा हुवाही देखाव देताथा।

(२) धन्ना अनगारके पगकि अंगुलीयों जेसे मुग उडद चोलादि धान्यकि तरूण फलीकों तापमें शुकानेपर मीली हुइ होती है इसी माफीक मांस लोही रहीत केवल हाडपर चर्म विटा हुवा अंगुलीयोंका आकारसा मालुम होता था।

(३) धन्ना मुनिका जांघ (पोंडि) जेसे काकनामकि वनस्पति तथा वायस पक्षिके जंघ माफीक तथा कंक या ढोणीये पक्षि विशेष है उसके जंघा माफीक यावत् पुर्व माफीक मांस लोही रहीत थी।

(४) धन्नामुनिका जानु (गोडा) जेसे कालिपोरें-काकजंघ वनस्पतिविशेष अर्थात् बोरकी गुटली तथा एक जातिकी वनस्पतिके गांट माफीक गोडा था यावत् मांस रहित पुर्ववत्।

(५) धन्नामुनिके उरू (साथल) जेसे प्रियंगु वृक्षकी शाखा, बोरडी वृक्षकी शाखा, संगरी वृक्षकी शाखा, तरुणको छेदके धुपमें शुकानेके माफीक शुष्क थी यावत् मांस लोही रहित।

(६) धन्ना अनगारके कम्मर जेसे ऊंटका पाँव, जरखका पाँव, भेंसका पाँवके माफीक यावत् मंस लोही रहित।

(७) धन्नामुनिका उदर जेसे भाजन-सुकी हुइ चर्मकी दीवडी, रोटी पकानेकी केलडी, लकडेकी कठीतरी इसी माफीक यावत् मंस रक्त रहित।

(८) धन्नामुनिकी पांसलीयों जेसे वांसका करंडीया, वांसकी टोपली, वांसके पासे, वांसका सुंडला यावत् मंस रक्तरहित थे।

(९) धन्नामुनिके पृष्टविभाग जेसे वांसकी कोठी, पाषाणके गोलोंकी श्रेणि इत्यादि मंस रक्त रहित।

(१०) धन्नामुनिका हृदय (छाती) वीछानेकी चटाइ, पत्तेका पंखा, टुपडपंखा, तालपत्तेका पंखा माफीक यावत् पूर्ववत् ।

(११) धन्नामुनिके बाहु जेसे समलेकी फली, पहाडकी फली, अगत्थीयांकी फली इसी माफीक यावत् मंस रक्त रहित ।

(१२) धन्नामुनिका हाथ जेसे सुका छाणा, वडके पत्ते, पोलासके पत्तेके माफीक यावत् मंस रक्त रहित ।

(१३) धन्नामुनिकी हस्तांगुलीयों जेसे तुवर, मुग, मट, उडदकी तरुण फली, काटके अतापसे सुकाइके माफीक पुर्ववत् ।

(१४) धन्नामुनिकी ग्रीवा (गरदन) जेसे लोटाका गला, कुडाका गला, कमंडलके गला इत्यादि मंस रहित पुर्ववत् ।

(१५) धन्नामुनिके होठ जेसे सुकी जलोख, सुका श्लेष्म, लाखकी गोली इसी माफीक यावत्—

(१६) धन्नामुनिकी जिह्वा सुका वडका पत्ता, पोलासका पत्ता, गोलरका पत्ता, सागका पत्ता यावत्—

(१७) धन्नामुनिका नाक जेसे आम्रकी कातली, अंबाडीकी गुटली, बीजोरेकी कातली, हरीछेदके सुकाइ हो इस माफीक—

(१८) धन्नामुनिकी आंखो (नेत्र) वीणाका छिद्र, वांसलीके छिद्र, प्रभातका तारा इसी माफीक—

(१९) धन्नामुनिका कान मूलेकी छाल, खरबुजेकी छाल, कारेलाकी छाल इसी माफीक—

(२०) धन्नामुनिका शिर (मस्तक) जेसे तुंबाका फल, कोलाका फल, सुका हुवा होता है इसी माफीक—

(२१) धन्नामुनिका सर्व शरीर सुका, भुखा, लुखा, मांस रक्त रहित था ।

इन्ही २१ बोलोंमें उदर, कान, होठ, जिह्वा ये च्यार बोलमें हाड नहीं था। शेष बोलोंमें मंस रक्त रहित केवल हाडपर चरम चिटा हुवा नशा आदिसे बन्धा हुवा शरीर मात्रका आकार दीखाइ दे रहा था। उठते बेठते समय शरीर कडकड बोल रहा था। पांसली आदिकी हड्डीयों मालाके मणकोंकी माफीक अलग अलग गीनी जाती थी, छातीका रंग गङ्गाकी तरंग समान तथा सुका सर्पका खोखा मुताबिक शरीर हो रहा था, हस्त तो सुका थोरोंके पंजे समान था, चलते समय शरीर कम्पायमान हो जाता था, मस्तक डीगडीग करता था, नेत्र अन्दर बेठ गया था, शरीर निस्तेज हो रहा था, चलते समय जेसे काष्टका गाडा, सुके पत्तेका गाडा तथा कोडीयोंके कोथलोंका अवाज होता है इसी माफीक धन्नामुनिके शरीरसे हड्डीयोंका शब्द होता था हलना, चलना, बोलना यह सब जीवशक्तिसे ही होता था। विशेषाधिकार खंदकजीसे देखो (भगवती सूत्र श० २ उ० १)

इतना तो अवश्य था कि धन्नामुनिके आत्मबलसे उन्होंका तपतेजसे शरीर वडा ही शोभायमान दीखाइ दे रहा था।

भगवान् वीरप्रभु भूमंडलको पवित्र करते हुवे राजगृह नगरके गुणशीलोद्यानमें पधारे। श्रेणिकराजादि भगवान्को वन्दनको गया। देशना सुनके राजा श्रेणिकने प्रश्न किया कि हे करुणासिन्धु! आपके इन्द्रभूति आदि चौदा हजार मुनियोंके अन्दर दुष्कर करणी करनेवाला तथा महान् निर्जरा करनेवाला मुनि कोन है?

भगवानने उत्तर फरमाया कि हे श्रेणिक! मेरे चौदा हजार मुनियोंके अन्दर धन्ना नामका अनगार दुष्कर करणीका करनेवाला है महानिर्जराका करनेवाला है।

. श्रेणिकराजाने पुछा कि क्या कारण है ?

भगवानने फरमाया कि हे धराधिप ! काकंदी नगरीमें भद्रा शेठाणीका पुत्र बत्तीस रंभार्वोके साथ मनुष्य संबन्धी भोग भोगव रहा था। वहांपर मेरा गमन हुवा था, देशना सुन मेरे पास दीक्षा लेके छठ छठ पारणां, पारणे आंबिल यावत् धन्नामुनिका शरीरका संपूर्ण वर्णन कर सुनाया। "इस वास्ते धन्ना०"

श्रेणिकराजा भगवानको वन्दन-नमस्कार कर धन्नामुनिके पास आया, वन्दन-नमस्कार कर बोला कि हे महाभाग्य ! आपको धन्य है पुर्वभवमें अच्छा पुन्योपार्जन कीया था कृतार्थ है आपका मनुष्यजन्म, सफल किया हैं आपने मनुष्यभव इत्यादि स्तुति कर वन्दन कर भगवानके पास आया अर्थात् जेसा भगवानने फरमायाथा वेसा ही देखनेसे बडी खुशी हुई भगवानको वन्दकर अपने स्थानपर गमन करता हुवा।

धन्नोमुनि एक समय रात्रीमें धर्म चिंतवन करता हुवा एसा विचार किया कि अब शरीरसे कुच्छ भी कार्य हो नही सक्ता है पौद्गल भी थक रहा है तो सूर्योदय होते ही भगवानसे पुच्छके विपुलगिरि पर्वत् पर अनसन करना ठीक है सूर्योदय होते ही भगवानकि आज्ञा ले सर्व साधु साध्वियोंसे क्षमत्क्षामणा कर स्थिवर मुनियोंके साथ धीरे धीरे विपुलगिरि पर्वतपर जाके च्यारों आहारका त्याग कर पादुगमन अनसन कर दीया आलोचन पूर्वक एक मासका अनसनके अन्तमे समाधिपूर्वक काल कर उर्ध्व लोकमें सर्व देवलोकोंके उपर सर्वार्थ सिद्ध वैमानमें तेतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवता हो गये अन्तर महुर्तमें पर्याप्ता भावको प्राप्त हो गया।

स्थिवर भगवान धन्ना मुनिको काल किया जानके परि-

निर्वानार्थ काउस्सग्ग कर धन्ना मुनिका वस्त्रपात्र लेके भगवानके पास आये वस्त्रपात्र भगवानके आगे रखके बोले कि हे भगवान आपका शिष्य धन्ना नामका अनगार आठ मासकि दीक्षा एक मासका अनसन कर कहां गया होगा ?

भगवानने कहा कि मेरा शिष्य धन्ना नामका अनगार दुष्कर करनी कर नव मासकि सर्व दीक्षा पाल अन्तिम समाधी पुर्वक काल कर उर्ध्व सर्वार्थसिद्ध नामका महा वैमानमें देवता हूवा है। उसकी तेतीस सागरोपमकि स्थिति है।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान धन्ना नामका देव देवलोकसे चवके कहां जावेगा ?

भगवानने उत्तर दीया। महाविदेहक्षेत्रमें उत्तम जातिकुलके अन्दर जनम धारण करेगा वह कामभोगसे विरक्त होके और स्थिवरोंके पास दीक्षा लेके तपश्चर्यादिसे कर्मोका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा। इति तीसरे वर्गका प्रथम अध्ययन समाप्तं।

इसी माफीक सुनक्षत्र अनगार परन्तु वहुत वर्ष दीक्षा पाली सर्वार्थसिद्ध वैमानमें देव हुवे महाविदेहक्षेत्रमे मोक्ष जावेगा। इति ॥ २ ॥

इसी माफीक शेष आठ परन्तु दो राजगृह, दो श्वेतंबिका, दो वाणीया ग्राम, नवमो हथनापुर दशमो राजग्रह नगरके (३) ऋषिदाश (४) पेलकपुत्र (५) रामपुत्रका (६) चन्द्रकुमार (७) पोष्टीपुत्र (८) पेढालकुमार (९) पोटिलकुमार (१०) वहलकुमारका।

धनादि नव कुमारोंका महोत्सव राजावोंने ओर वहलकुमारका पिताने कीयाथा।

धन्नो नवमास, वेहल्लकुमर मुनि छे मास, शेष आठ मुनियो बहुत काल दीक्षा पाली। दशो मुनि सर्वार्थसिद्ध वैमान तेतीस सागरोपमकि स्थितिमें देवता हुवे वहांसे चवके महाविदहक्षेत्रमे मोक्ष जावेगा इति श्री अनुत्तरोववाइसूत्रके तीसरे वर्गके दशाध्ययन समाप्तं।

इति श्री अनुत्तरोववाइ सूत्रका मूलपरसे संक्षिप्त सार।

इतिश्री शीघ्रबोध भाग १७ वा समाप्तम्.



श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पु. नं. ६१

श्री ककसूरीश्वर सद्‌गुरुभ्यो नमः

अथ श्री

शीघ्रबोध भाग १८ वां.

श्रीसिद्धसूरीश्वर सद्‌गुरुभ्यो नमः

अथश्री

निरयावलिका सूत्र.

(संक्षिप्त सार)



पांचमा गणधर सौधर्मस्वामि अपने शिष्य जम्बुप्रते कह रहे है कि हे चीरंजीव जम्बु ! सर्वज्ञ भगवान वीरप्रभु निरयावलिका सूत्रके दश अध्ययन फरमाये है वह मैं तुझ प्रति कहता हुं ।

इस जम्बुद्विपमें भारतभूमिके अलंकाररूप अंगदेशमें अलकापुरी सदृश चम्पा नामकि नगरी थी. जिस्के बाहार इशानकोंनमे पुर्णभद्र नामका उद्यान. जिस्के अन्दर पुर्णभद्र यक्षका यक्षायतन. अशोकवृक्ष और पृथ्वीशीलापट्ट. इन सबका वर्णन ' उववाइ सूत्र ' में सविस्तार किया हुवा है शास्त्रकारोंनें उक्त सूत्रसे देखनेकि सूचना करी है ।

उस चम्पानगरीके अन्दर कोणक नामका राजा राज कर राहाथा जिस्के पद्मावति नामकि पट्टराणी अति सुकुमाल और सुन्दराही, पांचेन्द्रिय परिपुर्ण. महीलायोंकि गुण संयुक्त अपने पतिके साथ अनुरक्त भोग भोगव रहीथी।

उस चंपा नगरीमें श्रेणकराजाका पुत्र काली राणीका अंगज. काली नामका कुँमर वसताथा। एक समयकि वात है कि कालीकुमार तीन हजार हस्ती. तीन हजार अश्व. तीन हजार रथ. और तीन क्रोड पेदलके परिवारसे. कोणकराजाके साथ रथमुशल संग्राममें गया था।

कालीकुँमारकी माता कालीराणी एक समय कुटम्य चितामें वरतती हुइ एसा विचार कियाकि मेरा पुत्र रथमुशल संग्राममें गया है वह संग्राममें जय करेगा या नही ? जीवेगा या नही ? मैं मेरा कुँमरको जीता हुवा देखुगा या नही ? इस वातोंका आर्तध्यान करने लगी।

भगवान् वीरप्रभु अपने शिष्य समुदायके समुहसे पृथ्वीमंडलको पवित्र करते हुये चम्पानगरीके पुर्णभद्र उद्यानमे पधारे।

परिषदावृन्द भगवनको वन्दन करनेको गये. इदर कालीराणीने भगवनके आगमनकि वार्ता सुनके विचार किया कि भगवान सर्वज्ञ है चलो अपने मनका प्रश्न पुछके इस वातका निर्णय करे कि शायत् मेरा पुत्र जीवताको मैं देखुगी या नही।

कालीराणीने अपने अनुचरोंको आदेश दीया कि मैं भगवानको वन्दन करनेके लिये जाती हु वास्ते धार्मीक प्रधानरथ. अच्छी सजावटकर तेयार कर जल्दी लावो।

कालीराणी आप मज्जन घरके अन्दर प्रवेश किया स्नान मज्जन कर अपने धारण करने योग वस्त्राभूषण जोकि वहुत कि-

मति थे वह धारणकर वहुतसे नोकर चाकर खोजा दास दासी-योंके परिवारसे वहारके उत्स्थान शालमें आइ, वहांपर अनुचरोंने धार्मीक रथको अच्छी सजावट कर तैयार रखा था, कालीराणी उस रथपर आरूढ हो चम्पानगरीके मध्यवजारसे निकलके पूर्णभद्रोद्यानमें आइ, रथसे उतरके सपरिवार भगवानको वन्दन-नमस्कार कर सेवा-भक्ति करने लगी।

भगवान् वीरप्रभुने कालीराणी आदि श्रोतागणोंको विचित्र प्रकारसे धर्मदेशना सुनाइ कि हे भव्य! इस अपार संसारके अन्दर जीव परिभ्रमन करता है इसका मूल कारण आरंभ और परिग्रह है। जवतक इन्होंका परित्याग न किया जाय. वहांतक संसारके जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक इत्यादि दुःखसे छुटना नहोगा, वास्ते सर्वशक्तिवान् वनके सर्व व्रत धारण करो अगर एसा न वने तो देशव्रती वनो, ग्रहन किये हुवे व्रतोंको निरतिचार पालनेसे जीव आराधि होता है. आराधि होनेसे ज० तीन उत्कृष्ट पन्दरा भवमें अवश्य मोक्ष जाता है इत्यादि देशना दी।

धर्मदेशना श्रवण कर श्रोतागण यथाशक्ति त्याग वैराग्य धारण किया उस समय कालीराणी देशना श्रवण कर हर्ष संतोषको प्राप्त हो वोली कि हे भगवान्! आप फरमाते है वह सत्र सत्य है. मैं संसारसमुद्रके अन्दर इधर उधर गोथा खा रही हुं। हे करूणासिन्धु! मेरा पुत्र कालीकुमार सैन लेके कोणकराजाके साथ रथमुशल संग्राममें गया है तो क्या वह शत्रुचोंपर विजय करेगा या नहीं? जीवेगा या नहीं? हे प्रभो! में मेरा पुत्रको जीवता देखुंगी या नहीं?

भगवानने उत्तर दिया कि हे कालीराणी! तेरा पुत्र तीन हजार हस्ती, तीन हजार अश्व, तीन हजार रथ और तीन क्रोड

पैदलके परिवारसे रथमुशल संग्राममें गया है। पहले दिन चेटक[1] नामका राजा जो श्रेणिकराजाका सुसरा चेलनाराणीका पिता, कोणकराजाके नानाजी कालीकुमारके सामने आया कालीकुमारने कहा कि हे वृद्धवयधारक नानाजी ! आपका बाण आने दिजिये, नहींतो फीर बाण फेंकनेकी दिलहीमें रहेगी। चेटकराजा पार्श्वनाथजीका श्रावक था वह वगर अपराधे किसीपर हाथ नहीं उठाते थे। कालीकुमारने धनुषबाणको खुब जोरसे चढाया. अपने ढींचणको जमीनपर स्थापन कर धनुष्यकी काणचको कानतक लेजाके जोरसे बाण फेंका परन्तु चेटकराजाको बाण लगा नहीं. आता हुवा बाणको देख चेटकराजाको बहुत गुस्सा हुवा। अपना अपराधि जानके चेटकराजाने पराक्रमसे बाण मारा जिससे जेसे पर्वतकी टूंक गीरती है इसी माफीक एकही बाणमें कालीकुमार मृत्युधर्मको प्राप्त हो गया। बस, सामंत शीतल हो गये, ध्वजापताका निचे गिर पडी वास्ते हे कालीराणी ! तुं तेरा कालीकुमार पुत्रको जीवता नही देखेगी।

कालीराणी भगवानके मुखारविन्दसे कालीकुँमर मृत्युकि बात श्रवणकर अत्यन्त दुःखसे पुत्रका शोक के मारे मुर्च्छित होके जेसे छेदी हुइ चम्पककी लता धरतीपर गिरती है इसी माफीक कालीराणी भी धरतीपर गिर पडी सर्व अंग शीतल हो गया. *

महुर्त्तादि कालके बादमें कालीराणी सचेतन होके भगवानसे

[1] चेटकराजाको देवीका वर था वास्ते उनका बाण कभी खाली नहीं जाता था।

* छद्मस्थोंका यह व्यवहार नही है कि किसीको दुख हो एसा कहे परन्तु सर्वज्ञने भविष्यका लाभ जाना था. कल्पातितोंके लिये कोसी प्रकारका कायदा नही होता है। इसी कारणसे कालीराणीने दीक्षा ग्रहन करी थी।

कहने लगी कि हे भगवान आप फरमाते हो वह सत्य है मैने नजरोंसे नही देखा है तथापि नजरोंसे देखे हुवे कि माफीक सत्य है एसा कह वन्दन नमस्कार कर अपने रथपर बेठके अपने स्थानपर जानेके लिये गमन किया।

नोट—अन्तगढ दशांग आठवे वर्गमें इस कारणसे वैंरागको प्राप्त हो भगवानके पास दिक्षा ग्रहन कर एकावली आदि तपश्चर्या कर कर्म रिपुको जीत अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गइ है एवं दशो राणीयो समझना।

भगवानने कालीराणीको उत्तर दीयाथा उस समय गौतमस्वामि भी वहां मोजुद थे. उत्तर सुनके गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान। कालीकुमार चेटक राजाके बाणसे संग्राममें मृत्यु धर्मको प्राप्त हुवा है तो एसे संग्राममें मरनेवालोंकि क्या गति होती है अर्थात् कालीकुँमर मरके कौनसे स्थानमें उत्पन्न हुवा होगा ?

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! कालीकुमार संग्राममें मरके चोथी पंकप्रभा नामकि नरकके हेमाल नामका नरकावासमें दश सागरोपमकि स्थितिवाला नैरियापणे उत्पन्न हुवा है।

हे भगवान! कालीकुमारने कोनसा आरंभ सारंभ समारंभ कीया था. कोनसा भोग संभोगमें गृद्धित, मुर्च्छित और कोनसा अशुभ कर्मोंके प्रभावसे चोथी पंकप्रभा नरकके हेमाल नरकावासमें नैरियापणे उत्पन्न हुवा है।

उत्तरमें भगवान सविस्तारसे फरमाते है कि हे गौतम! जिस समय राजगृह नगरके अन्दर श्रेणिकराजा राज कर रहा था. श्रेणिकराजाके नन्दा नामकि राणी सुकुमाल सुन्दराकारथी उसी नन्दाराणीके अंगज अभय नामका कुँमर था। वह च्यार

बुद्धि संयुक्त साम, दाम, दंड, भेदका जाणकार, राजतंत्र चलानेमें बडाही दक्ष था. श्रेणिकराजाके अनेक रहस्य कार्य गुप्त कार्य करनेमें अग्रेश्वर था।

राजा श्रेणिकके चेलना नामकि राणी एक समय अपनि सुखशय्या के अन्दर न सुती न जागृत एसी अवस्थामें राणीने सिंहका स्वप्न देखा. राजासे कहना. स्वप्नपाठकोंको बोलाना. स्वप्नोंके अर्थ श्रवण करना. यह सर्व गौतमकुमारके अधिकारसे देखना।

राणी चेलनाको साधिक तीन मास होनेपर गर्भके प्रभावसे दोहले उत्पन्न हुये. कि धन्य है जो गर्भवन्ती मातावों जिन्होंका जीवित सफल है कि राजा श्रेणिकके उदरका मांस जिसको तेलके अन्दर शोला बनाके मदिराके साथ खाती हुइ भोगवती हुइ रहे, अर्थात् दोहलाको पूर्ण करे। एसा दोहलेको पुर्ण नहीं करती हुइ चेलना राणी शरीरमें कृष बन गइ. शरीर कम जोर. पंडुररंग. बदन बिलखा. नेत्रोंकि चेष्टा आदि दीन बन गइ औरभी चेलनाराणी, पुष्पमाला गन्ध वस्त्र भूषण आदि जो विशेष उपभोगमें लिये जातेथे-उसको त्यागरूप कर दिया था और अहोनिश अपने गालोंपर हाथ दे के आर्तध्यान करने लगी।

उस समय चेलना राणीके अंगकि रक्षा करनेवाली दासीयोंने चेलना राणीकि यह दशा देखके राजा श्रेणकसे सर्व बात निवेदन कि। राजा सर्व बात सुनके चेलनाराणीके पास आया और चेलना राणीको सुखे लुखे भूखे अर्थात् शरीरकि खराब चेष्टा देख बोलाकि हे प्रिये! आपका यह हाल क्यों हो रहा है. तुमारे दीलमें क्या बात है वह सब हमको कहो. ? राणी राजाका वचन सुना परन्तु पीच्छा उत्तर कुच्छभी न दीया. बातभी ठीक है कि उत्तर देने योग्य बातभी नहीथी।

राजाश्रेणिकने और भी दोय तीनवार कहा परन्तु राणीने कुच्छ भी जवाब नही दीया। आखिर राजाने कहा, हे राणी! क्या तेरे एसी भी रहस्यकी वात है कि मेरेकों भी नही कहती है? राणीने कहा कि हे प्राणनाथ मेरे एसी कोइ भी वात नही है कि मैं आपसे गुप्त रखुं परन्तु क्या करुं वह वात आपको केहने योग्य नही है। राजाने कहा कि एसी कोनसी वात है कि मेरे सुनने लायक नही है मेरी आज्ञा हैं कि जो वात हो सो मुझे कह दो। यह सुनके राणीने कहा कि हे स्वामि! उस स्वप्न प्रभावसे मेरे जो गर्भ के तीन मास साधिक होनेसे मुझे दोहला उत्पन्न हुवा है कि मैं आपके उदरके मांसके शुले मदिराके साथ भोगवती रहुं। यह दोहला पुर्ण न होनेसे मेरी यह दशा हुई है।

राजा श्रेणिक यह वात सुनके बोला कि हे देवी! अब आप इस वात कि बिलकुल चिंता मत करो. जिस रीतीसे यह तुमारा दोहला सम्पूर्ण होगा. एसा ही मैं उपाय करुंगा इत्यादि मधुर शब्दोसे विश्वास देके राजाश्रेणिक अपने कचेरीका स्थान था वहां पर आ गये।

राजाश्रेणिक सिंहासन पर बैठके विचार करने लगा कि अब इस दोहले को कीस उपायसे पूर्ण करना. उत्पातिक, विनयिक, कर्मीक, परिणामिक इस च्यारों बुद्धियोंके अन्दर राजाने खुब उपाय सोच कर यह निश्चय किया कि यातो अपने उदरका मांस देना पडेगा. या अपनि जबान जावेगा. तीसरा कोइ उपाय राजाने नही देखा। इस लिये राजा शुन्योपयोग होके चिंता कर रहा था।

इतनेमें अभयकुंमर राजाको नमस्कार करनेके लिये आया, राजाको चिंताग्रस्त देखके कुंमर बोला। हे तातजी! अन्य

दिनोंमि जब मैं आपके चरण कमलों में मेरा शिर देता हुं तब आप मुझे बतलाते है राज कि वार्ता अलाप करते है। आजतो कुच्छ भि नही, इतना ही नही बल्के मेरे आनेका भि आपको स्यात् ही ख्याल होगा। तो इस्का कारण क्या है मेरे मोजुदगीमें आपको इतनि क्या फीकर है ?

राजाश्रेणिकने चेलनाराणीके दोहले सबन्धी सब बात कही हे पुत्र ! मैं इसी चिंतामें हुं कि अब राणी चेलनाका दोहला कैसे पुर्ण करना चाहिये। यह वृत्तान्त सुनके अभयकुमार बोला हे पिताजी ! आप इस बातका किंचित् भी फीकर न करे, इस दोहलाको मैं पुर्ण करूगा यह सुन राजाकों पूर्ण विसवास होगया. अभयकुमार राजाको नमस्कार कर अपने स्थानपर गया. वहां जाके विचार करने पर एक उपाय सोचके अपने रहस्यके कार्य करनेवाले पुरुषोंकों बुलवाये। और कहेने लगे कि तुम जावों मांस वेचनेवालोंके वहा तत्कालिन मांस रुधिर संयुक्त गुप्तपणे ले आवो. इदर राजा श्रेणिकसे संकेत कर दीया कि जब आपके हृदय पर हम मंस रखके काटेंगे तब आप जोरसे पुकार करते रहना, राणी चेलनाको एक किनातके अन्तरमें बेठादी इतनेमें वह पुरुष मांस ले आये. बुद्धिके सागर अभयकुमरने इसी प्रकारसे राणी चेलनाका दोहला पुर्ण कर रहाथा कि राजाके उदर पर वह लाया हुवा मंस रख उसको काट काटके शुले बनाके राणीको दीया राणी गर्भके प्रभावसे उस्कों आचरण कर अपने दोहलेको पुर्ण कीया। तब राणीके दीलको शान्ति हुइ।

नोट—शास्त्रकारोंने स्थान स्थान पर फरमाया है कि हे भव्य जीवो ! कीसी जीवोंके साथ वैर मत रखो. कर्म मत बान्धो न जाने यह वैर तथा कर्म किस प्रकारसे कीस वखतमें उदय

होगा. राजा श्रेणिक और चेलनाके गर्भका जीव एक तापसके भवमें कर्म उपार्जन कीयाथा वह इस भवमें उदय हुवा है। इस कथानिक सबन्धका सार यह है कि कीसीके साथ वैर मत रखो. कर्म मत बान्धो. किमधिकम्।

एक समय राणीने यह विचार किया कि यह मेरे गर्भका जीव गर्भमें आते ही अपने पिताके उदर मांसभक्षण कीया है, तो न जाने जन्म होनेसे क्या अनर्थ करेंगा. इस लिये मुझे उचित है कि गर्भहीमें इसका विध्वंस करदुं। इसके लिये अनेक प्रयोग किया परन्तु सबके सब निष्फल हो गये। गर्भके दिन पुर्ण होनेसे चेलनाराणीने पुत्रको जन्म दिया। उस वखत भी चेलनाराणीने विचार किया कि यह कोइ दुष्ट जीव है. जो कि गर्भमें आते ही पिताके उदरका मांसभक्षण कीया था, तो न जाने वडा होनेसे कुलका क्षय करेगा या और कुच्छ करेगा. वास्ते मुझे उचित है कि इस जन्मा हुवा पुत्रको कीसी एकान्त स्थानपर (उखरडीपर) डालदुं। एसा विचार कर एक दासीको बुलाके अपने पुत्रको एकान्तमें डालदेनेकी आज्ञा दे दी।

यह हुकमकी नोकर-दासी उस राजपुत्रको लेके आशोक नामकी सुकी हुइ वाडीमें एकान्त जाके डालदीया। उस राजपुत्रको भग्नवाडीमें डालतो ही पुत्रके पुन्योदयसे वह वाडी नवपल्लवित हो गइ। उसकी खबर राजाके पास आइ।

नोट—दासीने विचारा कि मैं राणीके कहनेसे कार्य किया है परन्तु कभी राजा पुच्छेगा तो मैं क्या जवाब दुंगी. वास्ते यह सब हाल राजासे अर्ज करदेना चाहिये। दासीने सब हाल राजासे कहा. राजाने सुना। फिर

राजा श्रेणिक अशोकवाडीमें आया. वहांपर देखा जावे तो

तत्काल जन्मा हुवा राजपुत्र एकान्त स्थानमें पडा है, देखतेही राजा बहुत गुस्से हुवा, उस पुत्रको लेके राणी चेलनाके पास आया. राणी चेलनाका तिरस्कार करता हुवा राजाने कहा कि हे देवी! यह तुमारे पहला ही पहले पुत्र हुवा है, इसका अनुक्रमे अच्छी तरहसे संरक्षण करो. राणी चेलना लज्जित होके राजाके वचनोंको सविनय स्वीकार कर अपने शिरपे चढाये और राजा श्रेणिकके हाथसे अपने पुत्रको ग्रहन कर पालन करने लगी।

जब राजपुत्रको एकान्त डालाथा, उस समय कुमारकी एक अंगुली कुर्कुटने काटडाली थी. उसीमें रौद्रविकार होके रद हो गइ. उसके मारा वह बालक रौद्र शब्दसे रूदन कर रहा था. राणीने राजाके कहनेसे पुत्रको स्वीकार कीया था। परन्तु अन्दरसे तो वह भी ग्रती थी. जब पुत्रका रूदन शब्द सुन खुद राजा श्रेणिकपुत्रके पास आके उस सडे हुये रौद्रको अपने मुहमें अंगुलीसे चुस चुसके बाहर डालता था. जब कम वेदना होनेसे वह पुत्र स्वल्प देर चुप रहता था और फीर रूदन करने लगजाता था. इस माफीक राजा रातभर उस पुत्रका पालन करनेमें खुबही प्रयत्न किया था।

नोट—पाठकवर्गको ध्यान रखना चाहिये कि मातापिताओंका कितना उपकार है और वह बालककी कितनी हिफाजत रखते है।

उस बालकको तीजे दिन चन्द्र-सूर्यके दर्शन कराये, छठे दिन रात्रिजाग्रन किया, इग्यारमे दिन असूचि कर्म दूर किया, बारहवें दिन असनादि बनायके न्यात-जातवालोंको बुलायके उस कुमारका गुणनिष्पन्न नाम जोकी इस बालकको जन्मसमय

एकान्त डालनेसे कुर्कटने अंगुली काटडाली थी, वास्ते इस कुमारका नाम " कोणक " दीया था.

क्रमसर वृद्धि होते हुवेके अनेक महोत्सव करते हुवे. युवक अवस्था होनेपर आठ राजकन्यावोंके साथ विवाह कर दिये. यावत् मनुष्य संवन्धी कामभोग भोगवता हुवा सुखपूर्वक काल निर्गमन करने लगा.

एक समय कोणककुमारके दिलमें यह विचार हुवा कि श्रेणिकराजाके मोजुदगीमें मैं स्वयं राज नहीं करसक्ता हुं, वास्ते कोइ मोका पाके श्रेणिकराजाको निवडवन्धन कर मैं स्वयं राज्याभिषेक करवाके राज करता हुवा विचरुं। केइ दिन इस वातकी कोशीष करी, परन्तु एसा अवसर ही नहीं वना। तव कोणकने काली आदि दश कुमारोंको वुलवायके अपने दीलका विचार सुनाके कहा कि अगर तुम दशो भाइ हमारी मददमें रहो तो में अपने राजका इग्यारा भाग कर एक भाग मैं रखुंगा और दश भाग तुम दशो भाइयोंको भेंट दुंगा। दशो भाइयोंने भी राजके लोभमें आके इस वातको स्वीकार कर कोणककी मददमें हो गये। " परिग्रह दुनियोंमें पापका मूल कारण है परिग्रहके लिये केसे केसे अनर्थ किये जाते है. "

एक समय कोणकने श्रेणिकराजाको पकड निवडवन्धन वांधके पिंजरेमें वन्ध कर दिया, और आप राज्याभिषेक करवाके स्वयं राजा वन गया. एक दिन आप स्नानमज्जन कर अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर अपनी माता चेलनाराणीके चरण ग्रहन करनेको गया था. राणी चेलनाने कोणकका कुच्छ भी सत्कार या आशिर्वाद नहीं दिया। इसपर कोणक वोला कि हे माता! आज तेरे पुत्रको राज प्राप्त हुवा है तो तेरेको हर्ष क्यों नहीं

होता है। चेलनाने उत्तर दिया कि हे पुत्र! तुमने कोनसा अच्छा काम किया है कि जिस्के जरिये मुझे खुशी हो। क्यों कि में तो गर्भमें आया था जबहीसे तुझे जानती थी, परन्तु तेरे पिताने तेरेपर बहुतही अनुराग रखा था जिस्का फल तेरे हाथोंमे मीला है अर्थात् तेरे देवगुरु तुल्य तेरा पिता है उन्होंको पिंजरेमें बन्ध कर तुं राजप्राप्त कीया है, यह कितने दुःखकी बात है. अब तुंही कह के मुझे किस बातकी खुशी आवे।

कोणकके पूर्वभवका वैर श्रेणिकराजासे था वह निवृत्ति हो गया. अब चेलनाराणीके वचनका कारण मीलनेसे कोणकने पुच्छा कि हे माता! श्रेणिकराजाका मेरेपर केसा अनुराग था. तब गर्भमे लेके सब बात राणी चेलनाने सुनाइ। इतना सुनतेही अत्यन्त भक्तिभावसे कोणक बोला कि हे माता! अब मैं मेरे हाथसे पिताका बन्धन छेदन करुंगा। एसा कहके कोणकने एक कुरांट (फर्सी) हाथमें लेके श्रेणिकराजाके पास जाने लगा। उधर राजा श्रेणिकने कोणकको आता हुवा देखके विचार किया कि पेस्तर तो इस दुष्टने मुझे बन्धन बांधके पिंजरामें पुर दीया है अब यह कुरांट लेके आरहा है तो न जाने मुझे कीस कुमौतसे मारेगा. इससे मुझे स्वयंही मर जाना अच्छा है, एसा विचारके अपने पास मुद्रिकामें तेल-हीरकणी थी वह भक्षण कर तत्काल शरीरका त्याग कर दीया. जब कोणक नजदीक आके देखे तो श्रेणिक निःचेष्ट अर्थात् मृत्यु पाये हुये शरीरही देखाइ देने लगा. उस समय कोणकने बहुत रुदन-विलाप किया परन्तु भव्यताको कोन मीटा सके. उस समय सामन्त आदि एकत्र होके कोणकको आश्वासना दी. तब कोणकने रुदन करता हुवा तथा अन्य लोक मीलके श्रेणिकका निर्वाण कार्य अर्थात् मृत्युक्रिया करी। तत्पश्चात् कितनेक रोजके बाद कोणकराजा राजगृहीमें निवास

करते हुवेको वडाही मानसिक दुःख होने लगा. वखत वखतपर दीलमें आति है कि मैं केसा अधन्य हुं, अपुन्य हुं, अकृतार्थ हुं, कि मेरे पिता–देवगुरुकी माफीक मेरेपर पूर्ण प्रेम रखनेवाले होनेपर भी मेरी कितनी कृतघ्नता है। इत्यादि दीलको वहुत रंज होनेके कारणसे आप अपनी राजधानी चम्पानगरीमें ले गये और वहांही निवास करने लगा। वहांपर काली आदि दश भाइयोंको बुलायके राजके इग्यारा भाग कर एक भाग आप रखके शेष दश भाग दश भाइयोंको भेट दीया, और राज आप अपने स्वतंत्रतासे करने लगगये, और दशों भाइओंने कोणककी आज्ञा स्वीकार करी।

चम्पानगरीके अन्दर श्रेणिकराजाका पुत्र चेलनाराणीका अंगज वहलकुमार जोके कोणकराजाके छोटाभाइ निवास करता था श्रेणिकराजा जीवतो 'सीचांणक गन्ध हस्ती और अठारे सरोंवाला हार देदीया था। सींचाणक गन्ध हस्ती केसे प्राप्त हुवा यह बात मूलपाठमें नही है तथापि यहां पर संक्षिप्त अन्य स्थलसे लिखते है।

एक वनमें हस्तीयोंका युथ रहता था उस युथके मालीक हस्तीको अपने युथका इतना तो ममत्व भाव था कि कीसी भी हस्तणीके बच्चा होनेपर वह तुरत मारडालता था कारण अगर यह बच्चा वडा होनेपर मुझे मारके युथका मालिक बन जावेगा। सब हस्तणीयोंके अन्दर एक हस्तणी गर्भवन्ती हो अपने पेरोंसे लंगडी हो १–२ दिन युथसे पीच्छे रेहने लगी, हस्तीने विचार किया कि यह पावोंसे कमजोर होगी। हस्तणीने गर्भ दिन नजीक जानके एक तापसोंके वृक्षजालीके अन्दर पुत्रको जन्म दीया. फीर आप युथमें सेमल हो गइ। तापसोंने उस हस्ती बच्चेको पोषण कर वडा किया और उसके सूंढके अन्दर एक

बाल्टी डालके नदीसे पाणी मंगवायके बगेचेको पाणी पीलाना शरू कर दीया बगेचेकों पाणी सींचन करनेसे ही इसका नाम तापसोने सींचाणा हस्ती रखाथा। कितनेक कालके बाद हस्ती बडा, मदमें आया हुवा, उन्ही तापसोंके आश्रम और बगेचेका भंग कर दीया, तापस क्रोधके मारा राजा श्रेणिक पास जाके कहा कि यह हस्ती आपके राजमें रखने योग्य है राजाने हुकम कर हस्तीकों मंगवायके संकल डाल बन्ध कर दीया उसी रहस्ते तापस निकलते हस्तीकों उद्देश कर बोला रे पापी ले तेरे कीये हुवे दुष्कृत्यका फल तुजे मीला हैं जो कि स्वतंत्रतासे रहेनेवाले तुझको आज इस कारागृहमें बन्ध होना पडा है यह सुन हस्ती अमर्षके मारे संकलोंको तोड जंगलमें भाग गया. राजा श्रेणिकको इस बातका बडाही रंज हुवा तब अभयकुमार देवीकि आराधना कर हस्तीके पास भेजी देवी हस्तीको बोध दीया और पुर्वभव व-हलकुमरका संबन्ध बतलाया इतनेमें हस्तीको जातिस्मरण ज्ञान हुवा, देवीके कहनेसे हस्ती अपने आप राजाके वहां आ गया. राजा भी उसको राज अभिशेष कर पट्टधारी हस्ती बना लिया इति।

हारकि उत्पत्ति—भगवान् वीरप्रभु एक समय राजगृह-नगर पधारे थे राजा श्रेणिक बडाही आडंबरसे भगवानको वन्दन करनेको गया।

सौधर्म इन्द्र एक वखत सम्यक्त्वकि दृढताका व्याख्यान करते हुये राजा श्रेणिककि तारीफ करी कि कोइ देव दानव भि समर्थ नही है कि राजा श्रेणिकको समकितसे क्षोभित करसके।

सर्व परिषदोंके देवोंने यह बात स्वीकार करलीथी. परन्तु दोय मिथ्यादृष्टी देवोंने इस बातको न मानते हुये अभिमान कर मृत्युलोकमें आने लगे।

राजाश्रेणिक भगवान कि अमृतमय देशना श्रवणकर वापीस नगरमें जा रहा था. उस समय दोय देवता श्रेणिकराजाकि परिक्षा करनेके लिये एकने उदरवृद्धि कर साध्विका रूप वनाया. दुकान दुकान सुंठ अजमाकि याचना कर रहीथी. राजा श्रेणिकने देख उसे कहा कि अगर तेरेको जो कुच्छ चाहिये तो मेरे वहां से लेजा परन्तु यहां फीरके धर्मकि हीलना क्यों करती है। साध्विने उत्तर दीया कि हे राजन्! मेरेजेसी ३६००० है तुं कीस कीसको सामग्री देवेंगा। राजाने कहाकी हे दुष्टा! छतीस हजार हे वह सर्व रत्नोंकि माला है तेरे जेसी तो एक तुंही है। दुसरा देव साधु बन एक मच्छी पकडनेकि जाल हाथमे लेके जाताको राजा देख उसे भी कहा कि तेरी इच्छा होगा वह हमारे यहां मील जायगा। तब साधु बोलाकि एसे १४००० हैं तुम कीस कीसको दोगे. राजा उत्तर दीया कि १४००० रत्नोकि माला है तेरे जेसा तुंही है यह दोनों देवतोने उपयोग लगाके देखा तो राजाके एक आत्मप्रदेशमें भी शंका नही हुइ. तब देवतावोंने वडीही तारीफ करी। एक मृत्युक (मटी) का गोला और एक कुंडलकि जोडी यह दो पदार्थ देके देव आकाशमें गमन करते हुवे। राजा श्रेणिकने कुंडल युगल तो नंदाराणीको दीया और मटीका गोला राणी चेलनाको दीया। चेलना उस मटीका गोलाको देख अपमानके मारी गोलाको फेक दीया, उस गोलाके फेक देनेसे फूटके एक दीव्य हार नीकला इति।

इस हार और सींचाण हस्तीसे वहलकुमारका वहुतसा प्रेमथा इस वास्ते राजा श्रेणिक ओर राणी चेलनाने जीवतो हार और हस्ती वहलकुमरको दे दीया।

वहलकुमर अपने अन्तेवर साथमें लेके चम्पानगरीके मध्य-भागसे निकलके गंगा महा नदी पर जातेथे. वहांपर सींचांना

गन्धहस्ती वहलकुमारकि राणीको शुंडसे पकड जल क्रीडा करता हुवा. कबी अपने शिरपर कबी कुंभस्थलपर कबी पीठपर, इत्यादि अनेक प्रकारकि किडा करताथा. एसे बहुतसे दिन निर्गमन हो गये। इस बातकी चम्पानगरीके दोय तीन चार तथा बहुतसे रहस्ते एकत्र होते है वहांपर लोक श्लाघा करने लगे कि राजका मोजमजा सुख साहीबी तो वहलकुमर ही भोगव रहा है कि जिन्होंके पास सीचानक गन्धहस्ती और अठारा सर वाला दिव्य हार है। एसा सुख राजाकोणकके नही है क्यूं कि उसके शिर तो सब राजकि खटपट है इत्यादि लोक प्रवाह चल रहाथा।

नगर नियासी लोगोंकी वह वार्ता कोणकराजाकी राणी पद्मावतिने सुनी, औरतोंका स्वभावही होता है कि एक दुसरेकी संपत्तिको शान्तदृष्टिसे कभी नहीं देख सकी हैं, तो यहां तो देराणी-जेठाणीका मामला होनेसे देखही केसे सके। पद्मावती राणी हारहस्ती लेनेमें बडी ही आतुरता रखती हुइ. उसी वखत राजा कोणकके पास जाके अच्छी तरह राजाका कान भर दिया कि यह दुनियोंका अपवाद मुझसे सुना नहीं जाता है, वास्ते आप कृपा कर हारहस्ती मुझे मंगवा दो।

राजा कोणक अपनी राणीकी बात सुनके बोला. कि हे देवी ! इस बातका कुच्छ भी विचार न करो. हारहस्ती मेरे पितामाताकी मोजुदगीमें वहलकुमारको दीया गया है और वह मेरा लघुवन्धव है, तो वह हारहस्ती मेरे पास रहे तो क्या और वहलकुमारके पास रहे तो क्या. अगर मंगाना चाहुंगा तबही मंगा सकुंगा। इत्यादि मधुरतासे उत्तर दिया।

दुनियां कहती है कि " बांका पग बाइपदमोंका है " राणी पद्मावतीको संतोष न हुवा। फीर दोय तीनवार राजासे अर्ज

करी परन्तु राजाने तो इस बातपर पूर्ण कान भी नहीं दिया। जब राणीने अपना स्त्रीचरित्रका प्रयोग किया, राजासे कहा कि आप इतना विश्वास रख छोडा है. भाइ भाइ करते है परन्तु आपके भाइका आपकी तर्फ कितना भक्तिभाव है? मुझे उमेद नहीं है कि आपके मंगानेपर हार–हस्ती भेज देवे. अगर मेरे कहनेपर आपका इतबार न हो तो एक दफे मंगवाके देख लिजिये।

एसा तूनाके मारा राजा कोणक एक आदमीको वहलकुमारके पास भेजा. उसके साथ संदेशा कहलाया था कि हे लघुभ्रात! तुं जाणता है कि राजमें जो रत्नादिकी प्राप्ति होती है वह सब राजाकी ही होती है, तो तेरे पास जो हारहस्ती है वह मेरेको मुफ्त कर दे, अर्थात् मुझे दे दो। इत्यादि। वह प्रतिहार जाके कोणकराजाका संदेशा वहलकुमारको सुना दिया।

वहलकुमारने नम्रताके साथ अपने वृद्धभ्रात (कोणकराजा) को अर्ज करवाइ कि आप भी श्रेणिकराजाके पुत्र, चेलनाराणीके अंगज हो और मैं भी श्रेणिकराजाके पुत्र–चेलनाराणीके अंगज हुं और वह हारहस्ती अपने मातापिताकी मोजुदगीमें हमको दिया है इसके बदलेमें आपने राजलक्ष्मीका मेरेको कुच्छ भी विभाग नहीं देते हुवे आप अपने स्वतंत्र राज कर रहे हो। यद्यपि आपके मातापितावोंने किया हुवा विभाग नामंजुर हो तो अबी भी आप मुझे आधा राज दे देवे और हारहस्ती ले लिजिये।

प्रतिहारी कोणकराजाके पास आके सर्व वार्ता कह दी. जब राणी पद्मावतीको खबर हुइ, तब एक दो तूना और भी मारा कि लो, आपके भाइने आपके हुकमके साथ ही हारहस्ती भेज दिया है इत्यादि।

राजा कोणकने दोय तीन दफे अपना प्रतिहारके साथ कह-

लाया, परन्तु वहलकुमर कि तर्फसे यह ही उत्तर मीला कि यातो अपने मातापिताके इन्साफ पर कायम रेहे, हारहस्ती मेरे पास रेहने दो, आप अपने राजसे ही संतोष रखो, अगर आपको अपने मातापिताके इन्साफ मंजुर न रखना हो तो आधा राज हमको देदो और हारहस्ती लेलो इत्यादि।

राजा कोणक इस बात पर ध्यान नही देता हुवा हारहस्ती लेनेकि ही कोशीष करता रहा।

वहलकुमरने अपने दीलमें सोचा कि यह कोणक जब अपने पिताको निवड बन्धन कर पिंजरेमें डालनेमें किंचत् मात्र शरम नही रखी तो मेरे पाससे हारहस्ती अगर जप्ती लेले इसमें क्या आश्चर्य है? क्यो कि राजसत्ता सैन्यादि सब इसके हाथमें है। इस लिये मुझे चाहिये कि कोणककि गेरहाजरीमें मैं अपना अन्तेवर आदि सब जायदाद लेके वैशालानगरीका राजा चेटक जो हमारे नानाजी है उन्होंके पास चला जाउं। कारण चेटकराजा धर्मिष्ट न्यायशील है वह मेरा इन्साफ कर मेरा रक्षण करेगा। अलम्। अवसर पाके वहलकुमर अपने अन्तेवर और हारहस्ती आदि सब सामग्री ले चम्पानगरीसे निकल वैशालानगरी चला गया. वहां जाके अपने नानाजी चेटकराजाको सब हकिकत सुनादि. चेटकराजाने वहलकुमारका न्यायपक्ष जान अपने पास रख लिया।

पीछेसे इस बातकी राजा कोणकको खबर हुइ तब बहुत ही गुस्सा किया कि वहलकुमरने मुझे पुच्छा भी नही और वैशाला चला गया उसी वखत एक दूतको बोलाया और कहा कि तुम वैशालानगरी जाओ हमारे नानाजी चेटकराजा प्रत्ये हमारा नम-स्कार करो और नानाजीसे कहो कि वहलकुमर कोणकराजाको

विगर पुच्छा आया है तो आप कृपाकर हारहस्ती और वहल-कुमारको वापीस भेज दीरावे।

दूत वैशाला जा के राजा चेटकको नमस्कार कर कोणकका संदेसा कह दीया उसके उत्तरमें राजा चेटक वोला कि हे दूत ! तुम कोणकको कहदेना कि जेसे श्रेणिकराजाका पुत्र चेलना देवीका अंगज कोणक है ऐसाही श्रेणिकराजाका पुत्र चेलना-राणीका अंगज वहलकुमार है इन्साफ कि वात यह है कि हार-हस्ती अवल तो कोणकको लेना ही नही चाहिये क्यों कि वहल-कुमर कोणकका लघु भ्रात है और माता पितावोंने दिया हुवा है अगर हारहस्ती लेना ही चाहते हो तो आधा राज वहलकुमरको दे देना चाहिये। इस दोनों वातोंसे एक वात कोणक मंजुर करता हो तो हम वहलकुमरको चम्पानगरी भेज सक्ते है इतना कहके दूतको वहांसे विदाय कर दीया।

दूत वैशाला नगरीसे रवाना हो चम्पानगरी कोणकराजाके पास आयके सब हाल सुना दिया और कह दिया कि चेटक-राजा वहलकुमारको नही भेजेगा. इसपर कोणकराजाको और भी गुस्सा हुवा. तब दूतको बुलायके कहा कि तुम वैशाला नगरी जावो. चेटकराजा प्रत्ये कहना कि आप वृद्ध अवस्थामें ही राज-नीतिके जानकार हो. आप जानते हो कि राजमें कोइ प्रकारके पदार्थ उत्पन्न होते है. वह सब राजाका ही होता है तो आप हारहस्ती और वहलकुमारको कृपा कर भेज दीरावे. इत्यादि कहके दूतको दुसरीवार भेजा.

दूत कोणकराजाका आदेशको सविनय स्वीकार कर दुसरी दफे वैशाला नगरी गया. सब हाल चेटकराजाको सुना दिया. दुसरो दफे चेटकराजाने वही उत्तर दिया कि मेरे तो कोणक

और वहल दोनों सरखा है. परन्तु इन्साफकी बात है कि आधा राज दे दे और हारहस्ती लें ले. एसा कहके दूतको रवाना किया।

दूत चम्पानगरी आके कोणकराजाको कह दिया कि सिवाय आधा राजके हारहस्ती और वहलकुमारको नहीं भेजेगा. एसा आपके नानाजी चेटकराजाका मत है।

यह सुनके कोणकराजाको बहुत ही गुस्सा हुवा. तब तीसरीवार दूतको बुलायके कहा कि जावो, तुम वैशाला नगरी राजा चेटकके सिंहासन पादपीठको डावे पगकी ठोकर देके भालाके अन्दर पोके यह लेख देनेके बाद कह देना कि हे चेटक-राजा! तुं मृत्युकी प्रार्थना करनेको साहसिक क्यो हुवा है. क्या तुं कोणकराजाको नहीं जानता है अगर या तो तुं हारहस्ती और वहलकुमारको कोणकराजाकी सेवामें भेजदे नहीं तो कोणकरा-जासे संग्राम करनेको तैयार हो जाव. इत्यादि समाचार कहना।

दूत तीसरी दफे वैशाला नगरी आया. अपनी तर्फसे चेट-कराजाको नमस्कार कर फीर अपने मालिक कोणकराजाका सब हुकम सुनाया।

दूतका वचन सुनके चेटकराजा गुस्सेके अन्दर आके दूतसे कहा कि जब तक आधा राज कोणक वहलकुमारको न देवेगा, वहांतक हारहस्ती और वहलकुमार कोणकको कभी नहीं मीलेगा। दूतका वहा ही तिरस्कार कर नगरको बारी द्वारा निकाल दिया।

दूत चम्पानगरी आके राजा कोणकको सर्व बात निवेदन कर कह दिया कि राजा चेटक कभी भी हारहस्ती नहीं भेजेगा। यह बात सुन कोणकराजा अति कोपित हो कालो आदि दश भाइयोंको बुलवायके सर्व वृत्तान्त सुनाया और चेटकराजासे

संग्राम करनेको तैयार होनेका आदेश दिया. काली आदि दशो भाइ राजके दश भाग लिया था वास्ते उन्होंको कोणकका हुकम मानके संग्रामकी तैयारी करना ही पडा। राजा कोणकने कहा कि हे बन्धुओ! आप अपने अपने देशमें जाके तीन तीन हजार गज, अश्व, रथ और तीन कोड पैदलसे युद्धकि तैयारी करो, एसा हुकम कोणकराजाका पा के अपने अपने राजधानीमें जा के सैना कि तैयारी कर कोणकराजाके पास आये। कोणकराजा दशों भाइयोंको आता हुवा देखके आप भी तैयार हो गया, सर्व सैन्य तेतीस हजार हस्ती तेतीस हजार अश्व, तेतीस हजार संग्रामीक रथ, तेतीस कोड पैदल इस सब सैनाको एकत्र कर अंगदेशके मध्य भागसे चलते हुवे विदेह देशकि तर्फ जा रहाथा।

इधर चेटकराजाको ज्ञात हुवा कि कोणकराजा कालीआदि दश भाइयोंके साथ युद्ध करनेको आ रहा है। तब चेटकराजा कासी, कोशाल, अठारा देशके राजावो जो कि अपने स्वधर्मी थे उन्होंकों दूतों द्वारा बुलवाये। अठारा देशके राजा धर्मप्रेमी बुलवानेके साथ ही चेटकराकी सेवामें हाजर हुवे। और बोले कि हे स्वामि! क्या कार्य है सो फरमाए।

चेटकराजाने वहलकुमारकी सब हकिकत कह सुनाइ कि अब क्या करना अगर आप लोगोंकी सलाह हो तो वहलकुमरको दे देवे. और आप लोगोकी मरजी हो तो कोणकसे संग्राम करे। यह सुनके कर्मवीर अठारा देशोंके राजा सलाह कर बोले कि इन्साफके तौरपर न्यायपक्ष रख सरणे आयाका प्रतिपालन करना आपका फर्ज है अगर कोणक राजा अन्याय कर आपके उपर युद्ध करनेकों आता हो तों हम अठारा देशोंके राजा आपकि तर्फ

से युद्ध करनेकों तैयार है। चेटक राजाने कहा कि अगर आपकि एसी मरजी हो तों अपनि अपनि राजधानीमें जाके स्व स्व सैना तैयार कर जलदी आजाओ। इतना सुनतेही सब राजा स्व स्व स्थान गये. वहांपर तीन तीन हजार हस्ती, अश्व, रथ, और तीन तीन क्रोड पैदल तैयार कर राजा चेटकके पास आ पहुंचे, राजा चेटक भी अपनी सैना तैयार कर सर्व सतावन हजार हस्ती. सतावन हजार अश्व. सतावन हजार रथ सतावन क्रोड पैदल का दल लेके रवाना हुआ वहभि अपने देशान्त विभागमें अपना झंडा रोप पडाव[1] कर दिया। उधर अंग देशान्त विभागमें कोणक राजाका [2]पडाव होगया है। दोनों दलके निशांन ध्वजा पताकाओं लगगइ है। संग्रामकि तैयारी हो रही है

हस्ती वालोंसे हस्तीवाले. अश्ववालोंसे अश्ववाले. रथवालों सें रथवाले पैदल सुभटोंसे पैदलवाले. इत्यादि सादृश युगल बनके संग्राम प्रारंभ समय योद्धा पुरुषोंका सिंहनादसे गगन गर्जना कर रहा था अनेक प्रकारके वाजित्र बाज रहे थे. कर्म सूराओंका उत्साव संग्रामके अन्दर बढ रहा था. आपसमें शस्त्रोंकि वर्षाद हो रहीथी अनेक लोकोंका शिर पृथ्वीपर गिर रहाथा, रौद्रसे धरतीपर कीच मचरहा था हां हां कार शब्द होरहा था.

कोणक राजाकी तर्फसे सैनापति कालीकुमार नियत कियागया था. इधरकि तर्फसे चेटकराजा सैनाका अग्रेश्वर था दोनों सैनापतियोंका आपसमें संवाद होते चेटक राजाने कहाकि मैं विनो अपराधिकों नही मारताहु, यह सुन कालीकुमार कोपित हो,

---

१ चेटक राजाकि सैनाकि रचना शकटके आकारपर रचि गई थी.

२ कोणक राजाकि सैना रथमुशल्य तथा गरुडके आकारपर रची गइ थी.

अपने धनुष्यपर बांणको चढाके बडे ही जौरसे बांण फेंका किन्तु चेटक राजाको बांण लगा नही परन्तु अपराधि जाणके चेटक-राजाने एकही बांणमें कालीकुमारको मृत्युके धामपर पहुंचादिया जब कालीकुमार सेनापति गिर पडा. तब उस रोज संग्राम बन्ध हो गया।

भगवान् फरमाते है कि हे गौतम! कालीकुमारने इस संग्रामके अन्दर महान् आरंभ, सारंभ, समारंभ कर अपने अध्य-वसायोंको मलीन कर महान् अशुभ कर्म उपार्जन कर काल प्राप्त हो. चोथी पंकप्रभा नरकके अन्दर दश सागरोपमकी स्थितिवाला नैरिया हुवा है।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान्! यह कालीकुमा-रका जीव चोथी नरकसे निकल कर कहां जावेगा।

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! कालीकुमारका जीव नरकसे निकलके महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति–कुलके अन्दर जन्म धारण करेगा. (कारण अशुभ कर्म बन्धे थे वह नरकके अन्दर भोगव लिया था) वहांपर अच्छा सत्संग पाके मुनियोंकी उपासना कर आत्मभाव प्राप्त हो, दीक्षा धारण करेगा. महान् तपश्चर्या कर घनघातीयां कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवोंको उपदेश दे. अपने आयुष्यके अन्तिम श्वासोश्वासका त्याग कर मोक्षमें जावेगा.

यह सुन भगवान् गौतमस्वामी प्रभुको वन्दन–नमस्कार कर अपनी ध्यानवृत्तिके अन्दर रमणता करने लगगये।

इति निरयावलिका सूत्र प्रथम अध्ययन।

(२) दुसरा अध्ययन—सुकालीकुमारका. इन्होंकी माताका नाम सुकालीराणी है. भगवानका पधारणा, सुकालीका पुत्रके लिये

प्रश्न करना. भगवान् उत्तर देना. गौतमस्वामिका प्रश्न पुछना. भगवान् सविस्तर उत्तर देना. यह सब प्रथमाध्ययनकी माफीक अर्थात् प्रथम दिनके संग्राममें कालीकुमारका मृत्यु हुया था और दुसरे दिन सुकालीकुमारका मृत्यु हुया था। इति।

(३) तीसरा अध्ययन—महाकालीराणीका पुत्र महाकालीकुमारका है।

(४) चोथा अध्ययन—कृष्णाराणीके पुत्र कृष्णकुमारका है।

(५) पांचवा अध्ययन—सुकृष्णाराणीका पुत्र सुकृष्णकुमारका है।

(६) छटा अध्ययन—महाकृष्णाराणीके पुत्र महाकृष्णकुमारका है।

(७) सातवां अध्ययन–वीरकृष्णाराणीके पुत्र वीरकृष्णका है।

(८) आठवां अध्ययन–रामकृष्णाराणीका पुत्र रामकृष्णका है।

(९) नववां अध्ययन—पद्मश्रेणकृष्णाराणीके पुत्र पद्मश्रेणकृष्णकुमारका है।

(१०) दशवां अध्ययन महाश्रेण कृष्णा राणीके पुत्र महाश्रेण कृष्णका है॥ यह श्रेणिक राजाकी दश राणीयोंके दश पुत्र है. दशों पुत्र चेटकराजाके हाथसे दश दिनोंमें मारा गया है. दशों राणीयोंने भगवानसे प्रश्न किया है. भगवानने प्रथमाध्ययनकी माफीक उत्तर दीया है. दशों कुमार चोथी नरक गये है. महाविदेहमें दशों जीव मोक्ष जायेगा. काली आदि दशों राणीयों पुत्रके निमित्त वीर वचन सुन अन्तगड दशांगके आठवा वर्गमें दीक्षा ले तपश्चर्या कर अन्तिम केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गइ है. इति निरयावलीका सूत्रके दश अध्ययन समाप्त हुये.

नोटः—दश दिनोंमें दश भाइ खतम हो गये फिर उस

संग्रामका क्या हुवा, उसके लिये यहां पर भगवतीसूत्र शतक ७ उद्देशा ९ से सबन्ध लिखा जाता है.

नोट-जब दश दिनोंमें कोणक राजाके दशों योद्धा संग्राममें काम आगये तब कोणकने विचारा कि एक दीनका काम और है क्योंकि चेटक राजाका बाण अचुक है. जेसे दश दिनोंमें दश भाइयोंकी गति हुइ है वह एक दिन मेरे लीये ही होगा वास्ते कुच्छ दूसरा उपाय सोचना चाहीये. एसा विचार कर कोणक राजाने अष्टम तप (तीन उपवास) कर स्मरण करने लगा कि अगर कीसी भी भवमें मुझे वचन दीया हो, वह इस वखत आके मुझे सहायता दो एसा स्मरण करनेसे 'चमरेन्द्र' और 'शक्रेन्द्र' यह दोनों और कोणक राजा कीसी भवमें तापस थे उस वखत इन दोनो इन्द्रोने वचन दीया था, इस कारण दोनों इन्द्र आये, कोणकको बहुत समझाये कि यह चेटक राजा तुमारा नानाजी है अगर तुं जीत भी जायगा तो भी इसीके आगे हारा जेसाही होगा वास्ते इस अपना हठको छोड दे। इतना कहने पर भी कोणकने नहीं माना ओर इन्द्रोंसे कहा कि यह हमारा काम आपको करना ही होगा। इन्द्र वचनके अन्दर बन्धे हुवे थे। वास्ते कोणकका पक्ष करना ही पडा।

भगवती सूत्र-पहले दिन महाशीलाकंटक नामका संग्राम के अन्दर कोणक राजाके उदयण नामके हस्तीपर चम्मर ढोलाता हुवा कोणक राजा बेठा और शक्रेन्द्र अगाडी एक अभेद नामका शस्त्र लेके बेठ गया था जिसीसे दूसरोंका बाणादि शस्त्र कोणकको नही लगे और कोणककी तर्फसे तृण काष्ट कंकर भी फेंके तो चेटक राजाकी सेना पर महाशीलाकी माफीक मालम होता था। इन्द्रकी सहायतासे प्रथम दिनके संग्राममें ८४००००० मनुष्योंका क्षय हुवा

इस संग्राममें कोणककी जय ओर चेटक तथा अठारा देशोंके राजाओंका पराजय हुवा था। प्रायः सर्व जीव नरक तथा तीर्यचमें गये। दुसरे दिन भूताइन्द्र हस्ती पर, वीचमें कोणक राजा आगे शकेन्द्र पीछे चमरेन्द्र एवं तीन इन्द्र संग्राम करनेको गये. इस संग्रामका नाम रथमुशल संग्राम था दूसरे दिन ९६०००००० मनुष्योंकी हत्या हुइ थी जिसमें १०००० जीव तो एक मच्छीकी कुक्षी में उत्पन्न हुये थे. एक वर्णनागनत्वो देवलोकमें और उसका वाल मित्री मनुष्य गतिमें गया शेष जीव बहुलता नरक तीर्यंच गतिमें उत्पन्न हुवा।

उत्तराध्ययन सूत्रकी टीकामें शेषाधिकार है तथा कीतनीक वातें श्रेणिक चरित्रमें भी है प्रसंगोपात कुच्छ यहां लिखी जाती है।

जब कासी-कोशाल देशके अठारा राजाओंके साथ चेटक राजाका पराजय हो गया तब इन्द्रने अपने स्थान जानेकी रजा मांगी. उस पर कोणक बोला कि मैं चक्रवर्ति हुं। इन्द्रोंने कहा कि चक्रवर्ति तो बारह हो चुके है, तेरहवा चक्रवर्ति न हुवा न होगा, यह सुनके कोणक बोला कि मैं तेरहवा चक्रवर्ति होउंगा, वास्ते आप मुझे चौदा रत्न दीजीये दोनों इन्द्रोंने बहुतसा समझाया परन्तु कोणकने अपना हठको नहीं छोडा तब इन्द्रोंने एकेन्द्रियादि रत्नकृतव्वी बनाके दे दीया और अपना संबन्ध तोडके, इन्द्र स्वस्थान गमन करते कह दीया कि अब हमको न बुलाना न हम आवेंगे यह बात एक कथाके अन्दर है. अगर कोणकने दिग्विजयका प्रयाणके समय कृतव्य रत्न बनाया हो तो भी बन सक्ता है.

जब चेटकराजाका दल कमजोर होगया और वहभि जान

गयाथा कि कोणकको इन्द्र साहिता कर रहा है। तव चेटकराजा अपनि शेष रही हुइ सैना ले वैशाला नगरीमें प्रवेश कर नगरीका दरवाजा वंध कर दीया वैशाला नगरीमें श्री मुनिसुव्रत भगवानका स्थुभ था, उसके प्रभावसे कोणकराजा नगरीका भंग करनेमें असमर्थ था वास्ते नगरीके वहार निवास कर वेठा था अठारा देशके राजा अपने अपने राजधानीपर चले गयेथे।

वहलकुमर रात्रीके समय सीचानकगन्ध हस्तीपर आरूढ हो, कोणकराजाकि सैना जो वैशाला नगरीके चोतर्फ घेरा दे रखाथा उसी सैनाके अन्दर आके वहुतसे सामन्तोंको मार डालता था, एसे कीतनेही दीन हो जानेसे राजा कोणकको खवर हुइ तव कोणकने आगमनके रहस्तेके अन्दर खाइ खोदाके अन्दर अग्नि प्रज्वलित कर उपर आछादीत करदीया इरादाथाकि इस रस्ते आते समय अग्निमें पडके मर जायगा, "क्या कर्मोंकि विचित्र गति है. और केसे अनर्थ कार्यकर्म कराते है" रात्री समय वहलकुँमार उसी रहस्तेसे आ रहाथा परन्तु हस्तीको जातिस्मरण ज्ञान हो-नेसे अग्निके स्थानपर आके वह ठेर गया. वहलकुँमरने वहुतसे अंकुश लगाया परन्तु हस्ती एक कदमभी आगे नही धरा वहलकुँ-मार वोला रे हस्ती! तेरे लिये इतना अनर्थ हुवा है अव तूं मुझे इस समय क्यों उत्तर देता है यह सुनके हस्ती अपनि सूंढसे वहलकुँमरको दूर रख, आप आगे चलता हुवा उस अच्छादित अग्निमे जा पडा शुभ ध्यानसे मरके देवगतिमें उत्पन्न हुवा. वहलकुँमरको देवता भगवानके समौसरणमें ले गया वह वहां-पर दीक्षा धारण करली अठारा सरवालाहार जिस देवताने दीया था वह वापीस ले गया।

पाठकों! संसारकी वृत्तिको ध्यान देके देखिये जिसहार और

हस्तिके लिये इतना अनर्थ हुवाथा वह हस्ती आगमे जल गया, हार देवता ले गया, वहलकुँमर दीक्षा धारण करली है। तथापि कोणक राजाका कोप शान्त नही हुवा।

कोणक राजा एक निमत्तियाकों बुलवायके पुच्छा कि हे नैमित्तीक इस वैशाल नगरीका भंग केसे हो सक्ता है, निमित्तीयाने कहाकि हे राजन् कोइ प्रतित साधु हो वह इस नगरीकों भांग कर नेमें साहित हो सक्ता है राजा कोणकने यह वात सुन एक कमललता वैश्याको बुलवाके उसको कहा कि कोइ तपस्वी साधुकों लावों, वैश्या राजाका आदेश पाके वहांसे साधुकि शोध करनेको गइ तों एक नदीके पास एक स्थानपर कुलवालुक नामका साधु ध्यान करताथा उस साधुका संवन्ध एसा है कि—

कुलवालुक साधु अपने वृद्ध गुरुके साथ तीर्थयात्रा करनेकों गया था एक पर्वत उत्तरतों आगे गुरु चल रहेथे, कुशीष्यने पीच्छेसे एक पत्थर (वडीशीला) गुरुके पीछे डाली. गुरुका आयुष्य अधिक होनेसें शीलाकों आति हुइ देख रहस्तेसे दुर हो गये, जब शिष्य आया तब गुरुने उपालंभ दीयाकि हे दुरात्मन् तुं मेरेकों मारनेका विचार कीया था, जा कीसी औरतके योग्यसे तेरा चारित्र भ्रष्ट होगा एसा कहके उस कुपात्र शिष्यको निकाल दीया.

यह शिष्य गुरुके वचन असत्य करनेकों एकान्त स्थानपर तपश्चर्या कर रहा था। वहांपर कमललता वैश्या आके साधुकों देखा. यह तपस्वी साधु तीन दिनोंसे उतरके एक शीलाकों अपनि जयांनसें तीनवार स्वाद लेके फीर तपश्चर्याकि भूमिकापर स्थित हो जाता था, वैश्याने उस शीलापर कुच्छ औषधिका प्रयोग (लेपन) कर दीया जब साधु आके उस शीलापर जयानसे स्वाद लेने लगा वह स्वाद मधुर होनेसे साधुकों विचार हुवाकि

यहमेरे तपश्चर्याका प्रभाव है, उस औषधिके प्रयोगसे साधुकों टटी और उलटी इतनी होगइ कि अपना होश भुलगया, तब वेश्याने उस साधुकि हीफाजितकर सचैतनकिया. साधुउसका उपकार मानके बोलाकि तेरे कुच्छ काम होतो मुझे कहे, तेरे उपकार काबदला देउ। वैश्या बोलीके चलीये। बस। राजा कोणके पास ले आइ, कोणकने कहाकि हे मुनि इस नगरीका भंग करा दो। वह साधु वहांसे नगरीमें गया नगरीके लोक १२ वर्ष हो जानेसे बहुत व्याकुल हो रहे थे. उस निमत्तीयाका रूप धारण करनेवाले साधुसे लोकोंने पुच्छा कि हे साधु इस नगरीको सुख कब होगा। उत्तर दिया कि यह मुनि सुव्रतस्वामिका स्थुभकों गिरा दोगे तब तुमकों सुख होगा। सुखाभिलाषी लोकोंने उस स्थुभकों गिरा दीया. तब राजा कोणकने उस नगरीका भंग करना प्रारंभ कर दीया, मुनि अपना फर्ज अदा कर वहांसे चलधरा।

यह बात देख चेटकराजा एक कुँवाके अन्दर पड आपघात करना शरू कीया था, परन्तु भुवनपति देव उसकों अपने भुवनमें ले गया बस। चेटकराजाने वहां पर ही अनसन कर देवगति को प्राप्त हो गये।

राजा कोणक निराश हो के चम्पानगरी चला गया, यह संसारकि स्थिति है कहां हार, कहां हस्ती, कहां वहलकुमर, कहां चेटकराजा, कहां कोणक, कहां पद्मावती राणी, क्रोडों मनुष्यों की हत्या होने पर भी कीस वस्तुका लाभ उठाया? इस लिये ही महान् पुरुषोंने इस संसारका परित्याग कर योगवृत्ति स्वीकार करी है।

चम्पानगरी आनेके बाद कोणक राजाको भगवान वीर प्रभुका दर्शन हुवा और भगवानका उपदेशसे कोणकको इतना तों

असर हुवा कि भगवानका पूर्ण भक्त बन गया. उपपातिक सूत्र में एसा उल्लेख है कि कोणक राजाकों एसा नियम था कि जबतक भगवान कहां विराजते है उसका निर्णय नही हो वहांतक मुंहपे अन्न जलभी नही लेता था. अर्थात् प्रतिदिन भगवानकि खबर मंगवाके ही भोजन करता था। जब भगवान चम्पा नगरी पधारतेथे तब बडा ही आडम्बरसे भगवानकों वन्दन करनेकों जाता था। इत्यादि पुर्ण भक्तिवान. था। वन्दनाधिकारमें जहां तहां कोणक राजाकि औपमा दि जाती है. इसका सविस्तार व्याख्यान उववाइ सूत्रमें है।

अन्तिम [1]अवस्था में कोणक राजा कृतव्य रत्नोंसे आप चक्रवर्ति हो देश साधन करनेकों गया था तमस्प्रभा गुफाके पास जाके दरवाजा खोलनेकों दंडरत्नसे कीमाड खोलने लगा. उस वखत देवतावोंने कहा कि बारह चक्रवर्त्ति हो गया हैं. तुम पीच्छे हटजावों नही तों यहां कोइ उपद्रव होगा. परन्तु भवितव्यताके आधिन हो कोणकने यह बात नही मांनी तब अन्दरसे अग्निकि ज्वाला निकली जीससे कोणक वहां ही कालकर छठी तमःप्रभा नरकमें जा पहुंचा।

एक स्थलपर एसाभि उल्लेख है कि कोणकका जीव चौदा भव कर मोक्ष जावेगा तत्त्व केवली गम्यं।

प्रसंगोपात संबंध समाप्तं।

इति श्रीनिरयावलिकासूत्र संक्षिप्त सार समाप्तम्।



---

१ कोणक १६ वर्ष कि अवस्थामें राजगादी बेठाथा ३६ वर्षो कि सर्व आयुष्य थी। एसा उल्लेख कथामें है।

अथश्री

कप्पवडिंसिया सूत्र.

—०-०-०-०—

(दश अध्ययन)

प्रथमाध्ययन—चंम्पा नगरी पुर्णभद्र उद्यान पुर्णभद्रयक्ष कोणक राजा पद्मावती राणी श्रेणक राजाकि काली राणी जिस्के काली कुमार पुत्र इस सबका वर्णन प्रथम अध्ययनसे समझना।

कालीकुमार के प्रभावति राणी. जिसको सिंह स्वप्न सूचित पद्मनामका कुमारका जन्म हुवा. माता पिताने वडाही महोत्सव किया. यावत् युवक अवस्था होनेसे आठ राजकन्यावोंके साथ पाणिग्रहन करा दिया. यावत् पंचेन्द्रियके सुख भोगवते हुवे काल निर्गमन कर रहे थे।

भगवान वीर प्रभु अपने शिष्य मंडलके परिवारसे भव्य जीवोंका उद्धार करते हुवे चम्पानगरी के पुर्णभद्र उद्यानमें पधारे।

कोणक राजा वडाही उत्सावसे च्यार प्रकारकी सेना ले भगवानको वन्दन करनेकों जारहा था, नगर निवासी लोगभी एकत्र मीलके भगवानकों वन्दन निमत्त मध्य बजारमें आरहे थे. इस मनुष्यों के वृन्द कों पद्मकुमार देखके अपने अनुचरोंसे पुच्छा कि आज चम्पानगरी के अन्दर क्या महोत्सव है? अनुचरोंने उत्तर दीया कि हे स्वामिन् आज भगवान वीर प्रभु पधारे है वास्ते जनसमूह एकत्रहो भगवानको वन्दन करनेको जारहे है। यह सुनके पद्मकुमार भी च्यार अश्वोके रथपर आरूढ हो भगवानकों वन्दन करनेकों सर्व लोकोंके साथमें गया भगवानकों प्रदिक्षणा दे वन्दना कर अपने अपने योग्य स्थानपर बेठ गये।

भगवान वीरप्रभुने उस विस्तारवाली परिषदाकों विचित्र प्रकारसे धर्मदेशना सुनाइ. मौख्य यह उपदेश दीयाथा कि हे भव्य जीवो! इस घोर संसारके अन्दर परीभ्रमन करते हुवे प्रांणीयोंकों मनुष्यजन्मादि सामग्री मीलना दुर्लभ्य हैं अगर कीसी पुन्योदयसे मील भी जावे तों उसकों सफल करना अति दुर्लभ्य हैं वास्ते यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान कर अपनि आत्माकों निर्मल बनाना चाहिये। इत्यादि—

परिषदा वीरवाणीका अमृतपान कर यथाशक्ति त्याग वैराग धारण कर भगवानको वन्दन नमस्कार कर अपने अपने स्थानपर गमन करने लगे।

पद्मकुँमार भगवानकि देशना श्रवणकर परम वैरागको प्राप्त हुवा. उठके भगवानकों वन्दन नमस्कार कर बोलाकि हे भगवान आपने फरमाया यह सत्य है मैं मेरे मातापितायोंकों पुच्छ आपकि समिप दीक्षा लेउंगा, भगवानने फरमाया "जहा सुखं" जैसे गौतमकुँमरने मातापितावोंसे आज्ञा ले दीक्षा लीथी इसी माफीक पद्मकुमरभी मातापितावोंसे नम्रता पूर्वका आज्ञा प्राप्त करी, मातापितावोंने बडाही महोत्सव कर पद्मकुमारकों भगवानके पास दीक्षा दरादी। पद्म अनगार इर्यासमिति यावत् साधु बन गया. तथा रूपके स्थविरोंके पास विनय भक्ति कर इग्यारा अङ्गका अध्ययन कीया. औरभी अनेक प्रकारकि तपश्चर्या कर अपने शरीरको खदककी माफक कृष बना दीया. अन्तिम एक मासका अनसन कर समाधि पूर्वक कालकर प्रथम सौधर्म देवलोकमें दोय सागरोपमकि स्थितिवाला [1]देवता हुवा. यह देवतोंके सुखोंका

---

१ देवता शय्यामें उत्पन्न होते है उस समय अंगुलके असंख्यातमें भाग प्रमाण अवगाहना होती है। अन्तर महुर्त्तमें आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोश्वास पर्याप्ति, भाषा और मनपर्याप्ति साथही में बान्धते है वास्ते शास्त्रकारोंने

अनुभवकर महाविदह क्षेत्रमे उत्तम जाति--कुलमे जन्म धारण कर फीर वहांभी केवलीप्ररूपीत धर्म सेवनकर दीक्षा ग्रहनकर केवल-ज्ञान, प्राप्त कर मोक्ष जावेगा इति प्रथम अध्ययन समाप्तं।

नं०	कुमारके अध्ययन.	माताका नाम.	पिताका नाम.	देवलोक गये.	दीक्षाकाल.
१	पद्म कुमार	पद्मावती	काली कुमार	सौधर्म देवलोक	५ वर्ष
२	महापद्म ,,	महापद्मावती	सुकाली ,,	इशान ,,	५ ,,
३	भद्र ,,	भद्रा	महाकाली,,	सनत्कुमार ,,	४ ,,
४	सुभद्र ,,	सुभद्रा	कृष्ण ,,	माहेंन्द्र ,,	४ ,,
५	पद्मभद्र ,,	पद्मभद्रा	सुकृष्ण ,,	ब्रह्म ,,	४ ,,
६	पद्मश्रेन ,,	पद्मश्रेना	महाश्रेण ,,	लान्तक ,,	३ ,,
७	पद्मगुल्म ,,	पद्मगुल्मा	वीरश्रेण ,,	महाशुक्र ,,	३ ,,
८	निलनिगु०,,	निलनिगुल्मा	रामकृष्ण ,,	सहस्र ,,	३ ,,
९	आनन्द ,,	आनन्दा	पद्मश्रेणकृ०,,	प्राणत ,,	२ ,,
१०	नन्दन ,,	नन्दना	महाश्रेणकृ०,,	अच्युत ,,	२ ,,

यह दशों कुमार श्रेणक राजाके पोते है भगवान वीर प्रभुकी देशना सुन संसारका त्याग कर भगवानके पास दीक्षा ग्रहण कर अन्तिम एकेक मासका अनशन कर देवलोकमें गये है। वहांसे सीधे ही महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्यभव कर फीर दीक्षा ग्रहन कर कर्मरीपुको जीत केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा. इति।

इतिश्री कप्पवडिंसीया सूत्र संक्षिप्त सार समाप्तम्।



पांच पर्याप्ती अन्तर महुर्तमें वान्धके एदकम युदकादय धारण कर लेना कहा है. जहाँ देवपणे उत्पन्न होनेका अधिकार आवे वहांपर एसाही समझना।

अथश्री

पुष्फिया सूत्रम् ।



(दश अध्ययन)

(१) प्रथम अध्ययन । एक समयकी बात है कि श्रमण भगवान वीरप्रभु राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमें पधारे। राजा श्रेणिकादि पुरवासी लोक भगवानको वन्दन करनेको गये। विद्याधर तथा चार निकायके देव भी भगवानकी अमृतमय देशनाभिलापी हो वहां पर उपस्थित हुवे थे।

भगवान वीरप्रभु उस बारह प्रकारकी परिषदाको विचित्र प्रकारका धर्म सुनाया. श्रोतागण धर्मदेशना श्रवण कर त्याग वैराग्य प्रत्याख्यान आदि यथाशक्ति धारण कर स्वस्वस्थान गमन करते हुवे।

उसी समयकी बात है कि च्यार हजार सामानिक देव, सोलाहजार आत्मरक्षक देव, तीन परिषदाके देवों च्यार महत्तरिक देवांगना सपरिवार अन्य भी चन्द्र वैमानवासी देवता देवीयोंके वृन्दमें बेठा हुवा ज्योतीषीयोंका राजा ज्योतीषीयोंका इन्द्र अपना चंद्रवतंस वैमानकी सौधर्मी सभामें अनेक प्रकारके गीत ग्यान बाजींत्र तथा नाटकादि देव संबन्धी ऋद्धिको भोगव रहा था।

उस समय चन्द्र अवधिज्ञानसे इस जम्बुद्वीपके भरतक्षेत्रमें राजगृह नगरके गुणशीलोद्यानमें भगवान वीरप्रभुको विराजमान देखके आत्मप्रदेशोंमें बडाही हर्षित हुवा, सिंहासनसे उठके जिस दिशामें भगवान विराजते थे उस दिशामें सात आठ कदम

सामने जाके भगवानको वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे भगवान आप वहां पर विराजमान है मैं यहां पर बेठा आपको वन्दन करता हुं. आप मेरी वन्दन स्वीकृत करावे। यहां पर सब अधिकार सूर्याभ देवताकी माफीक कहना। कारण देव आगमनके अधिकारमें सविस्तर अधिकार रायप्पसेनी सूत्र सूर्याभाधिकारमें ही कीया है. इतना विशेष है कि सुस्वर नामकी घंटा बजाइ थी वैक्रयसे एक हजार योजन लंबा चौडा साडा बासठ योजन उंचा वैमान बनाया था. पचवीस योजनकी उंची महेंद्र ध्वजा थी. इत्यादि बहुतसे देवी देवताओंके वृन्दसे भगवानको वन्दन करनेको आया, वन्दन नमस्कार कर देशना सुनी. फिर सूर्याभकी माफीक गौतमादि मुनियोंको भक्तिपूर्वक बत्तीस प्रकारका नाटक बतलाके भगवानको वन्दन नमस्कार कर अपने स्थान जानेको गमन किया।

भगवानसे गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे करुणासिन्धु यह चन्द्रमा इतने रूप कहांसे बनाये. कह प्रवेश कर दीये।

प्रभुने उत्तर दिया कि हे गौतम! जेसे कुडागशाल (गुतघर) होती है उसके अन्दर मनुष्य प्रवेश भी हो सक्ता है और निकल भी सक्ता है इसी माफीक देवोंको भी वैक्रिय लब्धि है जिससे वैक्रिय शरीरसे अनेक रूप बनाय भि सके और पीछा प्रवेश भी कर सके।

पुनः गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे दयालु! इस चन्द्रने पूर्वभवमें इतना क्या पुन्य किया था कि जिसके जरिये यह देवऋद्धि प्राप्त हुइ है?

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! सुन। इस जम्बुद्विपका भरतक्षेत्रके अन्दर सावत्थी नामकी नगरी थी वहां पर जय-

प्रभु नामका राजा राज करता था उसी नगरीके अन्दर आगतिया नामका एक गाथापति वसता था वह बडा ही धनाढ्य और नगरीमें एक प्रतिष्ठित था " जेसे आनन्द गाथापति "

उस समय तेवीसमें तीर्थंकर पार्श्वनाथ प्रभु विहार करते सावत्थी नगरीके कोष्टवनोद्यानमें पधारे. राजादि सब लोग भगवानको वन्दन करनेको गये. इधर आगतिया गाथापति इस वातकों श्रवण कर वह भी भगवानको वन्दन करनेकों गया। भगवानने धर्मदेशना फरमाइ संसारका असार पना और चारित्रका महत्व वतलाया. आगतिया गाथापति धर्म सुनके संसारकों असार जाण अपने जेष्टपुत्रकों गृहकार्यमें स्थापन कर आप गंगदत्त कि माफीक बडे ही महोत्सवके साथ भगवानके पास च्यार महाव्रत रूप दीक्षा धारण करी।

आगतिया मुनि पांचसमिति समता, तीन गुप्तीगुप्ता यावत् ब्रह्मगुप्ति ब्रह्मचर्य व्रत पालन करता हुवा, तथा रूपके स्थवीरोंके पास सामायिकादि इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास किया। बादमें बहुतसी तपश्चर्या करते हुवे बहुत वर्षो तक चारित्रपर्याय पालन करके अन्तमें पन्दरा दिनोंका अनसन किया, परन्तु जो उत्तर गुणमें दोष[1] लगा था उसकी आलोचना नहीं करी वास्ते, विराधिक अवस्थामें काल कर ज्योतिषियोंके इन्द्र ज्योतिषीयोंके राजा यह चन्द्रमा हुवा है पूर्वभवमें चारित्र ग्रहण करनेका यह फल हुवा कि देवता सम्बन्धी रुद्धि ज्योती कान्ती यावत् देव भव उदय हुवा है परन्तु साथमें विरोधि होनेसे ज्योतिषी होना पडा है कारण आराधि साधुकि गति वैमानिक देवताओं कि है।

---

१ मूल पांच महाव्रत है इसके सिवाय पिंडविशुद्धि तथा दश प्रत्याख्यान. पांच समिति. प्रतिलेखनादि यह सर्व उत्तरगुणमें है चन्द्र सूर्यने जो दोष लगाया था वह उत्तरगुणमें ही लगाया था।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान! चन्द्रदेवको स्थिति कितनी है।

हे गौतम! एक पल्योपम और एकलक्ष वर्षकि स्थिति चन्द्रकी है।

पुनः प्रश्न किया कि हे भगवान! यह चन्द्रदेव ज्योतिषीयों का इन्द्र यहांसे भव स्थिति आयुष्य क्षय होने पर कहां जावेगा?

हे गौतम! यहांसे आयुष्य क्षय कर चन्द्रदेव महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति-कुलके अन्दर जन्म धारण करेगा। भोगविलाससे विरक्त हो केवली प्ररूपीत धर्म श्रवण कर संसार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करेगा। च्यार घनघाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर सिधा ही मोक्ष जावेगा। इति प्रथम अध्ययन समाप्तम्।

(२) दुसरा अध्ययनमें, ज्योतिषीयोंका इन्द्र सूर्यका अधिकार है चन्द्रकि माफीक सूर्यभि भगवानकों वन्दन करनेको आयाथा वत्तीस प्रकारका नाटक कियाथा, गौतमस्वामिकी पृच्छा भगवानका उत्तर पूर्ववत् परन्तु सूर्य पूर्वभवमें सावत्थी नगरीका सुप्रतिष्ट नामका गाथापति था। पार्श्वप्रभुके पास दीक्षा, इग्यारा अंगका ज्ञान, वहुत वर्ष दीक्षा पाली, अन्तिम आधा मासका अनसन, विराधि भावसे कालकर सूर्य हूवा है एक पल्योपम एक हजार वर्षकि स्थिति. वहांसे चवके महाविदह क्षेत्रमें चन्द्रकि माफीक केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा इति द्वितीयाध्ययन समाप्तम् ॥

(३) तीसरा अध्ययन। भगवान वीर प्रभु राजगृह नगर गुणशीला चैत्यके अन्दर पधारे राजादि वन्दनकों गया।

चन्द्रकि माफीक महाशुक्र नामका गृह देवता भगवानकों वन्दन करने को आया यावत् वत्रीस प्रकारका नाटक कर वापिस चला गया।

गौतमस्वामिने पुर्वभवकी पृच्छा करी

भगवानने उत्तर फरमाया कि हे गौतम ! इस जम्बुद्विप के भरत क्षेत्रमें बनारस नामकि नगरी थी । उस नगरी के अन्दर बडाही धनाढय च्यार वेद इतिहास पुराणका ज्ञाता सोमल नामका ब्राह्मण वसता था. वह अपने ब्राह्मणोंका धर्म में बडाही श्रद्धावन्त था ।

उसी समय पार्श्व प्रभुका पधारणा बनारसी नगरी के उद्यानमें हुवा था. च्यार प्रकारके देवता, विद्याधर और राजादि भगवानको वन्दन करनेको आयाथा ।

भगवानके आगमन कि वार्ता सोमल ब्राह्मणने सुनके विचारा कि पार्श्वप्रभु यहांपर पधारे हैं तो चलके अपने दीलके अन्दर जो जो शक है वह प्रश्न पुच्छे । एसा इरादा कर आप भगवानके पास गया (जैसे कि भगवतीसूत्रमें सोमल ब्राह्मण वीरप्रभुके पास गया था) परन्तु इतना विशेष है कि इसके साथ कोइ शिष्य नहीं था ।

सोमल ब्राह्मण पार्श्वनाथ प्रभुके पास गया था; परन्तु वन्दन-नमस्कार नहीं करता हुवा प्रश्न किया ।

हे भगवान् ! आपके यात्रा है ? जपनि है ? अव्याबाध है ? फासुक विहार है ।

भगवानने उत्तर दिया हां सोमल ! हमारे यात्रा भी है. जपनि भि है. अव्याबाध भि है और फासुक विहार भी है ।

सोमलने कहा कि कोनसे कोनसे है ?

भगवानने कहा कि हे सोमल—

(१) हमारे यात्रा—जो कि तप नियम संयम स्वध्याय ध्यान आवश्यकादि के अन्दर योगोंका व्यापार यत्न पुर्वक करना यह यात्रा है। यहां आदि शब्द में औरभी वोल समावेश हो सक्ते हैं।

(२) जपनि हमारे दोय प्रकारकि है (१) इन्द्रियापेक्षा (२) नोइन्द्रियापेक्षा। जिस्में इन्द्रियापेक्षाका पांच भेद हैं (१) श्रोत्रेन्द्रिय (२) चक्षुइन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय (४) रसेन्द्रिय (५) स्पर्शेन्द्रिय यह पांचो इन्द्रिय स्व स्व विषयमें प्रवृत्ति करती हुइको ज्ञानके जरिये अपने कब्जे कर लेना इसको इन्द्रिय जपनि कहते है, और क्रोध मान माया लोभ उच्छेद हो गया है उसकि उदिरणा नही होती है अर्थात् इस इन्द्रिय ओर कषाय रूपी योधोकों हम जीतलिये है।

(३) अव्याबाध ? जे वायु पित कफ सन्निपात आदि सर्व रोग क्षय तथा उपसम है किन्तु उदिरणा नहीं है।

(४) फासुक विहार। जहां आराम उद्यान देवकुल सभा पाणी वीगेरे के पर्व, जहां स्त्रि नपुंसक पशु आदि नहो एसी वस्ती हो वह हमारे फासुक विहार है।

(प्र०) हे भगवान ? सरसव आपके भक्षण करणे योग्य है या अभक्ष है ?

(उ०) हे सोमल ? सरसव भक्षभी है तथा अभक्ष भी है।

(प्र०) हे भगवान ! क्या कारण है ?

(उ०) हे सोमल ? सोमलको विशेष प्रतितिके लिये कहते है कि तुमारे ब्राह्मणोंके न्यायशास्त्रमें सरसव दो प्रकारके है (१) मित्र सरसवा (२) धान्य सरसवा। जिस्में मित्र सरसवाका तीन भेद है (१) साथमें जन्मा (२) साथमे वृद्धिहुइ (३) साथमें धूलादिमें खेलना। वह तीन हमारे श्रमण निग्रन्थोंको अभक्ष है और

जो धान्य सरसव है वह दोय प्रकारके है (१) शस्त्र लगा हुवा अग्नि प्रमुखका। जिससे अचित हो जाता है। (२) शस्त्र नही लगा-हो (सचित) वह हमारे श्र० नि० अभक्ष है। जो शस्त्र लगाहुवा है उसका दो भेद है (१) एपणीक वेयालास दोष रहीत (२) अने-पणीक. जो अनेसणीक है वह हमारे श्र० नि० अभक्ष है। जो एष-णीक है उसका दोय भेद है (१) याचीहुइ (२) अयाचीहुइ, जो, अयाचीहुइ है यह श्र० नि० अभक्ष है। जो याचीहुइ है उसका दो भेद है (१) याचना करनेपर भी दातार देवे वह लद्धिया और न-देवे वह अलद्धिया, जिसमें अलद्धिया तो श्र० नि० अभक्ष है और लद्धिया है वह भक्ष है इस वास्ते हे सोमल सरसव भक्षभि है अभक्षभि है।

(प्र०) हे भगवान ! मासा अपको भक्ष है या अभक्ष है ?

(उ०) हे सोमल ! स्यात् भक्ष भी है स्यात् अभक्ष भी है।

(प्र०) क्या कारण है एसा होनेका ?

(उ०) हे सोमल ! तुमारे ब्रह्मणोंके न्याय ग्रंथमें मासा दोय प्रकारके है (१) द्रव्यमासा (२) कालमासा, जिसमें कालमासा तो श्रावणमासा से यावत् आसाढमासा तक एवं बारहमासा श्र० नि० अभक्ष है और जो द्रव्यमासा है जिस्का दोय भेद है (१) अर्थ-मासा (२ धान्नमासा. अर्थमासा तो जेसे सुवर्ण चांदीके साथ तोल कीया जाता है वह श्र० नि० अभक्ष है और धान्नमासा (उडद) सरसवकी माफीक जो लद्धिया है वह भक्ष है। इसवास्ते हे सा-मल मासा भक्ष भी है अभक्ष भी है।

(प्र०) हे भगवान ! कुलत्थ भक्ष है या अभक्ष है।

(उ०) हे सोमल ? कुलत्थ भक्ष भी है अभक्ष भि है।

(प्र०) हे भगवान ! एसा होनेका क्या कारण है ?

(उ०) हे सोमल! तुमारे ब्राह्मणोंके न्यायशास्त्रमें कुलत्थ दोय प्रकारका कहा है (१) स्त्रिकुलत्थ (२) धान्न कुलत्थ । जिस्मे स्त्रिकुलत्थके तीन भेद है। कुलकन्या, कुलवहु, कुलमाता, यह श्रमण निग्रन्थोंको अभक्ष है और धान्नकुलत्थ जो सरसव धान्नकि माफक जो लब्धिया है वह भक्ष है शेष अभक्ष है इसवास्ते हे सोमल कुलत्थ भक्ष भी है तथा अभक्ष भी है।

(प्र०) हे भगवान! आप एकाहो? दोयहो? अक्षयहो? अवेद हो? अवस्थितहो? अनेक भावभूतहो?

(उ०) हां सोमल! मैं एक भिहुं यावत् अनेक०।

(प्र०) हे भगवान! एसा होनेका क्या कारण है।

(उ०) हे सोमल! द्रव्यापेक्षामें एक हूं। ज्ञानदर्शनापेक्षामें दोय हूं. आत्मप्रदेशापेक्षामें अक्षय, अवेद, अवस्थित हूं० और उपयोग अपेक्षामें अनेक भावभूत हूं, कारण उपयोग लोकालोक व्याप्त है वास्ते हे सोमल एक भी मैं हु यावत् अनेक भावभूत भी मैं हु.

इस प्रश्नोंका उत्तर श्रवणकर सोमल ब्राह्मण प्रतिबोधीत होगया। भगवान को वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे प्रभु! मैं आपकि वाणीका प्यासा हूं वास्ते कृपाकर मुझे धर्म सुनावों.

भगवानने सोमलको विचित्र प्रकारका धर्म सुनाया. सोमल धर्म श्रवणकर बोलाकि हे भगवान! धन्य है आपके पास संसारीक उपाधियों छोड दीक्षा लेते है उन्हको।

हे भगवान। मैं आपके पास दीक्षा लेनेमें तो असमर्थ हूं। किन्तु मैं आपकेपास श्रावकव्रत ग्रहन करुंगा। भगवानने फरमाया कि "जहासुखं" सोमल ब्राह्मण परमेश्वर पार्श्वनाथजीके

समिप श्रावकव्रत ग्रहनकर भगवानको वन्दन नमस्कारकर अपने स्थानपर गमन करता हुवा।

तत्पश्चात् पार्श्वप्रभु भी बनारसी नगरीके उद्यानसे अन्य जनपद० देशमें विहार कीया

भगवान पार्श्वप्रभु विहार करनेके बाद में कीतनेही समय बनारसी नगरीमें साधुवोंका आगमन नही होनेसे सोमल ब्राह्मणकी श्रद्धा शीतल होती रहा, आखिर यह नतीजा हुवाकि पूर्वकी माफिक (सम्यक्त्वका त्यागकर) मिथ्यात्वी बन गया।

एक समय कि बात है कि सोमलको रात्रीकि वखत कुटम्ब-ध्यान करते हुवे एसा विचार हुवा कि मैं इस बनारसी नगरीके अन्दर पवित्र ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया है विवाह-सादी करी है मेरे पुत्रभि हुवा है मैं वेद पुराणादिका पठनपाठनभि कीया है अश्वमेदादि पशु होमके यज्ञभि कराया है। वृद्ध ब्राह्मणों-को दक्षणादेके यज्ञस्थंभ भि रोपा है इत्यादि बहुतसे अच्छे अच्छे कार्य किया है अबीभि सूर्योदय होनेपर इस बनारसी नगरीके बाहार आम्रादि अनेक जातिके वृक्ष तथा लतायों पुष्प फलादि-वाला सुन्दर बगेचा बनाके नामस्मरीकरू। एसा विचारकर सू-र्योदय क्रमसर एसाही कीया अर्थात् बगेचा तैयार करवायके उस्की वृद्धिके लिये. संरक्षण करते हुवे, यह बगेचा स्वल्पही सम-यमें वृक्ष लता पुष्प फलकर अच्छा मनोहर बनगया। जिसमें सोमल ब्राह्मणकि दुनियांमे नामीफ होने लग गइ। तत्पश्चात सोम-लब्राह्मण एक समय रात्रीमें कुटम्ब चिंतवन करताहुवाको एसा वि-चार हुवा कि मैंने बहुतसे अच्छे अच्छे काम करलिया है यावत् जन्ममें लेके बगेचे तक। अब मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होतेही बहुतसे तापसो संबन्धी भंडोपकरण बनवायके बहुतसे प्रकारका अशनादि भोजन बनवायके ग्यातजातके लोकोंको भो-

जनप्रसाद करवायके मेरा जेष्टपुत्रको गृहभार सुप्रतकरके । तापसो संवन्धी, भंडोमत्त कारण, वनवाकर जो गंगा नदीपर रहेनेवाले तापस है उसके नाम (१) होमकरनेवाले (२) वस्त्र धारण करनेवाले (३) भूमि शयन करनेवाले (४) यज्ञ करनेवाले (५) जनोइ धारण करनेवाले (६) श्रद्धावान (७) ब्रह्मचारी (८) लोहेके उपकरणवाले (९) एक कमंडल रखनेवाले (१०) फलाहार (११) एकवार पाणीमें पेसनिकल भोजन करे (१२) एवं वहुतवार० (१३) स्वल्पकाल पाणीमे रहै (१४) दीर्घकाल रहै (१५) मटी घसके स्नान करे (१६) गंगाके दक्षिण तटपर रहेनेवाले (१७) एवं उत्तर तटपर रहेनेवाले (१८) संख वाजाके भोजन करे (१९) गृहस्थके कुलमे जाके भोजन करे (२०) मृगा मारके उसका भोजन करे (२१) हस्ती मारके उसका भोजन करे (२२) उर्ध्वदंड रखनेवाले (२३) दिशापोषण करनेवाले (२४) पाणीमे वसनेवाले (२५) वील गुफावासी (२६) वृक्षनिचे वसनेवाले (२७) वल्कलके वस्त्र वृक्षकि छालके वस्त्र धारण करनेवाले (२८) अंवु भक्षणकरे (२९) वायु भक्षण करे (३०) सेवाल भक्षण करे (३१) मूल कन्द त्वचा पत्र पुष्प फल वीजका भक्षण करनेवाले तथा सडे हुवे विध्वंसे हुवे एसा कन्दमूल फल पुष्पादि भक्षण करनेवाले (३२) जलाभिशेष करनेवाले (३३) वंस कावड धारण करनेवाले (३४) आतापना लेनेवाले (३५) पंचाग्नि तापनेवाले (३६) इंगाले कोलसे, कष्टशय्या इत्यादि जो कष्ट करनेवाले तापस है जिस्के अन्दर जो दिशापोषण करनेवाले तापस है उन्होंके पास मेरे तापसी दीक्षा लेना और साथमे एसा अभिग्रहभि करना, कि कल्पे मुझे जावजीव तक सूर्यके सन्मुख आतापना लेताहुवा छठ छठ पारणा करना आन्तरा रहीत, पारणाके दिन च्यारोंतर्फ क्रमःसर दिशावोंके मालक देवीदेव है उन्होंका पोषण करना जेसे जिसरोज छठका पारणा आवे उस-

रोज आतापनाकि भूमिसे निचा उतरणा वागलवस्त्र पहेरके अपनि कुटी (झुपडी) से बांसकि कावड लेना पूर्वदिशोके मालक सोमनामके दिगपालकि आज्ञा लेना कि हे देव ! यह सोमल महाऋषि अगर तुमारी दिशामे जोकुच्छ कन्दमूलादि ग्रहन करे तो आज्ञा है । एसा कहके पूर्वदिशामें जाके वह कन्दमूलादिसे कावड भरके अपनि कुटीपे आसा कावड वहांपर रख डाभका तृण उसके उपर रखे । एक डाभका तृण लेके गंगानदीपर जाना वहांपर जलमज्जन, जलाभिषेक, जलक्रीडाकर परमसूचि होके, जलकलस भर, उसपर डाभतृण रखके पीच्छा अपनि कुटीपर आना । वहांपर एक वेलु रेतकी वेदिका बनाना, अरण्यके काष्टसे अग्नि प्रज्वलित करना समाधिके लकडी प्रक्षेप करना अग्निके दक्षिणपासे दंडकमंडलादि सात उपकरण रखना, फीर आहुती देताहुआ घृत मधु तंदुल आदिका होम करना. इत्यादि प्रर्थाना करताहुया बलीदान देनेके बाद वह कन्दमूलादिका भोजन करना एसा विचार सोमलने रात्री समय किया. जेसा विचार कियाथा वेसाहि सूर्योदय होतेही आप तापसी दीक्षालेली छठ छठ पारणा प्रारंभ करदीया । प्रथम छठके पारणा सब पूर्व बताइहुइ क्रियाकर फीर छठका नियमकर आतापना लेने लगगया, जब दुसरा छठका पारणा आया तब वहही क्रिया करी परन्तु वह दक्षिणदिशा यमलोकपाल कि आज्ञा लीथी । इसी माफीक तीसरे पारणे परन्तु पश्चिमदिशा वरुण लोकपालकी आज्ञा और चोथे पारणे उत्तरदिशा कुबेरदिगपालकि आज्ञा लीथी, इसीमाफीक पूर्वादि च्यारों दिशोमें क्रमःसर पारणा करताहुया. सोमल माहणऋषि विहार करता था ।

एक समयकि बात है कि सोमल माहणऋषि रात्री समयमें अनित्य जागृणा करते हुयेको एसा विचार उत्पन्न हुवा कि मैं बनारसी नगरीके अच्छे ब्राह्मणकुलमें जन्म पाके सब अच्छे काम

कीया है यावत् तापसी दीक्षा लेली है तो अब मुझे सूर्योदय होतेही पूर्वसंगातीया तापस तथा पीच्छेसे संगती करनेवाला तापस ओरभि आश्रमस्थितोंको पुच्छके वागलवस्त्र; वांसकि कावड लेके, काष्टकि मुहपति मुहपर वन्धके उत्तरदिशाकि तर्फ मुह करके प्रस्थान करू एसा विचारकरा।

सूर्योदय होतेही अपने रात्रीमें कियाहुवा विचारमाफीक वागलवस्त्र पहेरके वांसकी कावड लेके. काष्टकि मुहपतिसे मुहवन्धके उत्तरदीशा सन्मुख मुहकरके सोमल महाणऋषि चलना प्रारंभकीया उस समय औरभि अभिग्रह करलिया कि चलते चलते, जल आवे, स्थल आवे, पर्वत आवे, खाडआवे, दरी आवे विषमस्थान आवे अर्थात् कोइ प्रकारका उपद्रव्व आवे तोभी. पीच्छा नही हटना. एसा अभिग्रहकर चला जाते जाते चरम पहोरहुवा उससमय अपने नियमानुस्सार अशोकवृक्षके निचे एक वेलुरेतीकी वेदका रची उसपर कावडधरी डावतृण रखा. आप गंगानदीमें जाके पूर्ववत् जलमज्जन जलक्रीडा करी फीर उस अशोकवृक्षके नीचे आके काष्टकि मुहपतिसे मुहवन्ध लगाके चूपचाप वेठगया।

आदी रात्रीके समय सोमल ऋषिके पास एक देवता आया. वह देवता सोमलऋषिप्रते एसा वोलताहुवा। भो! सोमल माहणऋषि! तेरी प्रवृज्जा (अर्थात् यह तापसी दीक्षा) है वह दुष्ट प्रवृज्जा है. सोमलने सुना परन्तु कुच्छभी उतर न दीया, मौन करली। देवताने दुसरी-तीसरीवार कहा परन्तु सोमल इस वातपर ध्यान नही दीया। तव देव अपने स्थान चला गया.

सूर्योदय होतेही सोमल वागलके वस्त्र पहेर कावडादि उपकरण ले काष्टकी मुहपतिसे मुहवन्ध उत्तरदिशाको स्वीकारकर चलना प्रारंभ करदीया, चलते चलते पीच्छले पहोर सीतावनवृक्ष-

के निचे पुर्वकि रीती निवास कीया, देवता आया पूर्ववत् दोय तीनवार कहके अपने स्थान चलागया. एवं तीसरेदिन अशोकवृक्षके निचे वहांभी देवताने दोतीनवार कहा, चोथेदिन. वडवृक्षके निचे निवास किया वहांभी देव आया दोतीन दफे कहा. परन्तु सोमलतो मौनमेंही रहा. देव अपने स्थान चला गया। पांचमेदिन उम्बरवृक्षके निचे सोमलने निवास कीया सब क्रिया पहेले दिन के माफीक करी। रात्री समय देवता आया और बोलाकि हे सोमल! तेरी प्रवृज्ञा हे सो दुष्ट प्रवृज्ञा है एसा दोय तीनवार कहा. इसपर सोमलमहाणऋषि विचार कियाकि, यह कोन है और किसवास्ते मेरी उत्तम तापसी प्रवृज्ञाको दुष्ट बतलाता है? वास्ते मुझे पुच्छना चाहिये. सोमल० उस देवप्रते पुच्छाकि तुम मेरी उत्तम प्रवृज्ञाको दुष्ट क्यों कहते हो? उत्तरमे देवता जवाब दियाकि हे सोमल. पेस्तर तुमने पार्श्वनाथस्वामिके समिप श्रावकके व्रत धारण कियाथा. बाद में साधुवोंके न आनेसे मिथ्यात्वी लोकोंकि संगतकर मिथ्यात्वी बन यावत् यह तापसी दीक्षा ले अज्ञान कष्टकर रहा है तो इसमे तुमकोक्या फायदा है तु. साधु नाम धराके अनन्तजीवों संयुक्त कन्द मूलादिका भक्षण करतेहे. अग्नि जलके आरंभ करतेहे. वास्ते तुमारी यह अज्ञानमय प्रवृज्ञा दुष्टप्रवृज्ञा है।

सोमल देवताका वचन सुनके बोलाकि अब मेरी प्रवृज्ञा केसे अच्छी हो सक्ता है, अर्थात् मेरा आत्मकल्याण केसे होसक्ता है।

देवने कहा कि हे सोमल अगर तुं तेरा आत्मकल्याण करना चाहता है तो जो पुर्व पार्श्वप्रभुकेपास श्रावकके बारह व्रत धारण किये थे. उसको अबी भि पालन करो और इस ढुंगी कर्तव्यको

छोड दे. तब तुमारी सुन्दर प्रवृज्ञा हो सक्ती है। देवने अपने ज्ञानसे सामलके अच्छे प्रणाम जान वन्दन नमस्कारकर निज-स्थानकों गमन करता हुवा।

सोमलने पूर्व ग्रहन किये हुवे श्रावकव्रतोंको पुनः स्वीका-रकर अपनि श्रद्धाको मजबुत बनाके, पार्श्वप्रभुसे ग्रहन किया हुवा तत्त्वज्ञानमे रमणता करताहुवा विचरने लगा।

सोमल श्रावक बहुतसे चोत्थ छठ अठम अर्धमास मासख-मणकी तपश्चर्या करता हुवा. बहुत कालतक श्रावकव्रत पालता हुवा अन्तिम आधा मास (१५ दिन) का अनसन किया परन्तु प-हले जो मिथ्यात्वकी क्रिया करीथी उसकी आलोचना न करी, प्रायश्चित नलिया. विराधिक अवस्थामें कालकर महाशुक्र वैमान उत्पात सभाकि देवशय्यामें अंगुलके असंख्यात भागकि अवगाह-नामे उत्पन्न हुवा, अन्तरमहुर्तमें पांचों पर्यातीको पूर्णकर युवक वय धारण करता हुवा देवभवका अनुभव करनेलगा।

हे गौतम! यह महाशुक्र नामका गृह देवकों जो ऋद्धि ज्योती क्रान्ती मीली है यावत् उपभोगमें आइ है इसका मूल कारण पूर्व भवमें वीतरागकि आज्ञा संयुक्त श्रावकव्रत पालाथा। यद्यपि श्रावककी जघन्य सौधर्म देवलोक, उत्कृष्ट अच्युत देवलोककि गति है परन्तु सोमलने आलोचना न करनेसे ज्योतीषी देवो में उत्पन्न हुवा है। परन्तु यहांसे चवके महाविदेह क्षेत्रमें 'दृढपइ-न्ना' कि माफीक मोक्ष जावेगा इति तीसराध्ययन समाप्तम्।

(४) अध्ययन चोथा—राजग्रहनगर के गुणशीलोद्यानमें भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा. राजा श्रेणकादि पौरजन भग-वानको वन्दन करनेको गये।

उस समय च्यार हजार सामानिकदेव सोला हजार आत्म-

रक्षकदेव, तीन परिषदाके देव, च्यार महत्तरीक देवीयों और भि बहुपुत्तीया वैमानवासी देव देवीयोंके वृन्दसे परिवृत बहुपुत्तीया नामकि देवी. सौधर्म देवलोकके बहुपुत्तीय वैमानकी सौधर्मी सभाके अन्दर नाना प्रकारके गीतग्यान नाटकादि देवसंबन्धी सुख भोगव रही थी, अन्यदा अवधिज्ञानसे आप जम्बुद्विपके भरतक्षेत्र राजग्रहनगरका गुणशीलोद्यानमें भगवान वीरप्रभुको विराजमान देख, हर्ष-संतोष को प्राप्त हो सिंहासनसे उतर सात आठ कदम सन्मुख जाके वन्दन नमस्कार कर बोली कि, हे भगवान ! आप यहांपर विराजते है. मैं यहांपर उपस्थित हो आपको वन्दन करती हूं आप सर्वज्ञ है मेरी वन्दन स्वीकार करावे ।

बहुपुत्तीयादेवीने भगवन्तको वंदनकी तैयारी जेसे सूरियाभदेवने करीथी इसी माफीक करी । अपने अनुचर देवोंको आज्ञा दि कि तुम भगवानके पास जाओ हमारा नाम गौत्र सुनाके वन्दन नमस्कार करके एक जोजन परिमाणका मंडला तैयार करो. जिसमे साफकर सुगन्धी जल पुष्प धूप आदिसे देव आने योग्य बनायों. देव आज्ञा स्वीकारकर वहां गये और कहनेके माफीक सब कार्यकर वापीस आके आज्ञा सुप्रत कर दी.

बहुपुत्तीयादेवी एकहजार जोजनका वैमान बनायके अपने सब परिवारवाले देवता देवीयोंको साथ ले भगवानके पास आइ. भगवानको वन्दन नमस्कारकर सेवा करने लगी.

भगवानने उस बारह प्रकारकी परिषदाको विचित्र प्रकारका धर्म सुनाया । देशना सुन लोकोंने यथाशक्ति व्रतप्रत्याख्यान कर अपने अपने स्थान जानेकी तैयारी करी ।

बहुपुत्तीयादेवी भगवानसे धर्म सुन भगवानको वन्दन नम-

स्कार कर वोली कि हे भगवान ! आप सर्वज्ञ हो मेरी भक्तिको समय समय जानते हो परन्तु गौतमादि छद्मस्थ मुनियोंको हम हमारी भक्तिपूर्वक बत्तीस प्रकारका नाटक वतलावेगी. भगवानने मौन रखीथी।

भगवानने निषेध न करनेसे बहुपुत्तीयादेवी एकान्त जाके वैक्रिय समुद्घातकर जीमणी भूजासे एकसो आठ देवकुमार डावी भुजासे एकसो आठ देवकुमारी और भी बालक रूपवाले अनेक देवदेवी वैक्रिय बनाये तथा ४९ जातिके वाजींत्र और उन्होंके बजानेवाला देवदेवी बनाके गौतमादि मुनियोंके आगे बतीस प्रकारका नाटककर अपना भक्तिभाव दर्शाया, तत्पश्चात् अपनी सर्व ऋद्धिको शरीरमें प्रवेशकर भगवानको वन्दन नमस्कारकर अपने स्थान गमन करती हुइ।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान ! यह बहुपुत्तीयादेवी इतनि ऋद्धि कहांसे निकाली और कहां प्रवेश करी।

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम ! यहां वैक्रिय शरीरका महत्व है कि जेसे कुडागशालामें मनुष्य प्रवेश भी करसक्ते है और निकल भी सक्ते है। यह द्रष्टान्त रायपसेनीसूत्रमें सविस्तार कहा गया है।

गौतमस्वामीने औरभी प्रश्न किया कि हे करूणासिन्धु ! इस बहुपुत्तीयादेवीने पुर्व भवमें एसा क्या पुन्य उपार्जन कियाथा कि जिस्के जरिये इतनि ऋद्धि प्राप्त हुइ है।

भगवानने फरमाया कि हे गौतम ! इस जम्बुद्विपके भरतक्षेत्रमें बनारसी नगरीथी, उस नगरीके बाहार आम्रशाल नामका उद्यान था, बनारसी नगरीके अन्दर भद्र नामका एक बडाही धनाढ्य सेठ (सार्थवाह) निवास करता था, उस भद्र सेठके सुभद्रा नाम-

की सेठाणि थी। वह अच्छी स्वरूपवान थी परन्तु वंध्या अर्थात् उसके पुत्रपुत्री कुच्छ भी नही था। एक समय सुभद्रा सेठाणी रात्रीमें कुटुम्ब चिंता करती हुइको एसा विचार हुवा कि मैं मेरा पतिके साथ पंचेन्द्रिय संबन्धी बहुत कालसे सुख भोगव रहीहु परन्तु मेरे अभीतक एकभी पुत्रपुत्री नही हुवा है, वास्ते धन्य है वह जगतमें कि जो अपने पुत्रकों जनम देती है-बालक्रीडा कराती है-स्तनोंका दुध पीलाती है-गीतग्यानकर अपने मनुष्यभवको सफल करती है, मैं जगतमें अधन्य अपुन्य अकृतार्थ हूं, मेरा जन्मही निरर्थक है कि मेरेको एक भी बचा न हुवा एसा आर्त ध्यान करने लगी।

उसी समयकी बात है कि बहुश्रुति बहुत परिवारसे विहार करती हुइ सुव्रताजी नामकी साध्विजी बनारसी नगरीमें पधारी साध्विजी एक सिंघाडेसे भिक्षा निमित्त नगरीमें भ्रमन करती सुभद्रा सेठाणीके वहां जा पहुंची। उस साध्विजीको आते हुये देख आप आसनसे उठ सात आठ कदम सामने जा वन्दन कर अपने चोकामें ले जायके विविध प्रकारका अशन-पाण-स्वादिम स्वादिम प्रतिलाभा (दानदीया) " नितीझ लोगोंमें विनयभक्ति तथा दान देनेका स्वाभावीक गुन होता है।" बादमें साध्विजीसे अर्ज करी कि हे महाराज मैं मेरे पतिके साथ बहुत कालसे भोग भोगवनेपर भी मेरे एकभी पुत्रपुत्री नही हुवा है तो आप बहुत शास्त्रके ज्ञानकर है, बहुतसे ग्राम नगरादिमें विचरते है तो मुझे कोइ एसा मंत्र यंत्र तंत्र वमन विरेचन औषध भेसज्ज बतलाओं कि मेरे पश्चाद् पुत्रपुत्री होवे जिससे मैं इस वंध्यापणके कलंकसे मुक्त हो जाउं। उत्तरमें साध्विजीने कहा कि हे सुभद्रा! हम श्रमणि निग्रन्थी इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं हमारेको एसा शब्द श्रवणोंद्वारा श्रवण करनाही मना है तो मुंहसे कहना कहा रहा?

हमलोग तो मोक्षमार्ग साधन करनेके लिये केवली प्ररूपीत धर्म सुनानेका व्यापार करते है। सुभद्राने कहा कि खेर! अपना धर्म-ही सुनाइये।

तब साध्विजीने उस पुत्रपीपासी सुभद्राको खडे खडे धर्म-सुनाना प्रारंभ किया हे सुभद्रा! यह संसार असार है एकेक जीव जगतके सब जीवोंके साथ माताका भव. पिताका भव. पुत्रका भव. पुत्रीका भव इत्यादि अनन्ती अनन्तीवार संबन्ध कीया है अनन्तीवार देवतावोंकी ऋद्धि भोगवी है अनन्तीवार नरक निगोदका दुःख भी सहन किया है. परन्तु वीतरागका धर्म जिस जीवोंने अंगीकार नही कीया है वह जीव भविष्यके लिये ही इस संसारमे परिभ्रमन करता ही रेहगा. वास्ते हे सुभद्रा! तुं इस संसारको अनित्य-असार समज वीतरागके धर्मको स्वीकार करता जीससे तेरा कल्याण हो इत्यादि।

यह शान्ति रसमय देशना सुन सुभद्र हर्ष-संतोषको प्राप्त हो बोली कि हे आर्य! आपने आज मुझे यह अपूर्व धर्म सुनाके अच्छी कृतार्थ करी है। हे आर्य! इतना तो मुझे विचार हुवा हैं कि जो प्राणी इस संसारके अन्दर दुःखी है, तृष्णाकि नदीमें झूल रहे है यह सब मोहनियकर्मकाही फल है। हे महाराज! आपका वचनमें श्रद्धा है मुझे प्रतित आइ है मेरे अन्तरआत्मामें रूची हुइ है धन्य है आपके पास दीक्षा लेते है। मैं इस वातमें तो असमर्थ हुं परन्तु आपके पास में श्रावकधर्मको स्वीकार करुंगी।

साध्विजीने कहा कि हे वहन! सुखहो एसा करो परन्तु शुभकार्यमें विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसपर सुभद्रा सेठाणीने श्रावकके बारह व्रतको यथा इच्छा मर्यादकर धारण करलिया।

सुभद्राको श्रावकव्रत पालन करते कितनाएक काल निर्ग-

मन होनेसे यह भावना उत्पन्न हुइ कि मैं इतने काल मेरे पतिके साथ भोग भोगवनेपर मेरे एकभी बालक न हुवा तो अब मुझेसाध्वीजीके पास दीक्षा लेनाही ठीक है । एसा विचारकर अपने पति भद्रसेठसे पुच्छा कि मेरा विचार दीक्षालेनेका है आप मुझे आज्ञा दीरावे.

भद्रसेठने कहा हे सेठाणी ! दीक्षाका काम बडाहि कठिन है तुम हालमें मेरे साथ भोग भोगवों फीर भुक्तभोगी होनेपर दीक्षा लेना । इत्यादि बहुत समजाइ परन्तु हठ करना स्त्रियोंके अन्दर एक स्वाभावीक गुण होताहैं । वास्ते अपने पतिकी एक भी बातकों न मानि. तब भद्रसेठ दीक्षाका अच्छा मोहत्सवकर हजार पुरुष उठावे एसी शीबिकाके अन्दर बेठाके बडेही मोहत्सवके साथ साध्विजीके उपासरे जाके अपनी इष्ट भार्याको साध्वियोंकों शिष्यणीरूप भिक्षा अर्पण करदी अर्थात् सुभद्रा सेठाणी सुव्रतासाध्विजीके पास दीक्षा लेली । सुभद्राने पहले भी कुच्छ ज्ञान ध्यान नही कीया था अब भी ज्ञान ध्यान कुछ भी नही केवल पुत्रके दुःखके मारी. दुःखगर्भित वैरागसे दीक्षा ली थी पेस्तर एक स्वघरमें ही निवास करती थी अबतो अनेक श्रावक श्राविकायोंका घरोंमे गमनागमन करनेका अवसर प्राप्त हो गया था ।

सुभद्रासाध्वि आहारपाणी निमित्त गृहस्थ लोगोंके घरोंमें जाती है वहां गृहस्थोंके लडके लडकियोंको देख अपना स्नेहभावसे उसकों अपने उपासरेमें एकत्र करती है फीर उस बच्चोंके लिये बहुतसा पाणी स्नान करानेको अलताका रंग उस बच्चोंके हाथपग रंगनेको. दुध दहीं खांड खाजा आदि अनेक पदार्थ उस बच्चोंके खीलानेके लिये तथा अनेक खेलखीलुने उस बच्चोंकों खेलनेके लिये यह सब गृहस्थीयोंके यहांसे याचना करलाना प्रारंभ करदीया । अर्थात् सुभद्रासाध्वि उस गृहस्थोंके लडके लड-

बोंयोंको रमाडना खेलाना स्नानमज्जन कराना काजलटीकी करना इत्यादि गर्हितकर्ममें अपना चित्त निमग्न करने लगी.

यह बात सुभद्रासाध्वियोंको मालुम पडी तब सुभद्राको कहने लगी । हे आर्ये ! अपने महाव्रतरूप दीक्षा ग्रहनकर श्रमणी निग्रन्थी शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाली है तो अपनेको यह गृहस्थकार्य धूलीपणा करना नहीं कल्पते है इसवास्ते तुमने यह क्या कार्य करना प्रारंभ कीया है ! क्या तुमने इस कार्योंके लियेही दीक्षा लीई है ? हे भद्रे इस अकृत्यकार्यकि तुम आलोचना करो और आगेके लिये त्याग करो । एसा दोय तीनवार कहा परन्तु सुभद्रासाध्वि इस बातपर कुच्छ भि लक्ष नहीं दीया । इसपर सर्व साध्वियों इस सुभद्राको वार वार रोक टोक करनेलगी अर्थात् कहने लगी कि हे आर्ये ! तुमने संसारको असार जानके त्याग कीया है तो फीर यह संसारके कार्यको क्यों स्वीकार करती हो ? इत्यादि.

सुभद्रासाध्विने विचार किया कि जवतक मैं दीक्षा नहीं ली थी तबतक यह सब साध्वियों मेरा आदरसत्कार करती थी. आज मैं दीक्षा ग्रहन करनेके बाद मेरी अवहेलना निंदा घृणा कर मुझे वार वार रोक टोक करती है तो मुझे इन्होंके साथही क्यों? रहना चाहिये कल एक दुसरा उपासराकि याचना कर अपने वहांपर निवास करदेना । बस ! सुभद्राने एक उपासरा याचके आप वहांपर निवास करदीया । अब तो कोनीका कहना भि न रहा । हटकना वरजना भि न रहा इसीसे स्वछंदे अपनी इच्छानुसार वरताव करनेवाली हो के गृहस्थोंके बालबच्चोंको लाना खेलाना रमाना स्नान मज्जन कराना इत्यादि कार्यमें मुर्च्छित बन गइ । साधु आचारसेभी शीथिल हो गइ । इस हालतमें वहुतसे वर्ष तपश्चर्यादिकर अन्तिम आधा मासका अनसन किया परन्तु

उस घातिकर्मके कार्यकी आलोचना न करती हुइ विराधिभावमें कालकर सौधर्म देवलोकके बहुपुत्तीया वैमानमें बहुपुत्तीया देवीपणे उत्पन्न हुइ है यहांपर च्यार पल्योपमकी स्थिति है.

हे भगवान! देवतावोंमें पुत्रपुत्री तो नही होते हैं फीर इस देवीका नाम बहुपुत्तीया कैसे हुआ!

हे गौतम! यह देवी शक्रेन्द्रकी आज्ञाधारक है। जिस वखत शक्रेन्द्र इस देवीको बोलाते है उस समय पूर्वभवकी पीपासा-वालीदेवी बहुतसे देवकुँमर देवकुँमारी बनाके जाती है इसवास्ते देवतावोंने भी इसका नाम बहुपुत्तीया रख दीया है।

हे भगवान! यह बहुपुत्तीयादेवी यहांसे चवके कहां जावेगी?

हे गौतम! इसी जम्बुद्विपके भरतक्षेत्रमें विंधाचल नामका पर्वतके पास वैभिल नामका सन्निवेसके अन्दर एक ब्राह्मणकुलमे पुत्रीपणे जन्म लेगी. उसका मातापिता मोहत्सवादि करता हुवा सोमा नाम रखेगा अच्छी सुन्दर स्वरूपवन्त होगी. वह लडकी यौवन वय प्राप्त करेगी उस समय पुत्रीका मातापिता अपने कुलके भाणेज रष्टकुटके साथ पाणीग्रहन करा देगा। रष्टकुट उस सोमा भार्याको बडे ही हिफाजतके साथ रखेगा। सोमा भार्या अपने पति रष्टकुटके साथ मनुष्य संबधि भोग भोगवते प्रतिवर्ष एकेक युगलका जन्म होनेसे सोला वर्ष में उस सोमाब्राह्मणीके बत्तीस पुत्र पुत्रीयोंका जन्म होगा। जब सोमा उस पुत्र पुत्रीयोंका पुरण तौरपर पालन कर न सकेगा। वह बत्तीस बालक सोमामातासे कोइ दुद्ध मांगेगा कोइ खांड मांगेगा. कोइ खाजा मांगेगा, कोइ हसेगा. कोइ छींकेगा, कोइ सोमाको ताडना करेगा, कोइ तरजन करेगा. कोइ घरमे

टटी करेगा. कोइ पेशाब करेगा. कोइ श्लेष्म करेगा इस पुत्र पुत्रीयोंके मारे सोमा महा दुःखणि होगी. उसका घर वडाही, दुर्गन्ध वाला होगा. इस वाल वचोंके अवादासे सोमा अपने पति रष्टकुटके साथ मनोइच्छित सुख भोगवनेमें असमर्थ होगी। उस समय सुव्रता नामकि साध्वी एक सिंघाडासे गोंचरी आवेगी, उसको भिक्षा देके वह सोमा वोलेगी कि हे आर्ये ! आप वहुत शास्त्रका जानकर हो मुझे वडाही दुःख है कि मैं इस पुत्र पुत्रीयोंके मारी मेरे पतिके साथ मनुष्य संबधि भोग भोगव नही सक्ती हु वास्ते कोइ एसा उपाय वतलावों कि अव मेरे वालक नहो इत्यादि, साध्वि पूर्ववत् केवली प्ररूपित धर्म सुनाया. सोमा धर्म सुन दीक्षा लेनेका विचार करेगी साध्विजीसे कहा कि मेरे पतिकी आज्ञा ले मैं दीक्षा लेहुगी। पतिसे पुच्छने पर ना कहेगा कारण माता दीक्षा ले तो वालकोंका पोषण कोन करे।

सोमा साध्विजीके वन्दन करनेकों उपासरे जावेगी धर्मदेदेशना सुनेगी श्रावकधर्म वारह व्रत ग्रहन करेगी। जीवादि पदार्थका अच्छा ज्ञान करेगी।

साध्वि वहांसे विहार करेगी. सोमा अच्छी जानकार हो जायगी. कितनेक समयके बाद वह सुव्रता साध्विजी फीर आवेगी. सोमा श्राविका वादनकों जावेगी धर्म देशना श्रवणकर अपने पतिकि अनुमति लेके उस साध्विजीके पास दीक्षा धारण करेगी. विनय भक्तिकर इग्यारा आंगका अभ्यास करेगी। वहुतसे चोथ छठ, अष्टम मासखमण अदमासखमणादि तपश्चर्या कर अन्तिम आलोचन कर आदा मासका अनसन कर समाधिमें काल कर सौधर्म देवलोकमें शक्रेन्द्रके सामानिक देव दो सागरोपमकि स्थितिमें देवपणे उत्पन्न होगी। वहांपर देवसंवन्धि सुखोंका

अनुभोगकर चवेगी यह महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जातिकुलमें अवतार लेगी वहां भो केवली प्ररूपित धर्म स्वीकार कर कर्मशत्रुओंका पराजय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगी । इति चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ।

(५) अध्ययन—भगवान वीरप्रभु राजग्रहन करके गुणशीलोद्यांन में विराजमान है परिषदाका भगवांनकों वन्दन करनेकों जाना भगवानका धर्मदेशना देना यह सब पूर्ववत् समझना ।

उस समय सौधर्म कल्पके पूर्णभद्रवैमान में पूर्णभद्रदेव अपने देव देवीयोंके साथ भोगविलास नाटक आदि देव संबधि सुख भोगव रहाथा ।

पूर्णभद्र देव अवधिज्ञानसे भगवानकों देखा सूरियाभदेवकि माफीक भगवानकों वन्दन करनेकों आना. वतीस प्रकारका नाटक कर पीच्छा अपने स्थानपर गमन करना । गौतमस्वामिका पूर्वभव पृच्छाका प्रश्न करना. उसपर भगवानके मुखारविन्दसे उत्तर का देना यह सर्व पूर्ववत् माफिक समझना ।

·परन्तु पूर्णभद्र पूर्वभवमें । मणिवति नगरी चन्द्रोत्तर उद्यांन. पूर्णभद्र नामका वडा धनाढ्य गाथापति. स्थिवर भगवानका आगमन. पूर्णभद्र धर्मदेशना श्रवण करना जेष्ट पुत्रकों गृहभार सुप्रतकर आप दीक्षा ग्रहन करके इग्यार अंगका ज्ञानाभ्यासकर, अन्तिम आलोचना पुर्वक एक मासका अनसन कर समाधि पुर्वक काल कर सौधर्म देवलोकमें पुर्णभद्र देव हुवा है ।

हे भगवान ! यह पुर्णभद्र देव यहांसे चवके कहा जावेगा ?

हे गौतम ! महा विदहक्षेत्रमें उत्तम जाति कुलके अन्दर जन्म धारणकर केवली परूपीत धर्मकों अंगीकार कर, दीक्षा धारणकर. केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा. इति पांचमाध्ययन समाप्तम् ।

(६) इसी माफीक मणिभद्र देवका अध्ययन भी समझना. यह भि पुर्वभवमें मणिवति नगरीमें मणिभद्र गाथापतिथा स्थिवरोंके पास दीक्षा लेके सौधर्म कल्पमे देवता हुआथा. वहांसे महाविदेहमें मोक्ष जावेगा इति । ६ ।

(७) एवं दत्तदेव (८) वलनाम देव (९) शिवदेव (१०) अनादीत देव पुर्वभवमें सव गाथा पति थे .दीक्षा ले सौधर्म देवलोकमे देव हुवे है. भगवानकों वन्दन करनेको गयेथे, वत्तीस प्रकारके नाटक कर भक्ति करीथी देवभवसे चवके महा विदेह क्षेत्रमें सर्व मोक्ष जावेगा इति । १० ।

॥ इति श्री पुष्फिया नामका सूत्रका संक्षिप्त सार ॥



॥ अथश्री ॥

पुष्फचूलिया सूत्रका संक्षिप्त सार.

(दश अध्ययन)

(१) *प्रथम अध्ययन* । श्री वीरप्रभु अपने शिष्यमंडलके परिवारसे एक समय राजग्रह नगरके गुणशीलोद्यानमें पधारे. च्यार जातिके देवता, विद्याधर, राजा श्रेणक और नगरनिवासी लोक भगवानकों वन्दन करनेको आये।

उस समय सौधर्मकल्पके, श्रीवतंस वैमानमें च्यार हजार सामानिक देव, सोलाहजार आत्म रक्षक देव, च्यार महत्तरिक देवीयों और भी स्ववैमानवासी देवदेवीयोंके अन्दर गीतग्यान नाटकादि देव संबन्धी भोग भोगवती श्रीनामकि देवी अवधिज्ञान से भगवानकों देख यावत् बहु पुत्तीयादेवीकि माफीक भगवानकों वन्दन करनेको गइ बतीस प्रकारका नाटककर अपने स्थानपर गमन किया।

गौतमस्वामिने उस श्रीदेवीका पूर्वभव पुच्छा।

भगवानने फरमाया। कि इसी राजग्रह नगरके अन्दर जयशत्रुराजा राज करता था उस समयकि बात है कि इस नगरीमें बडाही धनाढ्य और नगरमे प्रतिष्टत एक सुदर्शन नामका गाथापति निवास करता था उसके प्राया नामकि भार्या थी और दम्पतिसे उत्पन्न हुइ भूता नामकि पुत्री थी वह पुत्री केसी थी के युवकहोनेपरभी वृद्धवय सादश जिस्का शरीर झंझरसा दीखाइ देता

था जिस्का कटिका भाग नम गया था जंघा पतली पड गई थी. स्तनका अदर्श आकार अर्थात् बीलकुलही दीखाई नही देता था इत्यादि, जिस्को कोइभी पुरुष परणनेकि इच्छाभी नही करता था.

उसी समय, निलवर्ण, नौ-कर (हाथ) परिमाण शरीर, देवादिसे पुजित तेवीसवां तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु सोल हजार मुनि अडतीस हजार साध्वियोंके परिवारसे पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुवे राजग्रहोद्यानमें पधारे। राजादि सर्व लोक भगवानको वन्दन करनेको गये।

यह बात भूतानेभी सुनी अपने माता पिताकि आज्ञा ले स्नान मज्जनकर च्यार अश्वका रथ तैयार करवाके बहुतसे दास दासीयों नोकर चाकरोंके परिवारसे राजग्रह नगरके मध्यभागसे निकलके बगेचेमें आइ भगवानके अतिशय देखके रथसे निचे उत्तर पांचाभिगमसे भगवानको वन्दन नमस्कार कर सेवा करने लगी.

उस विस्तारवाली परिषदाको भगवानने विचित्र प्रकारसे धर्मदेशना सुनाइ अन्तिम भगवानने फरमायाकि हे भव्यजीवों! संसारके अन्दर जीव–सुख–दुःख राजारंक रोगी निरोगी, स्वरूप-कुरूपवान, धनाढ्य दालीद्र उच गौत्र निच गौत्र इत्यादि प्राप्त करते है वह सब पुर्व उपार्जन किये हुवे सुभासुभ कर्मोंकाही फल है। वास्ते पेस्तर कर्मस्वरूपको ठीक ठीक समझके नवा कर्म आनेके आश्रव द्वार है उसको रोको और तपश्चर्या कर पुराणे कर्मोंको क्षय करो तांके पुनः इस संसारमें आनाही न पडे इत्यादि।

देशना श्रवण कर परिषदा आनन्दीत हो यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान कर वन्दन नमस्कार स्तुति करते हुवे स्व स्व स्थान गमन करने लगे।

भूताकुमारी देशना श्रवण कर हर्ष संतुष्ट हो बोलीकि हे भगवान आपका केहना सत्य है सुख और दुःख पुर्वकृत कर्मोकाही फल है परन्तु अपने कर्म क्षय करनेका भी उपाय अच्छा वतलाया है मैं उस रहस्तेकों सचे दीलसे श्रद्धा है मुझे प्रतितभी आइ है आपका केहना मेरे अन्तर आत्मामें रूच भी गया है हे करूणा सिन्धु! मैं मेरे मातापितावोंकों पुच्छके आपकि समिप दीक्षा ग्रहन करुंगा। भगवानने फरमाया 'जहा सुखम्' भूता भगवानको वन्दन नमस्कार कर अपने रथ परारूढ हो अपने घरपर आइ। मातापितायोंसे अर्ज करीकि मैं आज भगवानकि अमृतमय देशना सुन संसारसे भयभ्रात हुइ हु अगर आप आज्ञा देवे तो मैं भगवानके पास दीक्षा ग्रहन कर मेरी आत्माका कल्याण करू? मातापितायोंने कहाकि खुशीसे दीक्षा लों।

नोट—संसारकी केसी स्वार्थवृति होती है इस पुत्रीके साथ मातापिताका स्वार्थ नहीं था बल्के इसीकों कोइ परणताभी नहीं था. इस हालतमे खुशीसे आज्ञा देदीथी।

भूताका दीक्षा लेनेका दील होते ही मातापितायोंने (लग्नके बदलेमे) बडा भारी दीक्षा महोत्सवकर हजार मनुष्य उठाये एसी सेधिकाके अन्दर भूताको बेठा कर बडाही आडम्बरके साथ भगवानके पास आये और भगवानसे वन्दन कर अर्ज करीकि हैं प्रभु यह मेरी पुत्री आपकी देशना सुन संसारसे भयभ्रात हो आपके पास दीक्षा लेना चाहति है हे दयालु! मैं आपकों शिष्यणी रूपभिक्षा देता हु आप इसे स्वीकार करावे.

भूताने अपने वस्त्र भूषण अपने मातापिताकोंदे मुनिवेषको धारणकर भगवानके समिप आके नम्रता पुर्वक अर्ज करी हे भगवान संसारके अन्दर अलीता (जन्म) पलिता (मृत्यु) का म-

हान दुःख है जैसे किसी गाथापतिके गृह जलता हो-उसके अन्द-
रसे असार वस्तु छोडके सार वस्तु निकाल लेते हैं वह सार-
वस्तु गृहस्थोंको सुखमे सहायता भूत हो जाती है एसे मैं भी अ-
सार संसार पदार्थोंको छोड संयम सार ग्रहन करती हु इत्यादि
वीनती करी।

भगवानने उस भूताको च्यार महाव्रतरूप दीक्षा देके पुष्फ-
चूला नामकि साध्विजीकों सुप्रत करदि।

भूतासाध्वि दीक्षा लेनेके बाद फासुक पाणी लाके कवी हाथ
धोवे, कवी पग धोवे, कवी खांख धोवे, कवी स्तन धोवे, कवी
मुख नाक आंखे शिर आदि धोना तथा जहांपर वेठे उठे वहांपर
प्रथम पाणीके छडकाव करना इत्यादि शरीरकि सुश्रुषा करना
प्रारंभ कर दीया।

पुष्फचूलासाध्विजी भूतासाध्विसे कहाकि हे आर्य! अपने
श्रमणी निग्रन्थी है अपनेकों शरीरकि सुश्रुपा करना नही कल्पता
है तथापि तुमने यह क्या ढंग मंड रखा है कि कवी हाथ धोती हैं
कवी पग धोती है यावत् शिर धोती हैं हे साध्वी! इस अकृत्य
कार्य कि आलोचन करो ओर आइंदासे एसे कार्यका परित्याग
करों. एसा गुरुणीजीके कथन कों आदर न करती हुइ भूताने
अपना अकृत्य कार्यको चालु ही रखा। इसपर बहुतसी साध्वियों
उस भूताको रोकटोक करने लगी हे साध्वि! तुं बडेही आडम्ब-
रसे दीक्षा ग्रहन करीथी तों अब इस तुच्छ सुखोंके लिये भगवान
आज्ञाकि विराधि हो अपने मीला हुवा चारित्र चुडामणिकों क्यो
खो रही है?

गुरुणिजी तथा अन्य साध्वियोंकि हितशिक्षाकों नही मा-
नती सोमाकि माफीक दुसरा उपासराके अन्दर निवासकर स्व-

इच्छा स्वछंदे पासत्थपणे विहार करती हुइ बहुत वर्षों तक तप-श्चर्या कर अन्तमें आदा मासका अनसनकर पापस्थान अनाआलोचीत कालकर सौधर्म देवलोकमें श्रीवतंस वैमानमें श्री देवीपणे उत्पन्न हुइ है वहां च्यार पल्योपमका आयुष्य पुरण कर महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति कुलमें उत्पन्न होगा. केवली परूपित धर्म स्वीकार कर दीक्षा ग्रहन करेगी शुद्ध चारित्र पालके केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगी इति प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ।

एवं हूरीदेवी, धृतिदेवी, कीर्तिदेवी, बुद्धिदेवी, लक्ष्मिदेवी, एलादेवी, सुरादेवी, रसादेवी, गन्धादेवी. यह दशों देवीयों भगवानको वन्दन करनेकों आइ. बतीस प्रकारका नाटक किया. गौतमस्वामि इन्होंके पूर्वभवकि पुच्छा करी भगवानने उत्तर फरमाया दशों पूर्व भवमें गाथापतियोंके पुत्रीयों थी जेसेकि भूता. दशों पार्श्वनाथ प्रभुके पास दिक्षा ग्रहन कर शरीरकि सुश्रुषा कर विराधि हो सौधर्म देवलोक गइ वहांसे चवके महाविदह क्षेत्रमें आराधिपद ग्रहन कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेंगी। इति दशाध्ययन ।

॥ इति पुष्फचूलिया सूत्र संक्षिप्त सार समाप्तम् ॥



॥ अथश्री ॥

विन्हिदसा सूत्र संक्षिप्तसार ।

(वारहा अध्ययन.)

(१) प्रथम अध्ययन—चतुर्थ आराके अन्तिम परमेश्वर नेमिनाथप्रभु इस भूमंडलपर विहार करतेथे उस समयकि वात है कि, द्वारकानगरी, रेवन्तगिरि पर्वत्, नन्दनवनोद्यान, सुरप्पिय यक्षका यक्षायतन, श्रीकृष्णराजा सपरिवार. इस सबका वर्णन गौतम कुंमराध्ययनसे देखों ।

उस द्वारकानगरीमे महान् प्राक्रमी वलदेव नामका राजाथा उस वलदेवराजाके रेवन्ती नामकि राणी महिलागुण संयुक्त थी।

एक समय रेवन्ती राणी अपनि सुखशय्याके अन्दर सिंहका स्वप्न देखा यावत् कुंमरका जन्म मोहत्सव कर निषेढ नाम रखाथा ७२ कला प्रविण होनेसे ५० राजकन्यावोंके साथ पाणि ग्रहन दत्ता दायचों यावत् आनन्द पुर्वक संसारके सुख भोगव रहाथा जेसे गौतमाध्ययने विस्तारपुर्व लिखा है वास्ते वहांसे देखना चाहिये।

यादवकुल श्रृंगार देवादिके पूजनिय वावीसवे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवानका पधारना द्वारकानगरीके नन्दनवनमें हुवा।

श्रीकृष्ण आदि सव लोक सपरिवार भगवानकों वन्दन करनेको गया उस समय निषेढकुंमर भी गौतम कि माफीक वन्दन करनेकों गये। भगवानने उस विशाल परिषदाकों विचित्र

प्रकारसे धर्मदेशना दी अन्तमे फरमाया कि हे भव्य.जीवों इस संसारके अन्दर पौदगलीक, अस्थिर सुखोंकों, दुनिया सुख मान रही है परन्तु वस्तुत्व यह एक दुःखका घर है. वास्ते आत्मतत्व वस्तुको पेछान इस करमे सुखोंका त्यागकर अपने अव्राधित सुखोंकों ग्रहन करों. अक्षय सुखोंकों प्राप्त करनेवालेकों पेस्तर चारित्र राजासे मीलना चाहिये अर्थात् दीक्षा लेना चाहिये। इत्यादि।

श्रोतागण देशना सुन यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान ग्रहनकर भगवानको वन्दन नमस्कार कर निज स्थान गमन करते हुये।

निपेढकुमर देशना सुन वन्दन नमन कर बोला कि हे भगवान आप फरमाया वह सत्य है यह नाशमान पौदगलीक सुख दुःखोंका खजाना ही हे। हे प्रभु धन्य है जो राजा महाराजा सेठ सेनापति जोकि अपके समिप दीक्षा लेते हैं, हे दयालु मैं दीक्षा लेनेमें असमर्थ हु परन्तु मैं आपकि समीप श्रावकधर्म अर्थात् बारहव्रत ग्रहन करुंगा। भगवानने फरमाया कि "जहासुखम्"

निपेढकुंमर स्वइच्छा मर्याद रखके श्रावकके बारह व्रत धारण कर भगवानको वन्दन न० कर अपने रथ परारूढ हो अपने स्थान पर चला गया।

भगवान नेमिनाथ प्रभुका जेष्ट शिष्य वरदत्त नामका मुनि भगवानको वन्दन नमस्कार कर प्रश्न करता हुवा कि हे प्रभो! यह निपेढ कुमर पुर्व भवमें क्या पुन्य किया है कि बहुतसे लोगोंकों प्रिय लगता है सुन्दर स्वरूप यश कीर्ति आदि सामग्री प्राप्त हुइ है।

भगवानने फरमायाकि हे वरदत्त! इस जम्बुद्विपके भरतक्षे-

यमें धन धान्यसे समृद्ध एसा राइसडा नामका नगर था, जिसके वाहार मेघवनोद्यान, मणिदत्त नामके यक्षका सुन्दर यक्षायतन था ।

उस नगरमें वडाही प्राक्रमी न्यायशील प्रजापालक महावल नामका राजा राज करता था। जिस राजाके महिला गुण संयुक्त सुशीला पद्मावंती नामकि रांणी थी। उस राणीके सिंह स्वप्न सूचित कुंमरका जन्म हुवा. अनेक महोत्सव कर कुंमरका नाम 'वीरंगत्त' दीया था सुख पुर्वक चम्पकलताकि माफीक वृद्धिकों प्राप्त होता वहोत्तर कलामे निपुण हो गया।

जव वीरंगत्त कुंमरकि युवक अवस्था हुइ देखके राजाने वत्तीस राज कन्यावोंके साथ पाणिग्रहन करा दिया. इतनाही दत्त आया, कुंमर निरावाधित सुख भोगव रहाथा कि जिस्कों काल जानेकि खवरही नही थी ।

उसी समय केसी श्रमणके माफीक वहु श्रुति वहुत शिष्योंके परिवारसे प्रवृत सिद्धार्थ नामका आचार्य महाराज उस रोंहीसडे नगरके उद्यानमें पधारे. राजादि नगरलोक और वीरंगत्त कुंमर आचार्य महाराजकों वन्दन करनेकों गये। आचार्यश्रीने विस्तार पुर्वक धर्मदेशना प्रदान करी । परिषदा यथाशक्ति त्याग वैराग धारण कर विसर्जन हुइ ।

वीरंगत राजकुंमार, देशना सुन परम वैराग रंगमें रंगाहुवा माता-पिताकि आज्ञा पुर्वक वडेही मोहत्सवके साथ आचार्यश्रीके पास दीक्षा ग्रहन करी इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने लगा विशेष विनय भक्ति कर स्थिवरोंसे इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कीया । विचित्र प्रकार तपश्चर्या कर अन्तमे आलोचना पुर्वक ४५ वर्ष दीक्षा पालके दोय मासका अनसन कर

समाधि पुर्वक काल कर पांचवां ब्रह्मदेवलोकमे दश सागरोपमकि स्थितिके स्थान देवतापणे उत्पन्न हुवा। वहांसे आयुष्य पुर्ण कर इस द्वारकानगरीमें बलदेवराजाकि रेवन्ती नाम की राणीके पुत्रपणे उत्पन्न हुवा है हे वरदत्त पुर्व भवमें तप संयमका यह प्रत्यक्ष फल मीला है।

वरदत्तमुनिने प्रश्न कीयाकि हे भगवान यह निषढकुँमर आपके पास दीक्षा लेगा? भगवानने उत्तर दीयाकि हां यह वरदत्त मेरे पास दीक्षा लेगा। एसा सुन वरदत्तमुनि भगवानको वन्दन नमस्कार कर आत्मध्यानमें रमनता करने लगा। अन्यदा भगवान यहांसे विहार कर व अन्य देशमें विचरने लगे।

निषेढकुंमर श्रावक होनेपर जाना है जीवाजीव पुन्य पाप आश्रव संवर निर्झरा बन्ध मोक्ष तथा अधिकरणादि क्रियाके भेदोंको समझा है यावत्। श्रावक व्रतोंको निर्मल पालन करने लगा।

एक समय चतुर्दशी आदि पर्व तीथीके रोज पौषदशालामे युवतु कुमारकि माफीक 'पौषदकर धर्म चिंतवन करतों' यह भावना उत्पन्न हुइकि धन्य है जिस ग्राम नगर यावत् जहांपर नेमिनाथप्रभु विहार करते है अर्थात् उस जमीनको धन्य है कि जहांपर भगवान चरण रखते है। एवं धन्य है जिस राजा महाराजा सेट सेनापतियों की जो भगवानके समिप दीक्षा लेते है। धन्य है जो भगवानके समीप श्रावक व्रत धारण करते है। धन्य है जो भगवानकि देशना श्रवण करते है। अगर भगवान यहांपर पधार जावे तो मैं भगवानके पास दीक्षा ग्रहन करूं एसा विचार रात्रीमें हुवाथा।

सूर्योदय होते ही भगवान पधारणे कि वधाइ आगइ, राजा प्रजा और निषेढकुंमर भगवानको वन्दन करनेको गया. भगवा-

नने देशना दी. निषेढकुंमर देशना सुनि. मातापिता कि आज्ञा प्रात कर बडे ही आडंम्बरके साथ मातापिताने थावचा पुत्र कुंमर कि माफीक मोहत्सव कर भगवानके समिप दीक्षा दीरादी। निषेढमुनि सामायिकादि इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कर पुर्ण नौ वर्ष दीक्षा पाल अन्तिम आलोचना पुर्वक इकवीस दिनका अनसनकर समाधि सहीत कालकर सर्वार्थसिद्ध नामका महावैमान तेतीस सागरोपमकि स्थितिमें देवपणे उत्पन्न हुवा।

वहां देवतावोंसे आयुष्य पुर्णकर महाविदेहक्षेत्रमें उत्तम जातिकुल विशुद्ध वंसमे कुंमरपणे उत्पन्न होगा भोगोंसे अरुची होगा केवली प्ररूपित धर्म स्वीकारकर, दीक्षा ग्रहनकर घोर तपश्चर्या करेगा जिस कार्यके लिये वह दीक्षाके परिसह सहन करेगा उस कार्यको साधन करलेगा अर्थात् केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तिम श्वासोश्वास ओर इस ' संसारका त्यागकर मोक्ष पधार ' जावेगा इति प्रथम अध्ययनं समाप्तं।

इसी माफीक (२) अनिवहकुंमर (३) वहकुंमर (४) अगतिकुंमर (५) युक्तिकुंमर (६) दशरथकुंमर (७) दढरथकुंमर (८) महाधणुकुंमर (९) सतधणुकुंमर (१०) दशधणुकुंमर (११) नामकुमर (१२) शतधणुकुंमर।

यह वारहकुंमर बलदेवराजाकि रेवन्तीराणीके पुत्र है पचास पचास अन्तेवर त्याग श्री नेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा ले अन्तिम सर्वार्थसिद्ध वैमान गये थे वहांसे चवके महाविदेह क्षेत्रमें निषेढकी माफीक सब मोक्ष जावेगा।

इति श्री विन्हिदसासूत्रका संक्षिप्त सार समाप्तम्.





इति श्री

शीघ्रबोध भाग १७ वां १८ वां

॥ समाप्तम् ॥

प्रस्तावना.

इस समय जैनशासन में प्रायः ४५ आगम माने जाते हैं. यथा–ग्यारह अंग, बारह उपांग, दश पयन्ना, छे छेद, चार मूल, नंदी और अनुयोग द्वार एवं ४५.

यहां पर हम छे छेद सूत्रों के विषय में ही कुछ लिखना चाहते हैं. लघु निशिथ, महानिशिथ, और पंचकल्प इन तीन सूत्रों के मूल कर्ता पंचम गणधर सौधर्मस्वामी हैं. तथा बृहत्कल्प, व्यवहार और दशाश्रुतस्कंध इन तीन सूत्रों के मूल कर्ता भद्रबाहु स्वामी हैं. इन सूत्रों पर निर्युक्ति, भाष्य, बृहत्भाष्य, चूर्णि, अवचूरी और टिप्पनादि भिन्न २ आचार्योंने रचे हैं.

इन छ छेदोंमें प्रायः साधु, साध्वीयोंके आचार, गोचार, कल्प, क्रिया और कायदादि मार्गोंका प्रतिपादन किया है. इसके साथ २ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उत्सर्ग, अपवादादि मार्गोंकाभी समयानुसार निरुपण किया है. और इन छओं छेदोंके पठन पाठनका अधिकार उन्हींको है जो गुरुगम्यता पूर्वक गंभीर शैलीसे स्याद्वादमार्गको अच्छी समझने जाने हुवे हैं और गीतार्थ महात्मा हैं और वेही अपने शिष्योंको योग्यता पूर्वक अध्ययन व पठन पाठन करवाते हैं ।

भगवान् वीरप्रभुका हुकम है कि जबतक आचारांग और लघु-निशिथ सूत्रोंका जानकार न हो तबतक उन मुनिराजोंको आगेवान

होके विहार करना, भिक्षाटन करना और व्याख्यान देना नहीं कल्पता.

आचारांग, लघुनिशिथ सूत्रसे अनभिज्ञ साधु यदि पूर्वोक्त कार्य करे तो उसे चतुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. और गच्छनायक. आचार्यादि उक्त अज्ञात साधुवोंको पूर्वोक्त कार्योंके विषय आज्ञा भी न दे. और यदि दे तो उन आज्ञा देनेवालोंकोभी चतुर्मासिक प्रायश्चित होता है. इसलिये सर्व साधु साध्वियोंको चाहिये कि वे योग्यता पूर्वक गुरुगमतासे इन छे छेदोंका अवश्य पठन पाठन करें, विना इनके अध्ययन किये साधु मार्गका यथावत् पालन भी नहीं कर सक्ते. कारण जबतक जिस वस्तुका यथावत् ज्ञान न हो उसका पालन भी ठीक ठीक कैसे हो सक्ता है?

अगर कोइ शीथिलाचारी खुद स्वछन्दताको स्विकार कर अपने साधु साध्वियोंको आचारके अन्धकारमें रख अपनी मन मानी प्रवृत्ति करना चाहे, उसको यह कहना आसान होगा कि साधु साध्वियोंको छेदसूत्र न पढाने चाहिये. उनसे यह पूछा जाय कि छेदसूत्र है किस लिये? अगर ऐसाही होता तो चौरासी आगमोंमेंसे पैंतालीश आगमका पठन पाठन न रखकर उन चालीसका ही रख देते तो क्या हरज थी?

अब सवाल यह रहा कि छेद सूत्रोंमें कइ बातें ऐसी अपवाद है कि वह अल्पज्ञोंको नहीं पढाइ जाती (समाधान) मूल सूत्रोंमे तो ऐसी कोइभी अपवादकी बात नहीं है कि जो साधुवोंको न पढाई

जाय. अगर भाष्य चूर्णि आदि विवरणोंमें द्रव्य क्षेत्र समयानुसार दुष्कालादिके कारणसे अपवाद मार्गका प्रतिपादन किया है वह " अ-सक्त परिहार " उस विकट अवस्थाके लिये ही है; परन्तु सूत्रोंमें "सुत्थो खलु पढमो" ऐसाभी तो उल्लेख है कि प्रथम सूत्र और सूत्रका शब्दार्थ कहना. इस आदेशसे अगर मूल सूत्र और सूत्रका शब्दार्थसे ही शिष्यको छेद सूत्रोंकी वाचना दे तो क्या हर्ज है? क्योंकि इतने-से मुनियोंको अपने मार्गका सामान्यतः बोध हो सक्ता है.

बहोतसे ग्रन्थोंमें छेदसूत्रोंके परिमाणकी आवश्यकता होनेपर मूल सूत्रोंका पाठ लिख उसका शब्दार्थ कर देते हैं. इस तरह अगर सम्पूर्ण छेद सूत्रोंकी भाषा कर दी जाय तो मेरे ख्यालसे कोइ प्रकारकी हानी नहीं है, बल्कि अज्ञानके अन्धेरेमें गिरे हुवे महात्माओंके लिये सूर्यके समान प्रकाश होगा.

दूसरा सवाल यह रहा कि छेदसूत्रोंके पठन पाठनके अधिकारी केवल मुनिराज ही होते हैं और छपवाके प्रसिद्ध करा दिये जानेपर सर्व साधारण (श्रावक) लोकभी उनके पढनेके अधिकारी हो जावेंगे. इस बातके लिये फिकर करनेकी आवश्यकता नहीं है. यह कायदा जबकि सूत्रोंकी मालकी अपने पास थी. याने सूत्र अपनेही कब्जेमें रक्खे हुवे थे, तब तकचल सक्ती थी; परन्तु आज वे सूत्र हाथोहाथ दिखाई देते है. तो फिर इस बातकी दाक्षिण्यता क्यों? अन्य लोक भी जैन-शास्त्रोंको पढते है तो फिर श्रावक लोगोंने ही क्या नुकसान किया है कि उनको सूत्रोंकी भाषा भी पढनेका अधिकार नहीं.

सूत्रोंमें ऐसा भी पाठ दिखाई देता है कि भगवान् वीरप्रभुने वहुतसे साधु, साध्वि, श्रावक, श्राविका, देव और देवांगनाओंकी परिषदामें इन सूत्रोंका व्याख्यान किया है अगर ऐसा है तो फिर दूसरे पढेंगे यह भ्रांति ही क्यों होनी चाहिये?

छेदसूत्रोंमें जैसे विशेषतासे साधुवोंके आचारका प्रतिपादन है, वैसे सामान्यतासे श्रावकोंके आचारका भी व्याख्यान है. श्रावकोंके सम्यक्त्व प्रतिपादनका अधिकार जैसा छेदसूत्रोंमें है, वैसा सायद ही दूसरे सूत्रोंमे होगा और श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमाका सविस्तार तथा गुरुकी तेतीस आशातना टालना और किसी आचार्यको पदवीका देना वह योग्य न होनेपर पद्विका छोडाना तथा आलोचना करवाना इत्यादि आचार छेदसूत्रोंमें है. इसलिये श्रावकभी सुननेके अधिकारी हो सक्ते हैं.

अब तीसरा सवाल यह रहा की श्रावकलोक मूल सूत्र बांचनेके अधिकारी है या नहीं? इस विषयमें हम इतना ही कहेंगे कि हम इन छेदसूत्रोंकी केवल भाषाही लिखना चाहते हैं. और भाषाका अधिकारी हरएक मनुष्य हो सक्ता है.

प्रसंगतः इन छेदसूत्रोंका कितनाक विभाग भिन्न २ पुस्तकों-द्वारा प्रकाशित हो चुका है. जैसे सेनप्रश्न, हीरप्रश्न, प्रश्नोत्तरमाला, प्रश्नोत्तरचिन्तामणी, विशेषशतक, गणधरसार्द्धशतक और प्रश्नोत्तरसार्द्ध-शतकादि ग्रन्थोंमें आवश्यकता होनेपर इन छेदसूत्रोंकें कतिपय मूलपाठोंको उध्धृत कर उनका शब्दार्थ और विस्तारार्थसें उल्लेख किया है.

इससे जैन समाजको बडाही लाभ हुवा और यह प्रवृत्ति भव्यात्मावों के बोधके लिये ही की गईथी.

इस लिये अब क्रमशः सम्पूर्ण सूत्रोंको भाषाद्वारा प्रकाशित करवा दिया जाय तो विशेष लाभ होगा, इसी हेतुसे इन सूत्रोंकी भाषा की जाती है. इसको लिखते समय हमको यह भी दाक्षिण्यता न रखनी चाहिये कि सूत्रोंमें बडे ही उच्च कोटीसे मूर्तिमार्गको बतलाया है. और इस समय हमसे ऐसा कठिन मार्ग चल नहीं सक्ता, इसलिये इन सूत्रोंकी भाषा प्रकाशित न करे. आज हम जितना पालते हैं, भविष्यमें मंद संहननवालोंमे इतनाभी चलना कठिन होगा, तथापि सूत्र तो यही रहेंगे. शास्त्रकारोंने यह भी फरमाया है कि " जं सकंतं करह जं न सकंतं सदह, सदह मणो जीवो पावई सासयठाणं " भावार्थ– जितना बने उतना करना चाहिये, अगर जो न बन सके उसके लिये श्रद्धा रखनी चाहिये, श्रद्धा रखनेहीसे जीवोंको शाश्वत स्थानकी प्राप्ति हो सक्ती है.

उत्कृष्ट मुनिमार्गका जो प्रतिपादन आचारांग, सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण, ओघनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति आदि सूत्रोंके छपनेमे जाहेर हो चुका है, तो फिर दूसरे सूत्रोंका तो कहनाही क्या?

कितनीक तो रुढी भ्रांतियें पड जाती है. अगर उसे दीर्घ द्रष्टीसे देखा जाय तो सिवाय नुकशानके दूसरा कोइ भी लाभ नहीं है.

हम हमारे पाठक वर्गसे अनुरोध करते हैं कि आप एक दफे

इन शीघ्रबोधकेभागोंको क्रमशः आद्योपान्त पढीये. इसके पढनेसे आपको ज्ञात हो जायगा कि सूत्रोंमें ऐसा कोनसा विषय है कि जो जनसमाजके पढने योग्य नहीं हैं? अर्थात् वीतरागकी वाणी भव्यजीवोंका उद्धार करनेके लिये एक असाधारण कारण है, इसके आराधन करनेहीसे भव्यजीवोंको अक्षय सुखकी प्राप्ति हुई है—होती है—ओर होगी.

अन्तमें पाठकोंसे मेरा यह निवेदन है कि छद्मस्थोंसे भूल होनेका स्वाभाविक नियम है. जिसपर मेरे सरीखे अल्पज्ञसे भूल हो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु सज्जन जन मेरी भूलकी अगर सूचना देंगे तो में उनका उपकार मान कर उसे स्वीकार करुंगा और द्वितीयावृत्तिमें सुधारा वधारा कर दिया जावेगा. इत्यलम्—

लेखक.



। श्रीरत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं. ६२ ।

। श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः ।

शीघ्रबोध भाग १९ वां.



श्रीबृहत्कल्पसूत्रका संक्षिप्त सार.

—◦⁂◦—

(उद्देशा ६ छे.)

प्रथम १ उद्देशा—इस उद्देशामें मुख्य साधु साध्वीयोंका आचारकल्प है । जो कर्मबंधके हेतु और संयमको बाधा करनेवाले पदार्थ है, उनको निषेध करते हुवे शास्त्रकारोंने " नो कप्पइ " अर्थात् नहि कल्पे, और संयमके जो साधक पदार्थ है, उनको " कप्पइ " अर्थात् यह कल्पते है । यह दोनों प्रकार " नो कप्पइ " " कप्पइ " इसी उद्देशामें कहेंगे । यथाः—

(१) नहि कल्पे-साधु साध्वीयोंको कच्चा तालवृक्षका फल ग्रहन करना न कल्पे । भावार्थ-यहां तालवृक्षसे ताल-वृक्षका नाम कहा है वह किसी देश विशेषका है । क्योंकि भिन्न भिन्न देशोंके भिन्न २ भाषा होती है । एक देशमें एक वृक्षका अमुक नाम है, तो दूसरे देशमें उसी वृक्षका औरही

नाम प्रचलित है। यहां पर तालवृक्षके फलकी आकृति लंबी और गोल समझनी चाहिये। प्रचलित भाषामें जैसी केलेकी आकृति होती है। साधु साध्वीयोंको ऐसा कच्चा फल लेना नहि कल्पै।

(२) कल्पै–साधु साध्वीयोंको कच्चा तालवृक्षका फल, जो उस फलको छेदन भेदन करके निर्जीव कर दीया है, अर्थात् वह अचित्त हो गया हो तो लेना कल्पै।

(३) कल्पै—साधुवोंको पका तालवृक्षका फल; चाहे वह छेदन भेदन कीया हुवा हो, चाहे छेदन भेदन न भी कीया हो, कारण–वह पका हुवा फल अचित्त होता है।

(४) नहि कल्पै—साध्वीयोंको पका तालवृक्षका फल, जो उसको छेदन भेदन नहि कीया हो, कारण–उस पूर्ण फलकी आकृति लंबी और गोल होती है।

(५) कल्पै—साध्वीयोंको पका तालवृक्षका फल, जीसको छेदन भेदन कीया हो, वह भी विधिसंयुक्त छेदन भेदन कीया हुवा हो, अर्थात् उस फल ऊभा नही चीरता हुवा, बीचमेंसे टुकडे किये गये हो, ऐसा फल लेना कल्पै।

(६) कल्पै—साधुवोंको निम्न लिखित १६ स्थानों, शहरपना (कोट) संयुक्त और शहरके वहार वस्ती न हो, अर्थात् उस शहरका विभाग अलग नहीं हुवे ऐसा ग्रामादिमें साधुवोंको शीतोष्णकालमें एक मास रहना कल्पै।

१६ स्थानोंके नाम.—

(१) ग्राम—जहां रहनेवाले लोगोंकी संख्या स्वल्प है, खान, पान, भाषा हलकी है, और जहांपर ठहरनेसें बुद्धिमानोंकी बुद्धि मलिन हो जाती है, वो ग्राम कहा जाता है।

(२) आकर—जहांपर सोना, चांदी और रत्नोंकी खाणों हों।

(३) नगर—शहरपना (कोट) सें संयुक्त होके गोलाकार हो, वो नगर कहा जाता है और लम्बी जादा, चोडी कम हो वो नगरी कही जाती है।

(४) खेड—धूलकोट तथा खाइ संयुक्त हो ।

(५) करवट—जहांपर कुत्सित मनुष्यों वसतें हैं।

(६) पट्टण—जहांपर व्यापारी लोगोंका विशेष निवास हो। (१) गीनतीसें नालीयरादि (२) तोलसें गुल शर्करादि, (३) मापसे कपडा कीनारी इत्यादि, (४) परीक्षासें रत्नादि-ऐसा चार प्रकारके पदार्थ मिले और विक्रयभी हो सके, उसे पट्टण कहतें हैं।

(७) मंडप—जिसके चहार अढाइ अढाइ कोशपर ग्राम न हो।

(८) द्रोणीमुख—जहांपर जल और स्थलका दोनों रस्ता मोजुद हो।

(९) आश्रम—जहांपर तापसोंका बहुत आश्रम हो।

(१०) सन्निवेश—बडे नगरके पासमें वस्ती हो।

(११) निगम—जहांपर प्रायः वैश्य लोगोंकी अधिक वस्ती हो।

(१२) राजधानी—जहांपर खास करके राजाकी राजधानी हो।

(१३) संवहन—जहांपर प्रायः किरसानादिककी वस्ती हो।

(१४) घोषांसि—जहांपर प्रायः घोषी लोगों वस्तें हो।

(१५) एशीयां—जहांपर आये गये मुसाफिर ठहरतें हैं।

(१६) पुडभोय—जहां खेतीवाडीके लीयें अन्य ग्रामोंसें लोगों आकरके वास करते हो।

भावार्थ—एक माससें अधिक रहनेसें गृहस्थ लोगोंका अधिक परिचय होता है और जिससे राग द्वेषकी वृद्धि होती हैं। सुखशीलीयापना वढ जाता हैं। वास्ते तन्दुरस्तीके कारन विना मुनिकों शीतोष्ण कालमें एक माससे अधिक नहि ठहरना।

(७) पूर्वोक्त १६ गढ, कोट शहरपनासें संयुक्त हो। कोटके वहार पुरा आदि अन्य वस्ती हो, ऐसे स्थानमें साधुको शीतोष्ण कालमें दोय मास रहेना कल्पै, एक मास कोटकी अंदर और एक मास कोटकी वहार; परंतु एक मास अन्दर रहे वहां भिक्षा अन्दर करे, और वहार रहे तब भिक्षा वहारकी करे। अगर अन्दर एक मास रहेते हुवे एक रोजही वहारकी भिक्षा करी हो, तो अन्दर और वहार दोनो स्थानमें एकही मास रहेना कल्पनीय है। अगर अन्दर एक मास रहके वहार

रहते हुये अन्दरकी भिक्षा लेवे, तो कल्पातिक्रम दोष लगता है। वास्ते जहां रहे वहांकी भिक्षा करनेकीही आज्ञा है।

(८) पूर्वोक्त १६ स्थानोंकी बहार वस्ती न हो, तो शीतोष्णकालमें साध्वीयोंको दो मास रहेना कल्पै, भावना पूर्ववत्।

(९) पूर्वोक्त १६ स्थान कोट संयुक्त हो, बहार पुरादि वस्ती हो, तो शीतोष्ण कालमें साध्वीयोंको च्यार मास रहेना कल्पै। दो मास कोटकी अन्दर और दो मास कोटकी बहार। अन्दर रहे वहांतक भिक्षा अन्दर करे और बहार रहे वहांतक भिक्षा बहार करे।

(१०) पूर्वोक्त ग्रामादिके एक कोट, एक गढ, एकही दरवाजा, एकही निकाश, प्रवेशका रस्ता हो, ऐसा ग्रामादिमें साधु, साध्वीयोंको एकत्र रहेना उचित नहि। कारण-दिन और रात्रिमें स्थंडिलादिकके लीये ग्रामसें बहार जाना हो, तो एकही दरवाजेसे आने जानेमें परिचय बढता है, इस लीये लोकापवाद और शासन लघुतादि दोषोंका संभव है।

(११) पूर्वोक्त ग्रामादिके बहुतसें दरवाजे हो, निकास, प्रवेशके बहुतसें रस्ते हो, वहांपर साधु, साध्वी, एक ग्राममें निवास कर सकते है। कारण-उन्होंको आने जानेको अलग अलग रस्ता मिल सकता है।

(१२) बाजारकी अन्दर, व्यापारीयोंकी दुकानकी

अन्दर, चौरा (हथाइकी बैठक), चौकके मकानमें और जहां-पर दोय तीन च्यार तथा बहुतसे रस्ते एकत्र होते हो, ऐसे मकानमें साध्वीयोंको उतरना और स्वल्प या बहुत काल ठहरना उचित नहीं हैं। कारण एसे स्थानोंमें रहनेसे ब्रह्मचर्यकी गुप्ति (रक्षा) रहनी मुश्कील हैं।

भावार्थ—जहांपर बहुतसे लोगोंका गमनागमन हो रहा है, वहांपर साध्वीयोंको ठहरना उचित नहि है।

(१३) पूर्वोक्त स्थानोंमें साधुवोंको रहना कल्पे।

(१४) जिस मकानके दरवाजोंके किवाड न हो अर्थात् रात दिन खुला रहेते हो, ऐसे मकानमें साध्वीयोंको शीलरक्षाके लीये रहेना कल्पे नहीं।

(१५) उक्त मकानमें साधुवोंको रहेना कल्पै।

(१६) साध्वीयों जिस मकानमें उतरो हो उसी मकानका किवाड अगर खुला रखना चाहती हो तो एक वस्त्रका छेडा अन्दर बांधे और दुसरा छेडा व्हार बांधे। कारण—अगर कोइ पुरुष कारणवशात् साध्वीयोंके मकानमें आना चाहता हो, तोभी एकदम वो नहीं आसकता।

भावार्थ—यह सूत्र साध्वीयोंके शीलकी रक्षाके लीये फरमाया है।

(१७) घडाके मुख माफिक संकुचित मुखवाला मात्राका

भाजन अन्दरसे लींपा हुवा, साधुवोंको रखना कल्पे नहीं। कारण–पिसाव करते वखत चित्तवृत्ति मलिन न हो।

(१८) उक्त भाजन साध्वीयोंको रखना कल्पे।

(१९) उपरसे सुपेतादिसे लिप्त किया हुवा नालीका आकार समान मात्राका भाजन साध्वीयोंको रखना कल्पे नहीं। भावना पूर्ववत्।

(२०) उक्त मात्राका भाजन साधुवोंको कल्पे।

(२१) साधु साध्वीयोंको वस्त्रकी चलमीली अर्थात् आहारादि करते समय मुनिको वो गुप्त स्थानमें करना चाहिये। अगर ऐसा मकान न मिले तो एक वस्त्रका पडदा बांधके आहार करना चाहिये। उस वस्त्रको शास्त्रकारोंने चलमील कहा है।

(२२) साधु, साध्वीयोंको पाणीके स्थान जैसे नदी, तलाव, कुवा, कुण्ड, पाणीकी पोवाआदि स्थानपर बैठके नीचे लिखे हुवे कार्य नहीं करना। कारण–इसीसे लोगोंको शंका उत्पन्न होती है कि साधु वहांपर कचा पानीका उपयोग करते होंगे? इत्यादि।

(१) मलमूत्र (टट्टी पेसाव) वहांपर करना, (२) बैठना, (३) उभा रहेना, (४) सोना. (५) निद्रा लेना, (६) विशेष निद्रा लेना, (७) अशनादि च्यार प्रकारके आहार करना, (११) स्वाध्याय करना, (१२) ध्यान करना, (१३)

कायोत्सर्ग करना, (१४) आसन लगाना, (१५) धर्मदेशना देना, (१६) वाचना देना, (१७) वाचना लेना—यह १७ बोल जलाश्रय पर न करनेके लीये है।

(२३) साधु साध्वीयोंको सचित्र—अर्थात् नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रा हुवा मकानमें रहेना कल्पे नहीं।

भावार्थ—स्वाध्याय ध्यानमें वह चित्र विघ्नभूत है, चित्तवृत्तिको मलिन करनेका कारण है।

(२४) साधु साध्वीयोंको चित्र रहित मकानमें रहेना कल्पै। जहांपर रहनेसे स्वाध्याय ध्यान समाधिपूर्वक हो सके।

(२५) साध्वीयोंको गृहस्थोंकी निश्रा विना नहीं रहेना, अर्थात् जहां आसपास गृहस्थोंका घर न हो ऐसे एकांतके मकानमें साध्वीयोंको नहीं रहेना चाहिये। कारण—अगर केइ ऐसेभी ग्रामादि होवे कि जहांपर अनेक प्रकारके लोग वसते है, अगर रात दिनमें कारण हो, तो किसके पास जावे। वास्ते आसपास गृहस्थोंका घर होवे, ऐसे मकानमें साध्वीयोंको रहना चाहिये।

(२६) साधुवोंको चाहे एकान्त हो, चाहे आसपास गृहस्थोंका घर हो, कैसाही मकान हो तो साधु ठहर सके। कारण—साधु जंगलमेंभी रह सकता, तो ग्रामादिकका तो कहना ही क्या? पुरुषकी प्रधानता है।

(२७) साधु साध्वीयोंको जहांपर गृहस्थोंका धन—द्रव्य,

भूपणादि कीमती माल होवे, ऐसा उपाश्रय-मकानमें रहेना कल्पे नहीं। कारण अगर कोइ तस्करादि चोरी कर जाय तो साधु रहेनेके कारणसे अन्य साधुवोंकी भी अप्रतीति हो जाती है, इसलीये दूसरी दफे वस्ती (स्थान) मुश्केलीसे मिलता है।

(२८) साधु साध्वीयोंको जो गृहस्थोंका धन, धान्यादिसे रहित मकान हो, वहांपर रहेना कल्पै।

(२९) साधुवोंको जो स्त्री सहित मकान होवे, वहां नहीं ठहरना चाहिये। (३०) अगर पुरुप सहित होवे तो कल्पे भी।

(३१) साध्वीयोंको पुरुप संयुक्त मकानमें नहीं रहेना। (३२) अगर ऐसाही हो तो स्त्रीसंयुक्त मकानमें ठहर सके।

भावार्थ—प्रथम तो साधु साध्वीयोंको जहां गृहस्थ रहेते हो, ऐसा मकानमें नहीं रहेना चाहिये। कारण-गृहस्थसे परिचयकी बिलकुल मना है। अगर दूसरे मकानके अभावसे ठहरना हो तो उक्त च्यार सूत्रके अमलसे ठहर सके।

(३३) साधुवोंको जो पासके मकानमें ओरतां रहेती हो ऐसा मकानमें भी ठहरना नहीं चाहिये। कारण-रात्रिके समय पेसाब विगेरे करनेको आते जाते वखत लोगोंकी अप्रतीतिका कारण होता है।

(३४) साध्वीयों उक्त मकानमें ठहर सकती है।

(३५) साधुवोंको जो गृहस्थोंके घर या मकानके बीचमें हो के आने जानेका रस्ता हो, ऐसा मकानमें नहीं ठहरना

चाहिये। कारन—गृहस्थोंकी वहिन, वेटी, वहुवोंका हरदम वहां रहेना होता है। वह किस अवस्थामें वैठ रहेती है, और महिला परिचय होता है।

(३६) साध्वीयोंको ऐसा मकान हो, तो भी ठहरना कल्पै।

(३७) दो साधुवोंको आपसमें कपाय (क्रोधादि) हो गया होवे, तो प्रथम लघु (शिष्यादि) को वृद्ध (गुर्वादि) के पास जाके अपने अपराधकी क्षमा याचनी चाहिये। अगर लघु शिष्य न जावे तो वृद्ध गुर्वादिको जाके क्षमा देनी लेनी चाहिये। वृद्ध जावे उस समय लघु साधु उस वृद्ध महात्माका आदर सत्कार करे, चाहे न भी करे; उठके खडा होवे चाहे न भी होवे; वन्दन नमस्कार करे चाहे न भी करे, साथमें भोजन करे, चाहे न भी करे, साथमें रहे, चाहे न भी रहे; तोभी वृद्धोंको जाके अपने निर्मल अन्तःकरणसे खमावना चाहिये।

प्रश्न—स्थान स्थान वृद्धोंका विनय करना शास्त्रकारोंने वतलाया है, तो यहांपर वृद्ध मुनि सामने जाके खमावे इसका क्या कारन है?

उत्तर—संयमकासार यह है कि क्रोधादिको उपशमाना, यहांपर वडे छोटेका कारन नहीं है। जो उपशमावेगा—खमत-खामणा करेगा, उसकी आराधना होगी; और जो वैर विरोध रक्खेगा अर्थात् नहीं खमावेगा, उसकी आराधना नहीं होगी। वास्ते सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव रखना यही संयमका सार है।

(३८) साधु साध्वीयोंको चतुर्मासमें विहार करना नहीं कल्पे। कारन—चातुर्मासमें जीवादिककी उत्पत्ति अधिक होती है।

(३६) शीतोष्णकालमें आठ मास विहार करना कल्पे।

(४०) साधु साध्वीयोंको जो दोय राजावोंका विरुद्ध पक्ष चलता हो, अर्थात् दोय राजाका आपसमें युद्ध होता हो, या युद्धकी तैयारी होती हो, ऐसे क्षेत्रमें वार वार गमनागमन करना नहीं कल्पे। कारन—एक पक्षवालोंको शंका होवे कि यह साधु वार वार आते जाते है, तो क्या हमारे यहांके समाचार परपक्षवालोंको कहते होंगे? इत्यादि। अगर कोइ साधु साध्वी दोय राजावोंके विरुद्ध होनेपर वार वार गमनागमन करेगा, उसीको तीर्थंकरोंकी और उस राजावोंकी आज्ञाका भंग करनेका पाप लगेगा, जिससे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित आवेगा।

(४१) साधु गृहस्थोंके वहां गोचरी जाते है। अगर वहां कोइ गृहस्थ वस्त्र, पात्र, कंबल रजोहरनकी आमंत्रणा करे, तो कहना कि यह वस्तु हम लेते हैं, परन्तु हमारे आचार्यादि वृद्ध मुनियोंके पास ले जाते हैं। अगर खप होगा तो रख लेगें खप न होगा तो तुमको वापिस ला देंगे। कारन—आहारादि वस्तु लेनेके वाद वापिस नहीं दी जाती है, परन्तु वस्त्र पात्रादि वस्तु उस रोजके लिये करार कर लाया हो, तो खप न होनेपर वापिस भी दे सकते हैं। वस्त्रादि लाके आचा-

यादि वृद्धोंको सुप्रत कर देना, फिर वह आज्ञा देनेपर वह वस्त्रादि काममें ले सकते है। भावार्थ—यहां स्वच्छंदताका निषेध, और वृद्ध जनोंका विनय बहुमान होता है।

(४२) इसी माफिक विहारभूमि जाते हुवेको, स्वाध्याय करनेके अन्य स्थानमें जाते हुवेको आमंत्रणा करे तो।

(४३) एवं साध्वी गोचरी जाती हो।

(४४) एवं साध्वी विहारभूमि जातीको आमंत्रणा करे, परन्तु यहां साध्वीयों अपनी प्रवर्त्तिनी—गुरुणीके पास लावे और उसीकी आज्ञासे प्रवर्ते।

नोटः—इस दोयसूत्रमें विहारभूमिका लिखा है, तो विहार शब्दका अर्थ कोइ स्थानपर जिनमंदिरका भी कीया है। साधु स्वाध्याय तो मकानमें ही करते है, परन्तु जिनमंदिर दर्शनके लीये प्रतिदिन जाना पडता है। वास्ते यहांपर जिनमंदिर ही जाना अर्थ ठीक संभव होता है।

(४५) साधु साध्वीयोंको रात्रिसमय और वैकालिक (प्रतिक्रमण समय) अशनादि च्यार आहार ग्रहन करना नहीं कल्पै। कारन—रात्रि—भोजनादि कार्य गृहस्थोंके लीये भी महापाप वतलाया है, तो साधुवोंका तो कहना ही क्या?। रात्रिमें जीवोंकी जतना नहीं हो सकती। अगर साधुवोंको निर्वाह होने योग्य ठहरनेको मकान नहीं मिले उस हालतमें कपडे आदिके व्यापारी लोग दुकान मंडते हो, उसको देनेमें दृष्टि

प्रतिलेखन करी हो, तो वह दुकानों रात्रिमें ग्रहन कर सुनेके काममें ले सकते है ।

(४६) साधु साध्वीयोंको रात्रिसमय और वैकालिक समय वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरन लेना नहीं कल्पै । परन्तु कोइ निशाचर साधुयोंके वस्त्रादि चोरके ले गया हो, उसको धोया हो, रंगा हो, साफ गडीबंध करा हो, धूप दीया हो, फिर उसके दिलमें यह विचार हो कि 'साधुयोंका वस्त्रादि नहीं रखना चाहिये' एसा इरादासे वह दाक्षिण्यका मारा दिनको नहीं आता हुवा रात्रिमें आके कपडा वापिस देवे तो मुनि रात्रि में भी ले सकता है । फिर वह वस्त्रादि किसी भी काममें क्यों न लो, परन्तु असंयममें नहीं जाने देना । वास्ते यह कारनसे वो रात्रिमें भी ले सके ।

(४७) साधु साध्वीको रात्रिमें विहार करना नहीं कल्पै । कारन-रात्रिमें इर्यासमितिका भंग होता है, जीवादिकी रक्षा नहीं होती है ।

(४८) साधु साध्वीको किसी ग्रामादिमें जिमणवार सुनके-जानके उस गामकी तर्फ विहार करना नहीं कल्पै । इससे लोलुपताकी वृद्धि, लोकापवाद और लघुता होती है ।

(४९) साधुयोंको रात्रि समय और वैकालिक समयपर स्थण्डिल या मात्रा करनेको जाना हो तो एकेलेको जाना नहीं कल्पै। कारन-राजादि कोइ साधुको दखल करे, या

एकेला साधु कितना वख्त और कहांपर जाते है इत्यादि । वास्ते चाहिये कि आपसहित दो या तीन साधुवोंको साथ जाना । कारन–दूसरेकी लज्जासे भी दोष लगाते हुवे रुक जाते है । तथा एक साधुको राजादिके मनुष्य दखल करता हो, तो दूसरा साधु स्थानपर जाके गुर्वादिको इतल्ला कर सकता है ।

(५०) इसी माफिक साध्वीयां दोय हो तो भी नहीं कल्पे, परन्तु आप सहित तीन च्यार साध्वीयोंको साथमें रात्रि या वैकालमें जाना चाहिये । इसीसे अपना आचार (ब्रह्मचर्य) व्रत पालन हो सकता है ।

(५१) साधुसाध्वीयोंको पूर्व दिशामें अंगदेश चंपानगरी, तथा राजगृह नगर, दक्षिण दिशामें कोसम्बी नगरी, पश्चिम दिशामें स्थूणा नगरी, और उत्तर दिशामें कुणाला नगरी, च्यार दिशामें इस मर्यादा पूर्वक विहार करना कल्पै । कारन–यहांपर प्रायः आर्य मनुष्योंका निवास है. इन्हके सिवा अनार्य लोगोंका रहेना है, वहां जानेसे ज्ञानादि उत्तम गुनोंका घात होता है, अर्थात् जहांपर जानेसे ज्ञानादिकी हानि होती हो, वहां जानेके लीये मना है । अगर उपकारका कारन हो, ज्ञानादि गुणकी वृद्धि हो, आप परीषह सहन करनेमें मजबूत हो, विद्याका चमत्कार हो, अन्य मिथ्यात्वी जीवोंको बोध देनेमें समर्थ हो, शासनकी प्रभावना होती हो, अपना चरित्रमें दोष न लगता हो, वहांपर विहार करना योग्य है ।

। इतिश्री बृहत्कल्पसूत्रमें प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार ।



दूसरा उद्देशा.

(१) साधु साध्वी जिस मकानमें ठहरना चाहते हैं, उस मकानमें शालि आदि धान इधर उधर पसरा हुवा हो, जहांपर पांव रखनेका स्थान न हो, वहांपर हाथकी रेखा सुझे इतना वखत भी नहीं ठरना चाहिये। अगर वह धानका एक तर्फ ढग किया हो, उसपर राख डालके मुद्रित किया गया हो, कपडेसे ढका हुवा हो, तो साधुको एक मास और साध्वीको दोय मास ठहरना कल्पै; परन्तु चातुर्मास ठहरना नहीं कल्पै। अगर उस धानको किसी कोठेमें डाला हो, ताला कुंचीसे जाबता किया हो, तो चातुर्मास रहेना भी कल्पै। भावार्थ-गृहस्थका धानादि अगर कोइ चोर ले जाता हो तो भी उसको रोक-टोक करना साधुको कल्पे नहीं। गृहस्थको नुकशान होनेसे साधुकी अप्रतीति हो और दुसरी दफे मकान मिलना दुष्कर होता है।

प्रश्न—जो ऐसा हो तो साधु एक मास कैसे ठहर सकता है?।

उत्तर—आचारांगसूत्रमें ऐसे मकानमें ठहरनेकी विल-

---

१ गृहस्थ लोग अपने उपभोगके लीये बनाया हुवा मकानमें गृहस्थोंकी आज्ञा लेके साधु ठहर सकता है। उस मकानको शास्त्रकारोंने उपासरा (उपाश्रय) कहा है।

कुल मना की गइ है, परन्तु यहांपर अपवाद है कि दुसरा मकान न मिलता हो या दुसरे गाम जानेमें असमर्थ हो तो ऐसे अपवादका सेवन करके मुनि अपना संयमका निर्वाह कर सकता है ।

(२) साधु साध्वीयों जिस मकानमें ठहरना चाहते है, उस मकानमें सुरा जातिकी मदिरा, सोवीर जातिकी मदिराके पात्र (बरतन) पडा हो, शीतल पाणी, उष्ण पाणीके घडे पडे हो, रात्रि भर अग्नि प्रज्वलित हो, सर्व रात्रि दीपक जलते हो, ऐसा मकानमें हाथकी रेखा सुझे वहां तक भी साधु साध्वीयोंको नहीं ठहरना चाहिये । अपने ठहरनेके लिये दुसरा मकानकी याचना करनी । अगर याचना करनेपर भी दुसरा मकान न मिले और ग्रामान्तर विहार करनेमें असमर्थ हो, तो उक्त मकानमें एक रात्रि या दोय रात्रि अपवाद सेवन करके ठहर सकते है, अधिक नहिं । अगर एक दो रात्रिसे अधिक रहै तो उस साधु साध्वीको जितने दिन रहै, उतने दिनका [1]छेद तथा तपका प्रायश्चित होता है । ३ । ४ । ५ ।

(६) साधु साध्वीयों जिस मकानमें ठहरना चाहे उस मकानमें लड्डु, शीरा, दुध, दहीं, घृत, तेल, संकुली, तील, पापडी, गुलधाणी, सीरखण आदि खुले पडे हो ऐसा मकानमें हाथकी रेखा सुझे वहांतक भी ठहरना नहीं कल्पे । भा-

१—दीक्षाकी अन्दर छेद कर देना अर्थात् इतने दिनोंकी दीक्षा कम समजी जाती है ।

र्णना पूर्ववत्। अगर दुसरा मकानकी अप्राप्ति होवे, तो वहां लड्डु आदि एक तर्फ रखा हुवा हो, राशि आदि करी हुइ हो तो शीतोष्ण कालमें साधुको एक मास और साध्वीयोंको दोय मास रहेना कल्पे। अगर कोठेमें रखके तालेसे बंध करके पका बंदोबस्त किया हो वहांपर चातुर्मास करना भी कल्पे. इसमें भी लाभालाभका कारन और लोगोंकी भावनाका विचार विचक्षण मुनियोंको पेस्तर करना चाहिये।

(७) साध्वीयोंको (१) पन्थी लोग उतरते हो एसा मुसाफिरखानेमें, (२) वंशादिकी झाडीमें, (३) वृक्षके नीचे, और (४) चोतर्फ खुला हो ऐसा मकानमें रहेना नहीं कल्पै। कारन–उक्त स्थान पर शीलादिकी रक्षा कभी कभी मुश्कील-से होती है।

(८) उक्त च्यारों स्थान पर साधुओंको रहेना कल्पै।

(९) मकानके दाता शय्यातर कहा जाता। ऐसा शय्यातरके वहांका आहार पाणी साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै। अगर शय्यातरके वहां भोजनादि तैयार हुवा है उन्होंने अपने वहांसे किसी दुसरे सज्जनको देनेके लिये भेजा नहीं है और सज्जनने लिया भी नहीं है, केवल शय्यातर एक पात्रमें रख भेजनेका विचार किया है, वह भोजन साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै। कारन–वह अभी तक शय्यातरका ही है।

(१०) उक्त आहार शय्यातरने अपने वहांसे सज्जनके

यहां भेज दीया, परन्तु अभी तक सज्जनने पूर्ण तोर पर स्वी-कार नहीं कीया हो, जैसे कि–भोजन आनेपर कहते है कि यहां पर रख दो, हमारे कुटुम्बवालोंकी मरजी होगी तो रख लेंगे, नहीं तो वापिस भेज देंगे ऐसा भोजन भी साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै ।

(११) उक्त भोजन सज्जनने रख लिया हो, उसके अन्दरसे नीकला हो, और प्रवेश किया हो तो वह भोजन साधु साध्वीयोंको ग्रहण करना कल्पै ।

(१२) उक्त भोजनमें सज्जनने हानि वृद्धि न करी हो, परन्तु साधु साध्वीयोंने अपनी आम्नायसे प्रेरणा करके उसमें न्यूनाधिक करवायके वह भोजन स्वयं ग्रहण करे तो उसको दोय आज्ञाका अतिक्रम दोष लगता है, एक गृहस्थकी और दुसरी भगवान्की आज्ञा विरुद्ध दोष लगै। जिसका गुरु चतु-र्मासिक प्रायश्चित होता है ।

(१३) जो दोय, तीन, च्यार या बहुत लोग एकत्र होके भोजन बनवाया है, जिसमें शय्यातर भी सामेल है, जैसे सर्व गामकी पंचायत और चन्दा कर भोजन बनवाते है, उसमें शय्यातर भी सामेल होता है, वह भोजन साधु साध्वीयोंको ग्रहण करना नहीं कल्पै । अगर शय्यातर सामेल न हो तथा उसका विभाग अलग कर दीया हो, तो लेना कल्पै ।

(१४) जो कोइ शय्यातरके सजनने अपने वहांसे सुखडी प्रमुख शय्यातरके वहां भेजी है, उसको शय्यातरने अपनी करके रख ली हो, तो साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै ।

(१५) अगर शय्यातरने नहीं रखी हो तो कल्पै ।

(१६) शय्यातरने अपने वहांसे सुजनके (स्वजनके) वहां भेजी हो वह नहीं रखी हो तो साधुको लेना नहीं कल्पै ।

(१७) अगर रख ली हो तो साधुको कल्पै ।

(१८) शय्यातरके मिजवान कलाचार्य विगेरे आये हो उसको रसोइ बनवानेको शय्यातरने सामान दीया है, और कहा कि–' आप रसोइ बनाओ, आपको जरूरत हो वह आप काममें लेना, शेप बचा हुवा भोजन हमारे सुप्रत कर देना ' । उस भोजनसे अगर वो शय्यातर देवे, तो साधुओंको लेना नहीं कल्पै ।

(१९) मिजवान देवे तो नहीं कल्पै ।

(२०) सामान देते वखत कहा होवे कि ' हमें तो आपको दे दिया है अब बचे उस भोजनको आपकी इच्छानुसार काममें लेना' । उस आहारसे शय्यातर देता हो तो साधुको नहीं कल्पै । कारन—दुसराका आहार भी शय्यातरके हाथसे साधु नहीं ले सकते हैं ।

(२१) परन्तु शय्यातरके सिवा कोइ देता हो तो साधु-

ओंको कल्प ग्रहन करना। शय्यातरका इतना परेज रखनेका कारन–अगर जिस मकानमें साधु ठहरे उसके घरका आहार लेनेमें प्रथम तो आधाकर्मी आदि दोष लगनेका संभव है, दुसरा मकान मिलना दुर्लभ होगा इत्यादि।

(२२) साधु साध्वीयोंको पांच प्रकारके वस्त्र ग्रहन करना कल्पै (१) कपासका, (२) उनका, (३) अलसीकी छालका, (४) सणका, (५) अर्कतूलका।

(२३) साधु साध्वीयोंको पांच प्रकारके रजोहरन रखना कल्पै (१) उनका, (२) ओटीजटका, (३) सणका, (४) मुंजका, (५) तृणोंका।

। इति श्री बृहत्कल्पसूत्रमें दूसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार।



तीसरा उद्देशा.



(१) साधुओंको न कल्पै कि वो साध्वीयोंके मकान पर जाके उभा रहै, बैठे, सोवे, निद्रा लेवे, विशेष प्रचला करे, अशन, पान, खादिम, स्वादिम करे, लघुनीति या बडी नीति करे, परठे, स्वाध्याय करे, ध्यान या कायोत्सर्ग करे, आसन लगावे, धर्मचिन्तन करे–इत्यादि कोइ भी कार्य वहां पर नहीं करना चाहिये।

(२) उक्त कार्य साध्वीयों भी साधुके मकान पर न करे-कारन इसीसे अधिक परिचय बढ जाता है। दूसरे भी अनेक दूषण उत्पन्न होते है। अगर साधुओंके स्थान पर व्याख्यान और आगमवाचना होती हो, तो साध्वीयों जा सकती है, व्यवहारसूत्रमें एसा उल्लेख है।

(३) साध्वीयोंको रोमयुक्त चर्मपर बैठना नहीं कल्पै। भावार्थ—अगर कोइ शरीरके कारनसे चर्म रखना पडे तो भी रोमसंयुक्त नहीं कल्पै।

(४) साधुओंको अगर किसी कारणवशात् चर्म लाना हो तो गृहस्थोंके वहां वापरा हुवा, वह भी एक रात्रिके लिये मांगके लावे। वह रोमसंयुक्त हो तो भी साधुओंको कल्पै।

(५) साधु साध्वीयोंको संपूर्ण चर्म, (६) सम्पूर्ण वस्त्र, (७) अभेदा हुवा वस्त्र लेना और रखना-वापरना नहीं कल्पै। भावार्थ—सम्पूर्ण चर्म और वस्त्र कींमती होता है, उससे चौरादिका भय रहेता है, ममत्वभावकी वृद्धि होती है, उपधि अधिक बढती है, गृहस्थोंको शंका होती है। वास्ते (८) चर्मखण्ड, (९) वस्त्रखण्ड, (१०) अगर अधिक खप होनेसे सम्पूर्ण वस्त्र ग्रहण किया हो तो भी उसका काममें आने योग्य खण्ड, खण्ड करके साधु रख सकता है।

(११) साध्वीयोंको कान्छपाट (कच्छपटा) और कंचुवा रखना कल्पै। स्त्रीजाति होनेसे शीलरक्षाके लिये

(१२) यह दोनो उपकरण साधुओंको नहीं कल्पे।

(१३) साध्वीयोंको गोचरी गमन समय अगर वस्त्र याचनाका प्रयोग हो तो स्वयं अपने नामसे नहि, किन्तु अपनी प्रवर्तिनी या वृद्धा हो उसके नामसे याचना करनी चाहिये। इसीसे विनय धर्मका महत्व स्वच्छन्दताका निवारण और गृहस्थोंको प्रतीति इत्यादि गुण प्राप्त होते है।

(१४) गृहस्थ पुरुषको गृहवासको त्याग करनेके समय (१) रजो हरण (२) मुखवास्त्रिका (३) गुच्छा (पात्रोंपर रखनेका) झोली [1]पात्र तीन संपूर्ण [2]वस्त्र इसकी अंदर सब वस्त्र हो सकते है।

(१५) अगर दीक्षा लेनेवाली स्त्री हो तो पूर्ववत्। परन्तु वस्त्र च्यार होना चाहिये। इसके सिवा केइ उपकरण अन्य स्थानों पर भी कहा है। केइ उपगृही उपकरण भी होते है। अगर साधु साध्वीयोंको दीक्षा लेनेके बाद कोइ प्रायश्चित स्थान सेवन करनेसे पुनः दीक्षा लेनी पडे तो नये उपकरण याचनेकी आवश्यकता नहीं। वह जो अपने पास पूर्वसे ग्रहण किये हुवे उपकरण है, उन्हीसे ही दीक्षा ले लेनी चाहिये ऐसा कल्प है।

(१६) साधु साध्वीयोंको चतुर्मासमें वस्त्र लेना नहि

---

१ पात्र तीन। २ एक वस्त्र २४ हाथका लंबा, एक हाथका पना एवं ७२ हाथ।

कल्पे। भावार्थ-चतुर्मास चेत्रवाले लोगोंको भक्तिके लिये वस्त्रादि मगवाना पडता, उससे कृतगढ आदि दोषका संभव है।

(१७) अगर वस्त्र लेना हो, तो चतुर्मासिक प्रतिक्रमण करनेसे पहिले ग्रहण कर लेना, अर्थात् शीतोष्णकाल आठ मासमें साधु साध्वीयोंको वस्त्र लेना कल्पे।

(१८) साधु साध्वियोंको उपयोग रखना चाहिये कि वस्त्रादि प्रथम रत्नत्रयसे वृद्ध होवे उन्होंके लिये क्रमशः लेना। एवं

(१९) शय्या-संस्तारक भी लेना।

(२०) एवं प्रथम रत्नादिको वन्दन करना। इसीसे विनय धर्मका प्रतिपादन हो सकता है।

(२१) साधु साध्वीयोंको गृहस्थके घरपे जाके बैठना, उभा रहेना, सो जाना, निद्रा लेना, प्रचला (विशेष निद्रा) करना, अशनादि च्यार आहार करना, टट्टी पेसाब जाना, सज्झाय ध्यान, कायोत्सर्ग और आसन लगाना तथा धर्मचिंतन करना नहीं कल्पे। कारन-उक्त कार्य करनेसे साधु धर्मसे पतित होगा। दशवैकालिकके छट्ठे अध्ययन-आचारसे भ्रष्ट, और निशीथसूत्रमें प्रायश्चित कहा है। अगर कोइ वृद्ध साधु हो, अशक्त हो, दुर्बल हो, तपस्वी हो, चकर आते हो, व्याधिसे पीडित हो-ऐसी हालतमें गृहस्थोंके वहां उक्त कार्य कर सकते है।

(२२) साधु साध्वीयोंको गृहस्थके घरपे जाके चार पांच गाथ (गाथा) विस्तार सहित कहना नहीं कल्पै । अगर कारण हो तो संक्षेपसे एक गाथा, एक प्रश्नका उत्तर एक वागरणा (संक्षेपार्थ) कहेना, सो भी उभा रहके कहेना, परन्तु गृहस्थोंके घर पर बैठके नहीं कहेना । कारण–मुनिधर्म है सो निःस्पृही है। अगर एकके घरपे धर्म सुनाया जाय तो दुसरेके वहां जाना पडेगा, नहीं जावे तो राग द्वेषकी वृद्धि होगी । वास्ते अपने स्थान पर आये हुवेको यथासमय धर्मदेशना देनी ही कल्पै ।

(२३) एवं पांच महाव्रत पचवीश भावना संयुक्त विस्तारसे नहीं कहेना । अगर कारन हो तो पूर्ववत् । एक गाथा एक वागरणा कहना सो भी खडे खडे ।

(२४) साधु साध्वीयोंने जो गृहस्थके वहांसे शय्या (पाट पाटा), संस्तारक, (तृणादि) वापरनेके लिये लाया हो, उसको वापिस दिया विना विहार करना नहीं कल्पै । एवं उस पाटो पर जीवोत्पत्तिके कारनसे लेप लगाया हो, तो उस लेपको उतारे विना देना नहीं कल्पै । अगर जीव पड गया हो, तो जीव सहित देना भी नहीं कल्पै । (२६) अगर उस पाटादिको चोर ले गया हो, तो साधुको उसकी तलास करनी चाहिये, तलास करने पर भी मिल जावे, तो गृहस्थसे कहके दुसरी बार आज्ञा लेनी, अगर नहीं मिले तो गृहस्थसे कह देना कि–'तुमारा पाटादि चौर ले गया हमने तलास की परन्तु क्या करे मिला नहीं । एसा कहके, दुसरा पाटादिकी

याचना करनी कल्पै। कारन–जीवोंकी यतना और गृहस्थोंकी प्रतीति रहै।

(२७) साधुवों जिस मकानमें ठहरे है, उसी मकानसे शय्या, संस्तारक आज्ञासे ग्रहण किया था, वह अपने उपभोगमें न आनेसे उसी मकानमें वापिस रख दिया, उसी दिन अन्य साधु आये और उन्हको उस शय्या संस्तारककी आवश्यकता हो, तो प्रथमके साधुसे रजा लेके भोगवे। कारन-पाहिलेके साधुने अवतक गृहस्थको सुप्रत नहीं कीया। अगर पहिलेके साधुवोंका मास कल्पादि पूर्ण हो गया तो पुनः गृहस्थोंकी आज्ञा लेके उस पाटादिको वापर सकते है, तीसरे व्रतकी रक्षा निमित्त।

(२८) पहिलेके साधु विहार कर गये हो, उन्होका वस्त्रादि कोइभी उपकरण रह गया हो, तो पीछेके साधुवोंको गृहस्थकी आज्ञासे लेना और जब वो साधु मिलजावे अगर उन्हका हो तो उसको दे देना चाहिये अगर उन्हका न हो, तो एकान्त स्थानपर परठ देना। भावार्थ–ग्रहण करते समय पहिले साधुवोंके नामपर लिया था, अब अपना सत्यव्रत रखनेके लिये आप काममें नहीं लेते हुवे परठना ही अच्छा है।

(२९) कोइ ऐसा मकान हो कि जिसमें कोइ रहता न हो, उसकी देखरेख भी नहीं करता हो, किसीकी मालिकी न हो, कोइ पंथी (मुसाफिर) लोक भी नहीं ठहरता हो, उस

मकानकी आज्ञा भी कोई नहीं देता हो, अर्थात् वह मकानमें देवादिकका भय हो, देवता निवास करता हो, अगर ऐसा मकानमें साधुओंको ठहरना हो, तो उस मकान निवासी देवकी भी आज्ञा लेना, परंतु आज्ञा विना ठहरना नहीं। अगर कोइ मकान पर प्रथम भिक्षु (साधु) उतरे हो, तो उस भिक्षुवोंकी भी आज्ञा लेना चाहिये. जिससे तीसरे व्रतकी रक्षा और लोकव्यवहारका पालन होता है।

(३१) अगर कोइ कोट (गढ) के पासमें मकान हो, भींत, खाइ, उद्यान, राजमार्गादि किसी स्थानपरके मकानमें साधुवोंको ठहरना हो तो जहांतक घरका मालिक हो, वहांतक उसकी आज्ञासें ठहरे, नहि तो पूर्व उतरे हुवे मुसाफिरकी भी आज्ञा लेना, परंतु विना आज्ञा नहीं ठहरना। पूर्ववत्.

(३२) जहां पर राजाकी सैनाका निवास हो, तथा सार्थवाहके साथका निवास हो, वहां पर साधु-साध्वी अगर भिक्षाको गया हो, परंतु भिक्षा लेनेके बाद उस रात्रि वहां ठहरना न कल्पै। कारण-राजादिको शंका हो, आधाकर्मी दोषका संभव है, तथा शुभाशुभ होनेसे अप्रतीतिका कारण होता है। ऐसा जानके वहां नहीं ठहरे। अगर कोइ ठहरे तो उसको एक तीर्थंकरोंकी दुसरी राजा और सार्थवाह-इन्ह दोनों की आज्ञाका अतिक्रम दोष लगनेसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित होता है।

(३३) जिस ग्राम यावत् राजधानीमें रहे हुवे साधु-साध्वीयोंको पांच गाउ तक जाना कल्पै। कारण-दोय कोश तक तो गोचरी जाना आना हो सकता है, और दोय कोश जाने के बाद आधा कोश वहांसे स्थंडिल (बडी नीति) जा सकता है. एवं अढाइ कोश पश्चिमका मिलाके पांच कोश जाना आना कल्पै। अधिक जाना हो तो, शीतोष्ण कालमें अपने भद्रोपकरण लेके विहार कर सकते है। इति ॥

इतिश्री बृहत्कल्पसूत्र-तीसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार।



चौथा उद्देशा.

(१) साधु-साध्वीयों जो स्वधर्मीकी चौरी[१] करे, परधर्मीकी चौरी करे, साधु आपसमें मारपीट करे-इस तीनो कारणों से आठवा प्रायश्चित्त अर्थात् पुनः दीक्षा लेनका प्रायश्चित्त होता है.

(२) हस्तकर्म करे, मैथुन सेवे रात्रिभोजन करे, इस तीन कारणों से नौवां प्रायश्चित, अर्थात् गृहस्थलिंग करवाके पुनः दीक्षा दी जावे.

---

१ चौरी १ सचित्त-शिष्य, २ अचित्त वस्त्रपात्रादि द्रव्य, ३ मिश्र-उपधि सहित शिष्य अर्थात्-विगर आज्ञा कोइ भी वस्तु लेना, उसको चौरी कहते है.

(३) दुष्टता-जिसका दोय भेद. (१) कषाय दुष्टता जैसा कि एक साधुने मृत-गुरुका दांत पत्थर से तोडा. (२) विषय दुष्टता-जैसा कि राजाकि राणी और साध्वीसे विषय सेवन करे. प्रमाद-जो पांचवी स्त्यानार्द्धि निद्रावाला, वह निद्रामें संग्रामादिभी कर लेता है. अन्योन्य-साधु-साधुके साथ अकृत्य कार्य करे. इस तीनों कारणों से दशवां प्रायश्चित्त होता है, अर्थात् गृहस्थलिंग करवाके संघको ज्ञात होनेके लीये दुकानोंसे कोडी प्रमुख मंगवाना, इत्यादि. भावार्थ-मोहनीय कर्म बडाही जबरजस्त है. बडे बडे महात्मावोंको श्रेणिसे गिरा देता है. गिरनेपरभी अपनी दशाको संभालके प्रश्चात्ताप पूर्वक आलोचना करनेसे शुद्ध हो सकता है. जो प्रायश्चित्त जनसमूहकी प्रसिद्धिमें सेवन कीया हो तो उन्होंके विश्वास के लीये जनसमूहके सामने हि प्रायश्चित देना शास्त्रकारोंने फरमाया है. इस समय नौवां दशवां प्रायश्चित्त विच्छेद है. आठवां प्रायश्चित्त देनेकी परंपरा अबी चलती है.

(४) नपुंसक हो, स्त्री देखनेपर अपने वीर्यको रखनेमें असमर्थ हो, स्त्रीयोंके कामक्रीडाके शब्द श्रवण करते ही कामातुर हो जाता हो, इस तीन जनोंको दीक्षा न देनी चाहिये. अगर अज्ञातपनेसे देदी हो, पीछेसे ज्ञात हुवा हो, तो उसे मुंडन न करना चाहिये. अज्ञातपनेसे मुंडन कीया हो तो शिष्यशिक्षा न देना चाहिये. एसा हो गया हो तो उत्थापन अर्थात् बडी दीक्षा न देनी चाहिये. ऐसाभी हो गया हो, तो

साथमें भोजन न करना चाहिये. भावार्थ—अैसे अयोग्यको गच्छमें रखनेसे शासनकी हीलना होती है. दुसरे साधुवोंको भी चेपी रोग लग जाता है. वास्ते जिस समय ज्ञात हो कि तीनों दुर्गुणोंसे कोइभी दुर्गुण है, तो उसे मधुर वचनों द्वारा हित शिक्षा देके अपनेसे अलग कर देना. विशेष विस्तार देखो प्रवचन सारोद्धार.

(५) अविनयवंत हो, विगइके लोलुपी हो, निरंतर कषाय करनेवाला हो, इस तीन दुर्गणोंवालोंको आगम वाचनादि ज्ञान नहीं देना चाहिये. कारण—सर्पको दुध पीलानाभी विषवृद्धिका कारण होता है.

(६) विनयवान हो, विगइका प्रतिबंधी न हो, दीर्घ कषायवाला न हो, इस तीन भव्य गुणोंवालोंको आगम ज्ञानकी वाचना देना चाहिये. कारण—वाचना देना, यह एक शासनका स्तंभ-आलंबन है.

(७) दुष्ट—जिसका हृदय मलीन हो, मूढ—जिसको हिताहितका ख्याल न हो, और कदाग्रही—इस तीनोंको बोध लगना असंभव है.

(८) अदुष्ट, अमूढ और भद्रिक—सरल स्वभावी—इस तीनोंको प्रतिबोध देना सुसाध्य है.

(९) साधु बीमार होनेपर तथा किसी स्थानसे गिरिते हुवेको दुसरे साधुके अभावसे उसी साधुकी संसार अवस्थाकी

माता वहिन और पुत्री–उस साधुको ग्रहण करे. उसका कोमल स्पर्श हो तो अपने दिलमें अकृत्य (मैथुन) भावना लावे तो गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(१०) एवं साध्वीको अपना पिता, भाइ या पुत्र ग्रहण कर सकै.

(११) साधु–साध्वीयोंको जो प्रथम पोरसीमें ग्रहण कीया हुवा अशनादि च्यार प्रकारके आहार, चरम (छेल्ली) पोरसी तक रखना तथा रखके भोगवना नहीं कल्पै. अगर अनजान (भूल) से रहभी जावे, तो उसको एकांत निर्जीव भूमिका देख परठे. और आप भोगवे या दुसरे साधुवोंको देवे तो गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(१२) साधु–साध्वीयोंको जो अशनादि च्यार प्रकार के आहार जिस ग्रामादिमें किया हो, उसीसे दोय कोस उपरांत ले जाना नहीं कल्पै. अगर भूलसे ले गया हो, तो पूर्ववत् परठ देना, परंतु नहीं परठके आप भोगवे या अन्य साधुवोंको देवे तो गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित आता है.

(१३) साधु–साध्वी भिक्षा ग्रहण करते हुवे, अगर अनजानसे दोषित आहार ग्रहण कीया, बादमें ज्ञात होनेपर उस दोषित आहारको स्वयं नहीं भोगवे, किन्तु कोइ नव दिक्षित साधु हो (जिसको अबी बडी दीक्षा लेनी है) उसको देना कल्पै. अगर ऐसा न हो तो पूर्ववत् परठ देना चाहिये.

(१४) प्रथम और चरम तीर्थंकरोंके साधुवोंके लीये

किसी गृहस्थोंने आहार बनाया हो तो उस साधुवोंको लेना नहीं कल्पै.

(१५) मध्यके २२ जिनोंके साधुवोंको प्रज्ञावंत और ऋजु (सरल) होनेसे कल्पै.

(१६) मध्य जिनोंके साधुवोंके लीये बनाया हुवा अशनादि बावीश तीर्थंकरोंके साधुवोंको लेना कल्पै.

(१७) परन्तु प्रथम–चरम जिनोंके साधुवोंको नहीं कल्पै.

(१८) साधु कबी ऐसी इच्छा करे कि मैं स्वगच्छसे नीकलके परगच्छमें जाउं, तो उस मुनिको—

(१) आचार्य–गच्छनायक, (२) उपाध्याय–आगमवाचनाके दाता, (३) स्थविर–सारणा वारणा दे. अस्थिरको मधुर वचनोंसे स्थिर करे. (४) प्रवर्त्तक–साधुवोंको अच्छे रस्तेमें चलनेकी प्रेरणा करे. (५) गणी–जिसके समीप आचार्यने सूत्रार्थ धारण कीया हो. (६) गणधर–जो गच्छको धारण करके उसकी सार–संभाल करते हो, (७) गणविच्छेदक–जो च्यार, पांच साधुवोंको लेकर विहार करते हो. इस सात पद्वीधरोंको पुछने विगर अन्य गच्छमें जाना नहीं कल्पै. पूछनेपर भी उक्त सातों पद्वीधर विशेष कारण जान, जानेकि आज्ञा देवे, तो अन्य गच्छमें जाना कल्पै. अगर आज्ञा नहीं देवे तो, जाना नहीं कल्पै.

(१९) गणविच्छेदक स्वगच्छको छोडके परगच्छमें

जानेका इरादा करे तो उसको अपनी पद्वी दुसरेको दीया विगर जाना नहीं कल्पै, परंतु पद्वी छोडके सात पद्वीवालोंको पूछे, अगर आज्ञा दे, तो अन्य गच्छमें जाना कल्पै, आज्ञा नहीं देवे तो नहीं कल्पै.

(२०) आचार्य, उपाध्याय, स्वगच्छ छोडकर परगच्छमें जानेका इरादा करे, तो अपनी पद्वी अन्यको दीया विना अन्य गच्छमे जाना नहीं कल्पै. अगर पद्वी दुसरेको देनेपरभी पूर्ववत् सात पद्वीवालोंको पूछे, अगर वह सात पद्वीधर आज्ञा दे, तो जाना कल्पै, आज्ञा नही देवे तो जाना नहीं कल्पै. भावार्थ—अन्य गच्छके नायक कालधर्म प्राप्त हो गये हो पीछे साधु समुदाय वहुत है, परंतु सर्व साधुवोंका निर्वाह करने योग्य साधुका अभाव है, इस लीये साधु गणाविच्छेदक तथा आचार्य महालाभका कारण जान, अपने गच्छको छोड उपकार निमित्त परगच्छमें जाके उसका निर्वाह करे. आज्ञा देनेवाले अन्य गच्छका आचार धर्म आदिकी योग्यता देखे तो जानेकी आज्ञा देवे, अथवा नहींभी देवे.

(२१) इसी माफिक साधु इरादा करेकि अन्य गच्छवासी साधुवोंसे संभोग (एक मंडलेपर साथमें भोजनका करना) करे, तो पेस्तर पूर्ववत् सात पद्वीधरोंसे आज्ञा लेवे, अगर आचारधर्म, क्षमाधर्म, विनयधर्म अपने सदृश होनेपर आज्ञा देवे, तो परगच्छके साथ संभोग कर सके, अगर आज्ञा नहीं देवे, तो नहीं करे.

(२२) एवं—गणविच्छेदक.

(२३) एवं—आचार्योपाध्यायभी समझना.

(२४) साधु इच्छा करेकि मैं अन्य गच्छमें साधुवोंकी वैयावच्च करनेको जाउं, तो कल्पै—उस साधुवोंको, पूर्ववत् सात पद्वीधरोंको पूछे, अगर वह आज्ञा देवे तो जाना कल्पै, आज्ञा नहीं देवे तो नहीं कल्पै.

(२५) एवं गणविच्छेदक.

(२६) एवं आचार्योपाध्याय. परन्तु अपनी पद्वी अन्यको देके जा सक्ते है.

(२७) साधु इच्छा करे कि मैं अन्य गच्छमें साधुवोंको ज्ञान देनको जाउं, पूर्ववत् सात पद्वीधरोंको पूछे, अगर आज्ञा देवे तो जाना कल्पै. और आज्ञा नहीं देवे तो जाना नहीं कल्पै.

(२८) एवं गणविच्छेदक.

(२९) एवं आचार्योपाध्याय. परन्तु अपनी पद्वी दुसरेको देके आज्ञा पूर्वक जा सकते है. भावार्थ–अन्य गच्छके गीतार्थ साधु काल धर्म प्राप्त हो गये हो, शेष साधुवर्ग अगीतार्थ हो, इस हालतमें अन्याचार्य विचार कर सकते हैं, कि मेरे गच्छमें तो गीतार्थ साधु बहुत है, मैं इस अगीतार्थ साधुवाले गच्छमें जाके इसमें ज्ञानाभ्यास करनेवाले साधुवोंको ज्ञानाभ्यास करा के योग्य पदपर स्थापन कर, गच्छकी अच्छी व्यवस्था करदुं

इसीसे भविष्यमें बहुत ही लाभका कारन होगा. इस इरादेसे अन्य गच्छमें जा सकते है.

(नोट) इन्ही महात्मावोंकी कितनी उच्च कोटिकी भावना और शासनोन्नति, आपसमे धर्मस्नेह है. असी प्रवृति होनेसे ही शासनकी प्रभावना हो सकती है.

(३०) कोइ साधु रात्रीमें या वैकाल समयमे कालधर्म प्राप्त हो जाय तो अन्य साधु गृहस्थ संबंधी एक उपकरण (वांस) सरचीना याचना करके लावे और कंबली प्रमुखकी झोली बनाके उस वांससे एकांत निर्जीव भूमिकापर परठे. भावार्थ—वांस लाती वखत हाथमें उभा वांसको पकडे, लाते समय कोइ गृहस्थ पूछे कि–'हे मुनि ! इस वांसको आप क्या करोगे ?' मुनि कहै–'हे भद्र ! हमारे एक साधु कालधर्म प्राप्त हो गया है, उसके लीये हम यह वांस ले जाते है. इतनेमे अगर गृहस्थ कहे कि–हे मुनि ! इस मृत मुनिकी उत्तर क्रिया हम करेंगे, हमारा आचार है. तो साधुवोंको उस मृत कलेवरको वहांपर ही वोसिराय देना चाहिये. नहि तो अपनी रीति माफिक ही करना उचित है.

(३१) साधुवोंके आपसमें क्रोधादि कषाय हुवा हो तो उस साधुवोंको बिना खमतखामणा–(१) गृहस्थों के घरपर गौचरी नहीं जाना, अशनादि च्यार प्रकारका आहार करना नहीं कल्पै. टटी पैसाब करना, एक गामसे दुसरे गाम जाना, और एक गच्छ छोडके दुसरे गच्छमे जाना नहीं कल्पै. अलग

चातुर्मास करना नहीं कल्पै. भावार्थ—कालका विश्वास नहीं है. अगर अैसीही अवस्थामें काल करै, तो विराधक होता है. वास्ते खमतखामणा कर अपने आचार्योपाध्याय तथा गीतार्थ मुनियोंके पास आलोचना कर प्रायश्चित्त लेके निर्मल चित्त रखना चाहिये.

(३२) आलोचना करने परभी राग-द्वेषके कारणसे आचार्यादि न्यूनाधिक प्रायश्चित्त देवे, तो नहीं लेना, अगर सूत्रानुसार प्रायश्चित्त देनेपर शिष्य स्वीकार नहीं करता हो, तो उसको गच्छके अन्दर नहीं रखना. कारण-अैसा होनेसे दुसरे साधुभी अैसाही करेंगे इसीसे भविष्यमें गच्छ-मर्यादा, और संयम व्रत पालन करना दुष्कर होगा, इत्यादि.

(३३) परिहार विशुद्ध (प्रायश्चित्तका तप करता हुवा) साधुको आहार पाणी एक दिनके लीये अन्य साधु साथमें जाके दिला सकै, परन्तु हमेशां के लीये नहीं. कारण एक दिन उसको विधि बतलाय देवे. परन्तु वह साधु व्याधिग्रस्त हो क्षुधर हो, कमजोर हो, तो उसको अन्य दिनोंमें भी आहार-पाणी देना दिलाना कल्पै. जब अपना प्रायश्चित्त पूर्ण हो जावे, तब वैयावच्च करनेवाला साधु भी प्रायश्चित्त लेवे, व्यवहार रखनेके कारणसे.

(३४) साधु-साध्वीयोंको एक मासकी अन्दर दोय, तीन, च्यार, पांच महानदी उतरणी नहीं कल्पै. यथा-(१) गंगा, (२) यमुना, (३) सरस्वती, (४) कोशिका, (५) मही,

इस नदीयोंकी अन्दर पाणी बहुत रहेता है, अगर आधी जंघा. प्रमाण पानी हो, कारणात् उसमें उतरणा भी पडे, तो एक पग जलमें और दुसरा पगको उंचा रखना चाहिये. दुसरा पग पाणीमें रखा जावे तब पहिलाका पग पाणीसे निकाल उंचा-रखे, जहांतक पाणीकी बुंद उस पगसे गिरनी बंध हो जाय. इस विधिसे नदी उतरनेका कल्प है. इसी माफिक कुनाला देशमें ऐरावंती नदी है.

(३५) तृण, तृणपुंज, पलाल, पलालपुंज, आदिसे जो मकान बना हुवा है, और उसकी अन्दर अनेक प्रकारके जीवोंकी उत्पत्ति हो, तो ऐसा मकानमें साधु, साध्वीयोंको ठहरना नहीं कल्पै.

(३६) अगर जीवादिरहित हो, परन्तु उभा हुवा मनुष्यके कानोंसे भी नीचा हो, ऐसा मकानमें शीतोष्ण काल ठहरना नहीं कल्पै. कारण उभा होनेपर और क्रिया करते हर समय शिरमें लगता, मकानको नुकशानी होती है.

(३७) अगर कानोंसे उंचा हो, तो शीतोष्ण कालमें ठहरना कल्पै.

(३८) उक्त मकान मस्तक तक उंचा हो तो वहां चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(३९) परन्तु मस्तकसे एक हस्त परिमाण उंचा हो तो साधु साध्वीयोंको उस मकानमें चातुर्मास करना कल्पै.

। इति श्री बृहत्कल्पसूत्रका चौथा उद्देशाका संक्षिप्त सार ।

पांचवा उद्देशा.

(१) किसी देवताने स्त्रीका रुप वैक्रिय बनाके किसी साधुको पकडा हो, उसी समय उस वैक्रिय स्त्रीका स्पर्श होनेसे साधु मैथुनसंज्ञाकी इच्छा करे, तो गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(२) एवं देव पुरुषका रुप करके साध्वीको पकडने पर भी.

(३) एवं देवी स्त्रीका रुप बनाके साधुको पकडै तो.

(४) देवी पुरुषरुप बनाके साध्वीको पकडने पर भी समझना. भावार्थ—देव देवी मोहनीय कर्म-उदीरण विषय परीषह देवे, तो भी साधुवोंको अपने व्रतोंमें मजबुत रहना चाहिये.

(५) साधु आपसमे कषाय-क्रोधादि करके स्वगच्छसे नीकलके अन्य गच्छमें गया हो तो उस गच्छके आचार्यादिकोंको जानना चाहिये कि उस आये हुवे साधुको पांच रोजका छेद प्रायश्चित्त देके स्नेहपूर्वक अपने पासमें रखे. मधुर वचनोंसे हितशिक्षा देके वापिस उसी गच्छमें भेज देवे. कारण ऐसी वृत्ति रखनेसे साधु स्वच्छन्द न बने. एक दुसरे गच्छकी प्रतीति विश्वास बना रहै, इत्यादि.

(६) साधु-साध्वीयोंकी भिक्षावृत्ति सूर्योदयसे अस्त तक है. अगर कोइ कारणात् समर्थ साधु निःशंकपणे-अर्थात्

बादला या पर्वतका आडसे सूर्य नहीं दिखा, परन्तु यह जाना जाता था कि सूर्य अवश्य होगा. तथा उदय हो गया है, इस इरादासे आहार-पानी ग्रहण कीया. बादमें मालुम हुवा कि सूर्य अस्त हो गया तथा अभी उदय नहीं हुवा है, तो उस आहारको भोगवता हो, तो मुंहका मुंहमे हाथका हाथमें और पात्रका पात्रमें रखे, परन्तु एक बिन्दु मात्र भी खावे नहीं, सबको अचित्त भूमिपर परठ देना चाहिये, परन्तु आप खावे नहीं, दुसरेको देवे नहीं, अगर खबर पडनेके बाद आप खावे, तथा दुसरेको देवे तो उस मुनियोंको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आवे.

(७) एवं समर्थ शंकावान्.

(८) एवं असमर्थ निःशंक.

(९) एवं असमर्थ शंकावान् । भावार्थ—कोइ आचार्यादिक वैयावच्च के लीये शीघ्रता पूर्वक विहार कर मुनि जा रहा है. किसी ग्रामादिमे सवेरे गोचरी न मिलीथी श्यामको किसी नगरमें गया. उस समय पर्वतका आड तथा बादलमें सूर्य जानके भिक्षा ग्रहण की और सवेरे सूर्योदय पहिले तक्रादि ग्रहण करी हो, ग्रहन कर भोजन करनेको बेठनेके बाद ज्ञात हुवा कि शायद सूर्योदय नहीं हुवा हो अथवा अस्त हो गया हो- औसा दुसरोंसे निश्चय हो गया हो तो उस मुंहका, हाथका और पात्रका सब आहारको निर्जीव भूमिपर परठ देनेसे आज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है.

(१०) अगर रात्रि या वैकाल समयमें मुनिको भात-पाणीका उगाला आ गया हो, तो उसको निर्जीव भूमिपर यतनापूर्वक परठ देना चाहिये. अगर नहीं परठे और पीछा गले उतार देवे, तो उस मुनिको रात्रि भोजनका पाप लगनेसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(११) साधु-साध्वीयोंको जीव सहित आहार-पानी ग्रहन करना नहीं कल्पै. अगर अनजानपणे आ गया हो, जैसे साकर-खांडमे कीडी प्रमुख उसको साधु समर्थ है कि जीवोंको अलग कर सके. तो जीवोंको अलग करके निर्जीव आहारको भोगवे कदाच जीव अलग नहीं होता हो तो उस आहारको एकान्त निर्जीव भूमिका देखके यतनापूर्वक परठे.

(१२) साधु-साध्वी गौचरी लेके अपने स्थानपर आ रहे है, उस समय उस आहारकी अन्दर कचे पानीकी बुंद गिर जावे, अगर वह आहार गरमागरम हो तो आप स्वयं भोगवे दुसरेको भी देवे. कारण-उस पानीके जीव उष्णाहारसे चव जाते है. परन्तु आहार शीतल हो तो न आप भोगवे, और न तो अन्य साधुवोंको देवे. उस आहारको विधिपूर्वक एकांत स्थानपर जाके परठे.

(१३) साध्वी रात्रि तथा वैकाल समय टटी-पेसाव करते समय किसी पशु-पची आदिके इंद्रिय स्पर्श हो, तो आप हस्तकर्म तथा मैथुनादि दुष्ट भावना करै, तो गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(१४ एवं शरीर शुद्धि करते वखत पशु-पक्षीकी इंद्रि-यसे अकृत्य कार्य करनेसे भी चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. यह दोनों सूत्र मोहनीय कर्मापेक्षा है. कारण-कर्मोकी विचित्र गति है. वास्ते ऐसे अकृत्य कार्योंके कारणोंको प्रथम ही शास्त्रकारोंने निषेध कीया है.

(१५) साध्वीयोंको निम्नलिखित कार्य करना नहीं कल्पै.

(१६) एकेलीको रहना,

(१७) एकेलीको टटी-पैसाव करनेको जाना

(१८) एकेलीको विहार करना,

(१९) वस्त्ररहित होना,

(२०) पात्ररहित गौचरी जाना,

(२१) प्रतिज्ञा कर ध्यान निमित्त कायाको वोसिरा देना,

(२२) प्रतिज्ञा कर एक पसवा (वा)डे सोना,

(२३) ग्राम यावत् राजधानीसे वाहार जाके प्रतिज्ञा-पूर्वक ध्यान करना नहीं कल्पै. अगर ध्यान करना हो तो अपने उपासरेकी अन्दर दरवाजा बन्ध कर ध्यान कर सकते है.

(२४) प्रतिमा धारण करना,

(२५) निषद्या-जिसके पांच भेद हैं-दोनों पांव बराबर रख बैठना, पांव योनिसे स्पर्श करते बैठना, पांवपर पांव चढाके बैठना, पालटी मारके बैठना, अद्ध पालटी मारके बैठना,

(२६) वीरासन करना,

(२७) दंडासन करना,

(२८) ओकडु आसन करना,

(२६) लगड आसन करना,

(३०) आम्रखुजासन करना,

(३१) उर्ध्व मुख कर सोना,

(३२) अधोमुख कर सोना,

(३३) पांव उर्ध्व करना,

(३४) ढींचर्णोपर होना–यह सर्व साध्वीके लीये निषेध कीया है. वह अभिग्रह–प्रतिज्ञाकी अपेक्षा है. कारण–प्रतिज्ञा करनेके बाद कितने ही उपसर्ग क्यों नहीं हो ? परन्तु उससे चलित होना उचित नहीं है. अगर अैसे आसनादि करनेपर कोइ अनार्य पुरुष अकृत्य करनेपर ब्रह्मचर्यका रक्षण करना आवश्यक है. वास्ते साध्वीयोंको अैसे अभिग्रह करनेका निषेध कीया है. अगर मोक्षमार्ग ही साधन करना हो तो दुसरे भी अनेक कारण है. उसकी अन्दर यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये.

(३५) साधु उक्त अभिग्रह–प्रतिज्ञा कर सकते है.

(३६) साधु गोडाचालक ही लगाके बेठ सकता है.

(३७) साध्वीयोंको गोडाचालक ही लगाके बेठना नहीं कल्पे.

(३८) साधुवोंको पीछाडी आटो सहित (खुरसीके आकार) पाटपर बेठना कल्पे.

(३६) अैसे साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४०) पाटाके शिरपर पागावोंका आकार होते है, अैसा पाटापर साधुवोंको बेठना सोना कल्पै.

(४१) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४२) साधुवोंको नालिका सहित तुंबडा रखना और भोगवना कल्पै.

(४३) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४४) उघाडी डंडीका राजेहरण (कारणात् १॥ मास) रखना और भोगवना कल्पै.

(४५) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४६) साधुवोंको डांडी संयुक्त पुंजणी रखना कल्पै.

(४७) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४८)साधु—साध्वीयोंको आपसमें लघु नीति (पेसाब) देना लेना नहीं कल्पै. परन्तु कोइ अतिकारन हो, तो कल्पै भी. भावार्थ—किसी समय साधु एकेला हो और सर्पादिका कारण हो, अैसे अवसरपर देना लेना कल्पै भी.

(४६) साधु साध्वीयोंको प्रथम प्रहरमे ग्रहन कीया हुवा अशनादि आहार, चरम प्रहरमे रखना नहीं कल्पै. परन्तु अगर कोइ अति कारन हो, जैसे साधु विमार होवे और बत-लाया हुवा भोजन दुसरे स्थानपर न मिले. इत्यादि अपवादमें कल्पै भी सही.

(५०) साधु-साध्वीयोंको ग्रहन कीये स्थानसे दो कोश उपरांत ले जाना अशनादि नहीं कल्पै. परन्तु अगर कोई विशेष कारण हो तो-जैसे किसी आचार्यादिकी वैयावच्च के लीये शीघ्रतापूर्वक जाना है. क्षुधासहित चल न सकै, रस्तेमें ग्रामादि न हो, तो दोय कोश उपरांत भी ले जा सक्ते हैं.

(५१) साधु-साध्वीयोंको प्रथम प्रहरमे ग्रहन कीया हुवा विलेपनकी जाति चरम प्रहरमे नहीं कल्पै. परन्तु कोइ विशेष कारन हो तो कल्पै. (५२) एवं तेल, घृत, मखन, चरबी. (५३) काकण द्रव्य, लोद्र द्रव्यादि भी समझना.

(५४) साधु अपने दोषका प्रायश्चित कर रहा है. अगर उस साधुको किसी स्थविर (वृद्ध) मुनियोंकी वैयावच्चमें भेजे, और वह स्थविर उस प्रायश्चित तप करनेवाले साधुका लाया आहार पानी करै, तो व्यवहार रखनेके लीये नाम मात्र प्रायश्चित उस स्थविरोंको भी देना चाहिये. इससे दुसरे साधुवोंको चोभ रहेता है.

(५५) साध्वीयों गृहस्थोके वहां गौचरी जानेपर किसीने सरस आहार दीया, तो उस साध्वीयोंको उस रोज इतना ही आहार करना, अगर उस आहारसे अपनी पूरती न हुइ, ज्ञान-ध्यान ठीक न हो, तो दुसरी दफे गौचरी जाना. भावार्थ-सरस आहार आने पर प्रथम उपासरेमें आना चाहिये.

सबसे पूछना चाहिये. कारण-फिर ज्यादा हो तो परठनेमें महान् दोष है. वास्ते उणोदरी तप करना.

॥ इति श्री बृहत्कल्प सूत्रका पांचवा उद्देशाका संक्षिप्त सार ॥



छट्ठा उद्देशा.

(१) साधु-साध्वीयों किसी जीवोंपर

(१) अछता-कूडा कलंक देना,

(२) दुसरेकी हीलना-निंदा करना,

(३) किसीका जातिदोष प्रगट करना,

(४) किसीकोंभी कठोर वचन बोलना,

(५) गृहस्थोंकी माफिक हे माता, हे पिता, हे मामा, हे मासी-इत्यादि मकार चकारादि शब्द बोलना.

(६) उपशमा हुवा क्रोधादिककी पुनः उदीरणा करनी यह छे वचन बोलना साधु-साध्वीयोंको नहीं कल्पै. कारन-इससे परजीवोंको दुःख होता है, साधुकी भाषासमितिका भंग होता है.

(२) साधु-साध्वीयों अगर किसी दुसरे साधुवोंका दोषको जानते हो, तोभी उसकी पूर्ण जाच करना, निर्णय करना, गवाइ करना, बादहीमे गुर्वादिकको कहना चाहिये. अगर ऐसा न करता हुवा एक साधु दुसरे साधुपर आक्षेप कर देवे, तो गुर्वादिकको जानना चाहियेकि आक्षेप करनेवालेको प्राय-

श्चित देवे अगर प्रायश्चित न देवेगा तो, कोइभी साधु किसीके साथ स्वल्पही द्वेष होनेसे आक्षेप कर देगा. इसके लीये कल्पके छे पत्थर कहा है. (१) कोइ साधुने आचार्यसे कहाकि अमुक साधुने जीव मारा है. जीस साधुका नाम लीया, उसको आचार्य पूछेकि–हे आर्य ! क्या तुमने जीव मारा है ? अगर वह साधु स्वीकार करेकि–हां महाराज ! यह अकृत्य मेरे हाथसे हुवा है, तो उस मुनिको आगमानुसार प्रायश्चित देवे, अगर वह साधु कहेकि–नहीं, मैंने तो जीव नहीं मारा है. तब आक्षेप करनेवाले साधुको पूछना, अगर वह पूर्ण साबुती नहीं देवे, तो जितना प्रायश्चित्त जीव मारनेका होता है, उतनाही प्रायश्चित्त उस आक्षेप करनेवाले साधुको देना चाहियेकि दुसरी वार कोइभी साधु किसीपर जूठा आक्षेप न करे. भावार्थ—निर्बल साधु तो जूठा आक्षेप करेही नहीं, परन्तु कर्मोंकी विचित्र गति होती है. कभी द्वेषका मारा करभी देवे, तो गच्छ निर्वाहकारक आचार्यको इस नीतिका प्रयोग करना चाहिये. (२) एवं मृषावाद आक्षेपका, (३) एवं चौरी आक्षेपका, (४) एवं मैथुन आक्षेपका, (५) एवं नपुंसक आक्षेपका (६) एवं जातिहीन आक्षेपका–सर्व पूर्ववत् समजना.

(३) साधुके पावमें कांटा, खीला, फंस, काच–आदि भांगा हो, उस समय साधु निकालनेको विशुद्धि करनेको असमर्थ हो, ऐसी हालतमें साध्वी उस कांटा यावत् काचखंडको पगसे निकाले, तो जिनाज्ञा उल्लंघन नहीं होता है. भावार्थ—

गृहस्थोंका सर्व योग सावद्य है, वास्ते गृहस्थोंसे नहीं निकलवाना, धर्मवुद्धिसे साध्वीयोंसे नीकलाना चाहिये. कारन—ऐसा कार्यतो कभी पडता है. अगर गृहस्थोंसे काम करानेमें छुट होगा, तो आखिर परिचय वढनेका संभव होता है.

(४) साधुके आँखों (नेत्रों) मे कोइ तृण, कुस, रज, बीज या सुक्ष्म जीवादि पड जावे, उस समय साधु निकालनेमें असमर्थ हो, तो पूर्ववत् साध्वीयों निकाले, तो जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है. (कारणवशात्) एवं (५–६) दोय अलापक साध्वीयोंके कांटादि या नेत्रोंमे जीवादि पड जानेपर साध्वीयों असमर्थ हो तो, साधु निकाल सक्ता है, पूर्ववत्.

(७) साध्वी अगर पर्वतसे गिरती हो, विषम स्थानसे पडती हो, उस समय साधु धर्मपुत्री समज, उसको आलंबन दे, आधार दे, पकड ले, अर्थात् संयम रक्षण करता हुवा जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है. अर्थात् वह जिनाज्ञाका पालन करता है.

(८) साध्वीयों पाणी सहित कर्दममें या पाणी रहित कर्दममें खुंची हो, आप व्हार निकलेमें असमर्थ हो, उस साधु धर्मपुत्री समज हाथ पकड बाहार निकाले तो भगवानकी आज्ञा उल्लंघन नही करै, किन्तु पालन करे.

(९) साध्वी नौकापर चढती उतरती, नदी में डूबती को साधु हाथ पकड निकाले तो पूर्ववत् जिनाज्ञाका पालन करता है.

(१०) साध्वीयों दत्तचित्त (विषयादिसे),

(११) क्षित चित्त (क्षोभ पानेसे),

(१२) यक्षाधिष्ठित,

(१३) उन्मत्तपनेसे,

(१४) उपसर्ग के योगसे,

(१५) अधिकरण–क्रोधादिसे,

(१६) सप्रायश्चित्तसे,

(१७) अनशन करी हुइ ग्लानपनासे,

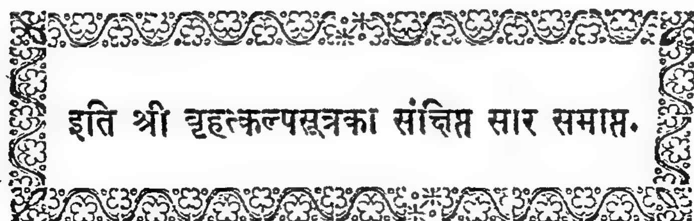
(१८) सलोभ धनादि देखनेसे, इन कारणोंसे संयमका त्याग करती हुइ, तथा आपघात करती हुइको साधु हाथ पकड रखे, चित्तको स्थिर करे, संयमका साहित्य देवे तो भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन न करे, अर्थात् आज्ञाका पालन करे.

(१६) साधु साधुवीयोंके कल्पके पलिमन्थु छे प्रकार के होते है. जैसे सूर्यकी कांतिको बादले दबा देते है, इसी प्रकार छे बातों साधुवोंके संयमको निस्तेज कर देती है. यथा (१) स्थान चपलता, शरीर चपलता, भाषा चपलता–यह तीनों चपलता संयमका पलिमन्थु है. अर्थात् (कुकइ) संयमका पलिमन्थु है. (२) वार वार बोलना, सत्यभाषाका पलिमन्थु है. (३) तुण तुणाट अर्थात् आतुरता करना गोचरीका पलिमन्थु है. (४) चक्षु लोलुपता–इर्यासमितिका पलिमन्थु है. (५)

इच्छा लोलुपता अर्थात् तृष्णाको बढाना, यह सर्व कार्योंका पलिमन्थु है. (६) तप-संयमादि कृत कार्यका वार वार निदान (नियाणा) करना, यह मोक्ष मार्गका पलिमन्थु है. अर्थात् यह छे वातों साधुवोंको नुकशानकारी है. वास्ते त्याग करना चाहिये.

(२०) छे प्रकार के कल्प है. (१) सामायिक कल्प, (२) छेदोपस्थापनीय कल्प, (३) निवट्टमाण, (४) निवट्टकाय, (५) जिनकल्प, (६) स्थविरकल्प इति.

इति श्री वृहत्कल्पसूत्र—छट्ठा उद्देशाका संक्षिप्त सार.



॥ श्री देवगुप्तसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः ॥

अथश्री

शीघ्रबोध भाग १० वा।



अथश्री दशाश्रुतस्कन्धसूत्रका संक्षिप्त सार.

(अध्ययन दश.)

(१) प्रथम अध्ययन—पुरुष अपनी प्रकृतिसे प्रतिकूल आचरण करनेसे असमाधिका कारण होता है. इसी माफिक मुनि अपने संयम-प्रतिकूल आचरण करनेसे संयम-असमाधिको प्राप्त होता है. जिसके २० स्थान शास्त्रकारोंने बतलाया है. यथा—

(१) आतुरतापूर्वक चलनेसे असमाधि-दोष.
(२) रात्रि समय विगर पुंजी भूमिकापर चलनेसे असमाधि दोष.
(३) पुंजे तोभी अविधिसे कहांपर पुंजे, कहांपर नहीं पुंजे तो असमाधि दोष.
(४) मर्यादासे अधिक शय्या, संस्तारक भोगवे तो अस० दो०

(५) रत्नत्रयादिसे वृद्ध जनोंके सामने बोले, अविनय करे तो अस० दो०

(६) स्थविर मुनियोंकी घात चिंतवे, दुर्ध्यान करे तो अस० दोष०

(७) प्राणभूत जीव–सत्त्वकी घात चिंतवे, तो अस० दोष.

(८) किसीके पीछे अवगुण–वाद बोलनेसे अस० दोष.

(९) शंकाकारी भाषाको निश्चयकारी बोलनेसे अस० दोष.

(१०) वार वार क्रोध करनेसे अस० दोष.

(११) नया क्रोधका कारण उत्पन्न करनेसे अस० दोष.

(१२) पुराणे क्रोधादिकी उदीरणा करनेसे अस० दोष.

(१३) अकालमे सज्झाय करनेसे अस० दोष.

(१४) प्रहर रात्रि जानेके बाद उंच स्वरसे बोले तो अस० दोष लगे.

(१५) सचित्त पृथ्व्यादिसे लिप्त पावोंसे आसनपर बैठे तो अस० दोष लगे.

(१६) मनसे झूझ करे किसीका खराब होना इच्छे तो अस० दोष.

(१७) वचनसे झूझ करे, किसीको दुर्वचन बोले तो अस० दोष लगे.

(१८) कायासे झूझ करे अंग मोडे कटका करे, तो अस० दोष.

(१९) सूर्योदयसे अस्ततक खाना, खानेमे मस्त रहे तो अस० दोष.

(२०) भात-पाणीकी शुद्ध गवेषणा न करनेसे अस० दोष. इस बोलोंका सेवन करनेसे साधु, साध्वीयोंको असमाधि दोष लगता है. अर्थात् संयम असमाधि (कमजोर) को प्राप्त करता है. वास्ते मोक्षार्थी महात्मावोंको सदैवके लीये यत्तना पूर्वक संयमका तप करना चाहिये.

॥ इति प्रथम अध्ययनका संक्षिप्त सार ॥

(२) दूसरा अध्ययन.

जैसे संग्राममें गये हुवे पुरुषको गोलीकी चोट लगनेसे अथवा सबल प्रहार लगनेसे बिलकुल कमजोर हो जाता है; इसी माफिक मुनियोंके संयममें निम्न लिखित २१ सबल दोष लगनेसे चारित्र बिलकुल कमजोर हो जाता है. यथा—

(१) हस्तकर्म (कुचेष्टा) करनेसे सबल दोष.
(२) मैथुन सेवन करनेसे सबल दोष.
(३) रात्रिभोजन करनेसे ,, ,,
(४) आदाकर्मी आहार, वस्त्र, मकानादि सेवन करनेसे सबल दोष.
(५) राजपिंड भोगनेसे* सबल दोष.
(६) मूल्य देके लाया हुवा, उधारा हुवा, निर्बलके पाससे

* राजपिंड—(१) राज्याभिषेक करने समय, (२) राजाका बलिष्ठ आहार ज्यों तत्काल वीर्यवृद्धि करे. (३) राजाका भोजन समये बचा हुवा आहारमें पंडे लोगोंका विभाग होता है.

जवरदस्तीसे लाया हुवा, भागीदारकी विगर मरजीसे लाया हुवा, और सामने लाया हुवा—असे पांच दोप संयुक्त आहार—पाणी भोगनेसे सवल दोप लगे.

(७) प्रत्याख्यान कर वार वार भंग करनेसे सवल दोप.

(८) दीक्षा लेके छे मासमें एक गच्छसे दुसरे गच्छमें जानेसे सवल दोप लगे.

(९) एक मासमें तीन उदग (नदी) लेप+लगानेसे सवल दोप.

(१०) एक मासमें तीन मायास्थान सेवे तो सवल दोप.

(११) शय्यातरके वहांका अशनादि भोगनेसे सवल दोप.

(१२) जानता हुवा जीवको मारनेसे सवल दोष लगे.

(१३) जानता हुवा जूठ वोले तो सवल दोप.

(१४) जानता हुवा पृथ्व्यादिपर वैठ—सोवे तो सवल दोप लगे.

(१६) स्नाघ पृथ्व्यादि पर वैठ, सोवे, सज्झाय करे तो सवल दोप.

(१७) त्रस, स्थावर, तथा पांच वर्णकी नील, हरी अंकुरा यावत् कलोडीयें जीवोंके झालोंपर वैठ, सोवे तो सवल दोष लगे.

(१८) जानता हुवा कची वनस्पति, मूलादिको भोगनेसे सवल दोप.

(१९) एक वरसमें दश नदीके लेप लगानेसे सवल दोप.

+ लेप—देखो कल्पसूत्रमें.

(२०) एक वर्षमें दश मायास्थान सेवन करनेसे सबल दोष.

(२१) सचित्त पृथ्वी–पाणीसे स्पर्श हुवे हाथोंसे भात, पाणी ग्रहण करे तो सबल दोष लगता है. दोषोंके साथ परिणामभी देखा जाता है और सब दोष सदृश भी नहीं होते है. इसकी आलोचना देनेवाले बडेही गीतार्थ होना चाहिये.

इस २१ सबल दोषोंसे मुनि महाराजोंको सदैव बचना चाहिये.

इति श्री दशा श्रुत स्कन्ध—दुसरे अध्ययनका संक्षिप्त सार.

---

(३) तीसरा अध्ययन.

गुरु महाराजकी तेतीस आशातना होती है. यथा—

(१) गुरु महाराज और शिष्य राहस्ते चलते समय शिष्य गुरुसे आगे चले तो आशातना होवे.

(२) बराबर चले तो आशातना, (३) पीछे चले परन्तु गुरुसे स्पर्श करता चले तो आशातना,—एवं तीन आशातना बैठनेकी, एवं तीन आशातना उभा रहनेकी–कुल आशातना ९ ।

(१०) गुरु और शिष्य साथमे जंगल गये कारणवशात् एक पात्रमे पाणी ले गये, गुरुसे पहिला शिष्य शूचि करे तो आशातना, (११) जंगलसे आयके गुरु पहिला शिष्य इरियावही प्रतिक्रमे तो आशातना.

(१२) कोइ विदेशी श्रावक आया हुवा है, गुरु महाराजसे वार्तालाप करनेके पेस्तर उस विदेशीसे शिष्य वात करे तो आशातना.

(१३) रात्रि समय गुरु पूछते है—भो शिष्यो ! कौन सोते कौन जागते हो ? शिष्य जाग्रत होने परभी नहीं बोले. भावार्थ—शिष्यका इरादा हो कि अवी बोलुंगा तो लघुनीति परठनेको जाना पडेगा. आशातना.

(१४) शिष्य गौचरी लाके प्रथम लघु साधुवोंको वतलावे पीछे गुरुको वतलावे तो आशातना.

(१५) एवं प्रथम लघु मुनियोंके पास गौचरी की आलोचना करे पीछे गुरुके पास आलोचना करे तो आशातना.

(१६) शिष्य गौचरी लाके प्रथम लघु मुनियोंको आमंत्रण करे और पीछे गुरुको आमंत्रण करे तो आशातना.

(१७) गुरुको विगर पूछे अपना इच्छानुसार आहार साधुवोंको भेट देवे, जिसमे भी किसीको सरस आहार और किसीको नीरस आहार देवे तो आशातना.

(१८) शिष्य और गुरु साथमे भोजन करनेको वैठे. इसमे शिष्य अपने मनोज्ञ भोजन कर लेवे तो आशातना.

(१९) गुरुके बोलानेसे शिष्य न वोले तो आशातना.

(२०) गुरुके बोलानेपर शिष्य आसनपर वैठा हुवा उत्तर देवे तो आशातना.

(२१) गुरुके बोलानेपर शिष्य कहे—क्या कहते हो ? दिन-भर क्या कहे तो हो ? आशातना.

(२२) गुरुके बोलानेपर शिष्य कहे—तुम क्या कहते हो ? तुं क्या कहे ? अैसा तुच्छ शब्द बोले तो आशातना.

(२३) गुरु धर्मकथा कहे शिष्य न सुने तो आशातना.

(२४) गुरु धर्मकथा कहे, शिष्य खुशी न हो तो आशातना.

(२५) गुरु धर्मकथा कहे शिष्य परिषदमें छेद भेद करे, अर्थात् आप स्वयं उस परिषदको रोक रखे तो आशातना.

(२६) गुरु कथा कह रहे है, आप बिचमे बोले तो आशातना.

(२७) गुरु कथा कह रहे हैं, आप कहे-अैसा अर्थ नहीं, इसका अर्थ आप नहीं जानते हो, इसका अर्थ अैसा होता है. आशातना.

(२८) गुरुने कथा कही उसी परिषदमे उसी कथाको विस्तारसे कहके परिषदका दिलको अपनी तर्फ आकर्षण करे तो आशातना.

(२९) गुरुके जाति दोषादिकों प्रगट करे तो आशातना.

(३०) गुरु कहे—हे शिष्य ! इस ग्लान मुनिकी वैयावच्च करो, तुमको लाभ होगा. शिष्य कहे—क्या आपको लाभ नहीं चाहिये ? अैसा कहे तो आशातना.

(३१) गुरुसे उंचे आसनपे बैठें तो आशातना.

(३२) गुरुके आसनपर बैठे तो आशातना.

(३३) गुरुके आसनको पाव आदि लगनेपर खमासना दे अपना अपराध न खमावे तो शिष्यको आशातना लगती है.

इस तेतीस (३३) आशातना तथा अन्य भी आशातनासे बचना चाहिये. क्योंकि आशातना बोधिबीजका नाश करनेवाली है. गुरुमहाराजका कितना उपकार होता है, इस संसारसमुद्रसे तारनेवाले गुरुमहाराज ही होते है.

॥ इति दशाश्रुतस्कन्ध तीसरा अध्ययनका संक्षिप्त सार ॥

(४) चौथा अध्ययन.

आचार्य महाराजकी आठ संप्रदाय होती है. अर्थात् इस आठ संप्रदाय कर संयुक्त हो, वह आचार्यपदको योग्य होते है. वह ही अपनी संप्रदाय (गच्छ) का निर्वाह कर सक्ते है. वह ही शासनकी प्रभावना–उन्नति कर सक्ते है. कारण–जैन शासनकी उन्नति करनेवाले जैनाचार्य ही है. पूर्वमें जो बडे २ विद्वान् आचार्य हो गये, जिन्होंने शासन-सेवाके लिये कैसे २ कार्य किये है, जो आजपर्यंत प्रख्यात है. विद्वान् आचार्यों विना शासनोन्नति होनी असंभव है. इस-लिये आचार्योंमें कौन २ सी योगता होनी चाहिये और शास्त्र-कार क्या फरमाते है, वही यहांपर योग्यता लिखी जाती है. इन योग्यताओंके होनेही से शास्त्रकारोंने आचार्यपदके योग्य कहा है. यथा (१) आचार संपदा, (२) सूत्र संपदा, (३) शरीर

संपदा, (४)वचन संपदा, (५) वाचना संपदा, (६) मति संपदा, (७)प्रयोग संपदा, (८) संग्रह संपदा–इति.

(१) आचार संपदा के चार भेद.

(१) पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति, सत्तर प्रकार- के संयम, दश प्रकारके यतिधर्मादिसे अखंडित आचारवन्त हो, सारणा, धारणा, वारणा, चोयणा, प्रतिचोयणादिसे संघको अच्छे आचारमें प्रवर्तावे. (२) आठ प्रकारके मद और तीन गारवसे रहित–बहुत लोकोंके माननेसे अहंकार न करे और क्रोधादिसे अग्रहित हो. (३) अप्रतिबंध–द्रव्यसे भंडोमत्तोपगरण वस्त्र–पात्रादि, क्षेत्रसे ग्राम, नगर उपाश्रयादि, कालसे शीतो- ष्णादि कालमे नियमसर जगह रहना और भावसे राग, द्वेष (एकपर राग, दूसरेपर द्वेष करना) इन चार प्रकारके प्रति बंध रहित हो. (४) चंचलता–चपलता रहित, इंद्रियोंको दमन करे, हमेशां त्यागवृत्ति रक्खे, और बडे आचारवंत हो.

(२) सूत्र संपदाका चार भेद. यथा–

(१) बहुश्रुत हो (क्रमोत्क्रम गुरुगमसे वांचना ली हो) (२) स्वसमय, परसमयका जाननेवाला हो. याने जिस काल- में जितना सूत्र है, उनका पारगामी हो. और वादी प्रतिवादी- को उत्तर देने समर्थ हो. (३) जितना आगम पढे या सुने उसको निश्चल धारण कर रक्खे, अपने नाम माफिक कभी न भूले. (४) उदात्त, अनुदात्त, घोष–उच्चारण शुद्ध स्पष्ट हो.

(१) पहिले अपनी शक्तिका विचार करे, और देखे कि मैं इस वादीका पराजय कर सकता हुं या नहीं ? मुझमें कितना ज्ञान है और वादीमें कितना है ? इसका विचार करे. (२) यह क्षेत्र किस पक्षका है. नगरका राजा व प्रजा सुशील है या दुःशील है. और जैनधर्मका रागी है वा द्वेषी है ? इन सब बातोंका विचार करे. (३) स्व और परका विचार करे. इस विषयमें शास्त्रार्थ करता हुं परन्तु इसका फल (नतीजा) पीछे क्या होगा ? इस क्षेत्रमें स्वपक्षके पुरुष कम है, और परपक्षवाले ज्यादे है, वे भी जैनपर अच्छा भाव रखते है, या नहीं ? अगर राजा और प्रजा दुर्लभबोधि होगा तो शास्त्रार्थ करनेसे जैनोंका इस क्षेत्रमें आना जाना कठिन हो जायगा. ऐसी दशामें तीर्थादिकी रक्षा कौन करेगा ? इत्यादि बातोंका विचार करे. (४) वादी किस विषयमें शास्त्रार्थ करना चाहता है. और उस विषयका ज्ञान अपनेमें कितना है ? इसको विचार कर शास्त्रार्थ करे. ऐसे विचार पूर्वक शास्त्रार्थ कर वादीका पराजय करना.

(८) संग्रह संपदाके चार भेद. यथा—

(१) क्षेत्र संग्रह—गच्छके साधु ग्लान, वृद्ध, रोगी आदिके लीये क्षेत्रका संग्रह याने अमुक साधु उस क्षेत्रमें रहेगा, तो वह अपनी संयम यात्राको अच्छी तरहसे निर्वहा सकेगा और श्रोतागणकोभी लाभ मिलेगा. (२) शीतोष्ण या वर्षा-

कालके लिये पाट-पाटलादिका संग्रह करे, क्योंकि आचार्य गच्छके मालिक है. इस लिये उनके दर्शनार्थी साधु बहुतसे आते हैं, उन सबकी यथायोग्य भक्ति करना आचार्यका काम है. और पाट-पाटलाके लीये ध्यान रखे कि इस श्रावकके वहां ज्यादाभी मिल सक्ता है. जिससे काम पडे जब ज्यादा फिरनेकी तकलीफ न पडे. (३) ज्ञानका नया अभ्यास करते रहे. अनेक प्रकारके विद्यार्थीओंका संग्रह करे. और शासनमें काम पडनेपर उपयोगमें लावे. क्योंकि शासनका आधार आचार्यपर है. (४) शिष्य—जोकि शासनको शोभानेवाले हो, और देशों देशमें विहार करके जैनधर्मकी वृद्धि करनेवाले असे सुशिष्योंकी संपदाको संग्रह करे.

इति आचार्यकी आठ संपदा समाप्त.



आचार्यने सुविनीत शिष्यको चार प्रकारके विनयमें प्रवृत्ति करानी चाहिये. यथा—(१) आचार विनय, (२) सूत्र-विनय, (३) विक्षेपण विनय, (४) दोष निग्घायणा विनय.

(१) आचार विनयके ४ भेद.

(१) संयम सामाचारीमें आप वर्ते, दूसरेको वर्तावे, और वर्ततेको उत्तेजन दे. (२) तपस्या आप करे, दूसरोंसे करवावे और तपस्या करनेवालोंको उत्तेजन दे. (३) गण-गच्छका कार्य आप करे, दूसरोंसे करवावे और उत्तेजन दे.

(४) योग्यता प्राप्त होनेसे अकेला पडिमा धारण करे, करवावे, और उत्तेजन दे. क्यों कि जो वस्तुओंकी प्राप्ति होती है, वह अकेलेमें ध्यान, मौनादि उग्र तपसे ही होती है.

(२) सूत्र विनयके ४ भेद.

(१) सूत्र या सूत्रकी वाचना देनेवालोंका बहु मानपूर्वक विनय करे, क्यों कि विनय ही से शास्त्रोंका रहस्य शिष्यको प्राप्त हो सकता है. (२) अर्थ और अर्थदाताका विनय करे. (३) सूत्रार्थ या सूत्रार्थको देनेवालोंका विनय करे. (४) जिस सूत्र अर्थकी वाचना प्रारंभ करी हो, उसको आदि-अंत तक संपूर्ण करे.

(३) विक्षेपणा विनयका ४ भेद.

(१) उपदेश द्वारा मिथ्यात्वीके मिथ्यात्वको छुडावे. (२) सम्यक्त्वी जीवको श्रावक व्रत या संसारसे मुक्त कर दीक्षा दे. (३) धर्म या चारित्रसे गिरतेको मधुर वचनोंसे स्थिर करे. (४) चारित्र पालनेवालोंको एषणादि दोषसे बचा कर शुद्ध करे.

(४) दोष निग्घायणा विनयके ४ भेद.

(१) क्रोध करनेवालेको मधुर वचनसे उपशांत करे. (२) विषयभोगकी लालसावालेको हितोपदेश करके संयमगुण और वैषयिक दोष बता कर शांत करे. (३) अनशन किया

हुवा साधु असमाधि चित्तसे अस्थिर होता हो उसको स्थिर करे या मिथ्यात्वमें गिरते हुए को स्थिर करे. (साहित्य दे.) (४) स्वयं (आप) शांतपणे वर्ते और दूसरोंको वर्तावे. इति.

और भी आचार्यके शिष्यका ४ प्रकारका विनय कहा है.

(१) साधुके उपगरण विषय विनयका ४ भेद.

(१) पहिलेके उपगरणका संरक्षण करे और वस्त्र, पात्रादि फुटा, तुटा हो उसको अच्छा करके वापरे (काममें लावे). (२) अति जरुरत हो तो नया उपगरण निर्वद्य लेवे. और जहांतक हो वहांतक अल्प मूल्यवाला उपगरण ले. (३) वस्त्रादिक फाट गया हो तो भी जहांतक बने वहांतक उसीसे काम ले. मकानमें (उपासरेमें) जीर्ण वस्त्र वापरे. बाहर आना–जाना हो तो सामान्य वस्त्र (अच्छा) वापरे. इसी माफिक आप निर्वाह करे, परन्तु दूसरे साधुको अच्छा वस्त्र दे. (४) उपगरणादि वस्तु गृहस्थसे याच के लाया हो, उसमेंसे दूसरे साधुको भी विभाग करके देवे.

(२) साहिह्यीय विनयके ४ भेद.

(१) गुरुमहाराजके बुलानेपर तहकार करता हुवा नम्रतापूर्वक मधुर वचनसे बोले. (२) गुरुमहाराजके काममें अपने शरीरको यतनापूर्वक विनयसे प्रवर्तावे. (३) गुरुमहाराजके कार्यको विश्रामादि रहित करे, परन्तु विलंब न करे.

(४) गुरुमहाराज या अन्य साधुवोंके कार्यमें नम्रतापूर्वक प्रवर्तें.

(३) वण्ण संजलणता विनयके ४ भेद.

(१) आचार्यादिका छता गुण दीपावे. (२) आचार्यादिका अवगुण बोलनेवालेको शिक्षा करे (वारे) याने पहिले मधुर वचनसे समझावे और न माननेपर कठोर वचनसे तिरस्कार करे, परन्तु आचार्यादिका अवगुण न सुने. (३) आचार्यादिके गुण बोलनेवालेको योग्य उत्तेजन दे या साधुको सूत्रार्थकी वाचना दे. (४) आचार्यके पास रहा हुवा विनीत शिष्य हमेशां चढते परिणामसे संयम पाले.

(४) भारपच्चरुहणता विनयके ४ भेद.

(१) संयम भार लीया हुवा स्थितोस्थित पहुंचावे (जावजीव संयममें रमणता करे), और संयमवंतकी सारसंभाल करे. (२) शिष्यको आचार-विचारमें प्रवर्तावे, अकार्य करतेको वारे और कहे-भो शिष्य ! अनंत सुखका देनेवाला यह चारित्र तेरेको मिला है, इसकी चिन्तामणि रत्नके समान यतना कर, प्रमाद करनेसे यह अवसर निकल जायगा-इत्यादिक मधुर वचनोंसे समझावे. (३) स्वधर्मी, ग्लान, रोगी, वृद्धकी वैयावच्च करनी. (४) संघ या साधर्मीकसे क्लेश न करे, न करावे, कदाचित् क्लेश हो गया हो तो मध्यस्थ (कोइका पक्ष न करते) होकर क्लेशको उपशांत करे. इति.

यह आठ प्रकारकी संपदा आचार्यकी तथा आठ प्रकारका विनय शिष्यके लिये कहा. क्योंकि विनय प्रवृत्ति रखनेहीसे शासनका अधिकारी और शासनका कुछ कार्य करने योग्य हो सक्ता है. इस प्रवृत्तिमें चलना और चलाना यह कार्य आचार्य महाराजका है.

इति श्री दशाश्रुत स्कंध—चतुर्थाध्ययनका संक्षिप्त सार!



(५) पंचम अध्ययन.



चित्त समाधिके दश स्थान है—

वाणियाग्राम नगरके दुतिपलासोद्यानमें परमात्मा वीरप्रभु अपने शिष्यरत्नोंके परिवारसे पधारे, राजा जयशत्रु च्यार प्रकारकी सेना संयुक्त और नगर निवासी लोक बडेही आडम्बरके साथ भगवानको वन्दन करने आये. भगवानने उस विशाल परिषदको विचित्र प्रकारसे धर्मकथा सुनाइ. जीवादि पदार्थका स्वरुप समजाते हुवे आत्मकल्याणमें चित्तसमाधिकी खास आवश्यक्ता बतलाइथी. परिषदने प्रेमपूर्वक देशना श्रवण कर आनन्द सहित भगवानको वन्दन नमस्कार कर आये जिस दिशामें गमन कीया.

भगवान् वीरप्रभु अपने साधु—साध्वीयोंको आमंत्रण कर आदेश करते हुवे कि—हे आर्यो ! साधु, साध्वी पांच स-

मिति तीन गुप्ति यावत् ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले आत्मार्थी, स्थिर आत्मा, आत्माका हित, आत्मयोगी, आत्म पराक्रम, स्वपक्षके पोषक, तथा पाक्षिक पौषधकारक, सुसमाधिवंत, शुक्लध्यान, धर्मध्यानके ध्याता, उन्होंके लिये जो दश चित्त समाधिके स्थान, पेस्तर प्राप्त नहीं हुवे ऐसे स्थान दश हैं, उसीको श्रवण करो.

(१) धर्म–केवली, सर्वज्ञ, अरिहंत, तीर्थंकर, प्रणीत, नयनिक्षेप प्रमाण, उत्सर्गापवाद, स्याद्वादमय धर्म, जो नवतत्त्व, षट्द्रव्य आत्मा और कर्म आदिका स्वरुप चिन्तवनरुप जो धर्म, आगे (पूर्वे) नहीं प्राप्त हुवाको इस समय प्राप्त होनेसे वह जीव ज्ञानात्मा करके है. स्व समय, परसमयका जानकार होता है. जिससे चित्तसमाधि होती है. ऐसा पवित्र धर्मकी प्राप्ति होनेके कारण–सरल स्वभाव, निर्मल चित्तवृत्ति, सदा समाधि, दुर्ध्यान दूर कर सुध्यान करना, देव, गुरु के वचनोंपर श्रद्धा, शत्रु मित्रपर समभाव, पुद्गलोंसे अरुचि. धर्मका अर्थी, परिसह तथा उपसर्गसे अक्षोभित, इत्यादि होनेसे इस लोकमें चित्तसमाधि और परलोकमें मोक्ष सुखोंको प्राप्त करता है. प्रथम समाधिध्यान.

(२) संज्ञीजीवोंको उत्पन्न हो, उसे संज्ञीज्ञान अर्थात् जातिस्मरण ज्ञान, जो मतिज्ञानका एक विभाग है. ऐसा ज्ञान पूर्वे न उत्पन्न हुवा, वह उत्पन्न होनेसे चित्तसमाधि होती है. कारण उस ज्ञानके जीरये उत्कृष्ट नौसों ९००) भव संज्ञीपंचेंद्रियका

भूतकालमें किये भव संबन्धको देख सक्ते है. उसीसे चित्तसमाधि होती है. जातिस्मरणज्ञान किसको होता है कि भूतकालमें संज्ञीपणे किये हुवे भवका संबन्धको किसी वस्तुके देखनेसे तथा किसीके पास श्रवण करनेसे, समाधि पूर्वक चिन्तवन करनेसे प्रशस्ताध्यवसाय होनेसे जातिस्मरणज्ञान होता है. जैसे महाबल कुमरको हुवा था.

(३) अहा तचं स्वप्न–जैसे भगवान् वीरप्रभुने दश स्वप्न देखे थे तथा मोक्षगमन विषय चौदा स्वप्न कहा है, ऐसा स्वप्न पूर्वे न देखा हो उसको देखनेसे चित्तसमाधि होती है, ऐसे उत्तम स्वप्न किसको प्राप्त होता है ? कि जो संवृतात्माके धारक मुनि यथातथ्य स्वप्ना देख सकता है. वह इस घोर संसार–समुद्रसे शीघ्रतासे पार होकर मोक्षको प्राप्त कर लेता है.

(४) देवदर्शन—जैसे देवताओं संबंधी ऋद्धि, ज्योति, कान्ति (क्रान्ति) प्रधान देवसंबंधी भाव पूर्वे नहीं देखा, वह देखनेसे चित्तको समाधि होती है, ऐसा देवदर्शन किसीको होता है ? मुनि जो प्राप्त हुवे आहार–पाणी तथा सरस–नीरस आहार और वस्त्र–पात्र जीर्णादिको समभावे भोगनेवाले तथा पशु, नपुंसक, स्त्री रहित शय्या भोगनेवाले ब्रह्मचर्यगुप्ति पालन करनेवाले, अल्प आहारभोजी, अल्प उपधि रखनेवाले, पांचों इन्द्रियोंको अपने कब्जे करी हो, छे कायकी यतना करनेवाले इत्यादि जो श्रेष्ठ गुणधारकों सम्यग्दृष्टि देवका दर्शन होता है, उसीसे चित्त समाधिको प्राप्त होते हैं.

(५) अवधिज्ञान—पूर्वे उत्पन्न नहीं हुवा ऐसा उत्पन्न होनेसे जघन्य अंगुलके असंख्याते भागे उत्कृष्ट संपूर्ण लोकको जाने, जिससे चित्तसमाधि होती है. अवधिज्ञान किसको प्राप्त होता है? जो तपस्वी मुनि सर्व प्रकारके कामविकार, विषय-कषायसे विरक्त हुवा हो; देव, मनुष्य, तिर्यंचादिका उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करे, ऐसे मुनियोंको अवधिज्ञान होनेसे चित्तसमाधि होती है.

(६) अवधिदर्शन—पूर्वे उत्पन्न न हुवा ऐसा अवधिदर्शन उत्पन्न होनेसे जघन्य अंगुलके असंख्याते भागे और उत्कृष्ट लोकके रुपीद्रव्योंको देखे. अवधिदर्शनकी प्राप्ति किसको होती है? जो पूर्व गुनोंवाले, शांत स्वभावी, शुभ लेश्याके परिणामवाले मुनि उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्च्छालोकको अवधिज्ञान द्वारा रुपीपदार्थोंके देखनेसे चित्तमें समाधि उत्पन्न होती है.

(७) मनःपर्यवज्ञान—पूर्वे प्राप्त नहीं हुवा एसा अपूर्व मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होनेसे अढाइद्वीपके संज्ञीपर्याप्ता जीवोंका मनोभावको देखते हुवे चित्तसमाधिको प्राप्त होता है. मनः-पर्यवज्ञान किसको उत्पन्न होता है? सुसमाधिवन्त, शुक्लेश्यावन्त, जिनवचनमें निःशंक, अभ्यन्तर और बाह्य परिग्रहका सर्वथा त्यागी, सर्व संगरहित, गुणोंका रागी इत्यादि गुण संयुक्त हो, उस अप्रमत्त मुनिको मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है.

(८) केवलज्ञान—पूर्वे नहीं हुवा वह उत्पन्न होनेसे

चित्तको परम समाधि होती है. केवलज्ञानकी प्राप्ति किसको होती है ? जो मुनि अप्रमत्त भावसे संयम आराधन करते हुवे ज्ञानावरणीय कर्मका सर्वांश क्षय कर दीया है, ऐसा क्षपकश्रेणिप्रतिपन्न मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न होता है. वह सर्व लोकालोकके पदार्थोंको हस्तामलककी माफिक जानते है.

(९) केवलदर्शन—पूर्व नहीं हुवा ऐसा केवलदर्शन होनेसे लोकालोकको देखते हुवेको चित्तसमाधि होती है. केवलदर्शनकी प्राप्ति किसको होती है ? जो मुनियों अप्रमत्त गजारूढ हो, क्षपकश्रेणि करते हुवे बारहवे गुणस्थानके अन्तमें दर्शनावरणीय कर्मका सर्वांश क्षय कर, केवलदर्शन उत्पन्न कर लोकालोकको हस्तामलककी माफिक देखते है.

(१०) केवलमृत्यु—(केवलज्ञान संयुक्त) पूर्व नहीं हुवा ऐसा केवलमृत्युकी प्राप्ति होनेसे चित्तमें समाधि होती है. केवलमृत्युकी प्राप्ति किसको होती है ? जो बारह प्रकारकी भिक्षुप्रतिमाका विशुद्धपणेसे आराधन कीया हो और मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय कीया हो, वह जीव केवलमृत्यु मरता हुवा, अर्थात् केवलज्ञान संयुक्त पंडित मरण मरता हुवा सर्व शारीरिक और मानसिक दुःखोंका अंत करते, वली समाधि जो शाश्वत, अव्याबाध सुखोंमें विराजमान हो जाता है. मोहनीय कर्म क्षय हो जानेसे शेष कर्मोंका जोर नहीं चलता है. इस पर शास्त्रकारोंने दृष्टान्त बतलाया है. जैसेकि—

(१) तालवृक्षके फलके शिरपर सुइ (सूचि) छेद चिटका-

नस यह तत्काल गिर पडता है, इसी माफिक मोहनीय कर्मका शिरच्छेद करनेसे सर्व कर्मोंका नाश हो जाता है (२) सेनापति भाग जानेसे सेना स्वयंही कमजोर होकर भग जाती है. इसी माफिक मोहनीय कर्मरूप सेनापति क्षय होनेसे शेष कर्मारूपी सैन्य स्वयंही भाग जाता है (क्षय हो जाता है.) (३) धूम रहित अग्नि इन्धनके अभावसे स्वयं क्षय होता है इसी माफिक मोहनीय कर्मरूप अग्निको राग-द्वेषरुप इन्धन न मिलनेसे क्षय होता है. मोहनीयकर्म क्षय होनेपर शेष कर्मक्षय होता है. (४) जैसे सुके हुवे वृक्षके मूल जल सिंचन करनेसे कभी नवपल्लवित नहीं होते है इसी माफिक मोहनीयकर्म छक (क्षय) जानेपर दूसरे कर्मोंका कभी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सक्ता है. (५) जैसे बीजको अग्निसे दग्ध कर दीया हो, तो फिर अंकुर उत्पन्न नहीं हो सक्ता है. इसी माफिक कर्मोंका बीज (मोहनीय) दग्ध करनेसे पुनः भवरुप अंकुर उत्पन्न नहीं होते है.

इस प्रकारसे केवलज्ञानी आयुष्यके अन्तमे औदारिक, तैजस, और कार्मण शरीर तथा वेदनीय, आयु, नामकर्म और गोत्रकर्मको सर्वथा छेदन कर कर्मरज रहित सिद्धस्थानको प्राप्त कर लेते हैं

भगवान् वीरप्रभु आमंत्रण कर कहते है कि—भो आयुष्मान् ! यह चित्त समाधिके कारण बतलाये है. इसको विशुद्ध भावोंसे आराधन करो, सन्मुख रहो, स्वीकार करो. इ-

सीसे मोक्षमन्दिरके सोपानकी श्रेणि उपागत हो, शिवमन्दिरको प्राप्त करो.

इति दशाश्रुत स्कंध—पंचम अध्ययनका संक्षिप्त सार.

[६] छट्ठा अध्ययन.

पंचम गणधर अपने ज्येष्ठ शिष्य जम्बू अणगारको श्रावकोंकी इग्यारा प्रतिमाका विवरण सुनाते हैं. इग्यारा प्रतिमाकी अन्दर प्रथम दर्शनप्रतिमाका व्याख्यान करते हैं.*

वादीयोंमें अज्ञानशिरोमणि, नास्तिकमति, जिसको अक्रियावादी कहते हैं. हेय, उपादेय कोइ भी पदार्थ नहीं है, ऐसी उन्होंकी प्रज्ञा है, ऐसी उन्होंकी दृष्टि है. वहां सम्यक्त्ववादी नहीं है, नित्य (मोक्ष) वादी भी नहीं है. जो शाश्वते पदार्थ है उसको भी नहीं मानते हैं. उस अक्रियावादी नास्तिकोंकी मान्यता है कि यहलोक, परलोक, माता, पिता, अरिहंत, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, नारक, देवता कोइ भी नहीं है, और सुकृत करनेका सुकृत फल भी नहीं है. दुष्कृत करनेका दुष्कृत फल भी नहीं है, अर्थात् पुण्य-पापका फल नहीं है. न परभवमें कोइ जीव उत्पन्न होता है, वास्ते नरक

* प्रथम मिथ्यात्वका स्वरुप ठीक तोरपर न समझा जावे, वहांतक मिथ्यात्वसे अरुचि और सम्यक्त्वपर रुचि होना असंभव है. इसी लिये शास्त्रकारों दर्शनप्रतिमाकी आदिमें वादीयोंके मतका परिचय कराते है.

नहीं है, यावत् सिद्ध भी नहीं है. अक्रियावादीयोंकी ऐसी प्रज्ञा-दृष्टि प्ररुपणा है. ऐसा ही उन्होंका छंदा है, ऐसा ही उन्होंका राग है, और ऐसा ही अभीष्ट है, ऐसे पाप-पुण्यकी नास्ति करते हुवे वह नास्तिकलोक महारंभ, महापरिग्रहकी अन्दर मूर्च्छित है. इसीसे वह लोक अधर्मी, अधर्मानुचर, अधर्मको सेवन करनेवाले, अधर्मको ही इष्ट जाननेवाले, अधर्म बोलनेवाले, अधर्म पालनेवाले, अधर्मका ही जिन्होंका आचार है, अधर्मका प्रचार करनेवाले, रातदिन अधर्मका ही चिंतन करनेवाले, सदा अधर्मकी अन्दर रमणता करते है.

नास्तिक कहते है-इस अमुक जीवोंको मारो, खड्गादिसे छेदो, भालादिसे भेदो, प्राणोंका अंत करो, ऐसा अकृत्य कार्य करते हुवे के हाथ सदैव लोही (रौद्र) से लिप्त रहते है. वह स्वभावसे ही प्रचंड क्रोधवाले, रौद्र, क्षुद्र पर दुःख देनेमें तथा अकृत्य कार्य करनेमें साहसिक, परजीवोंको पाशमे डाल ठगनेवाले, गूढ माया करनेवाले, इत्यादि अनेक कुप्रयोगमें प्रवृत्ति करनेवाले, जिन्होंका दुःशील, दुराचार, दुर्नयके स्थापक, दुर्व्रतपालक, दूसरोंका दुःख देखके आप आनन्द माननेवाले, आचार, गुप्ति, दया, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास रहित है. असाधु, मलिनवृत्ति, पापाचारी, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति अरति, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य-इस अठारा पापोंसे

निवृत्त नहीं, अर्थात् जावजीवतक अठारा पापको सेवन करनेवाले, सर्व कषाय, स्नान, मज्जन, दन्तधावन, मालीस, विलेपन, माला, अलंकार, शब्द, रुप, गंध, रस, स्पर्शसे जावजीवतक निवृत्त नहीं अर्थात् किसी कीस्मका त्याग नहीं है.

सर्वप्रकारकी असवारी गाडी, गाडा, रथ, पालखी, तथा पशु, हस्ती, अश्व, गौ, महिष [पाडा] छाली, तथा गवाल, दासदासी, कामकारी-इत्यादिसेभी निवृत्ति नहीं करी है.

सर्व प्रकारके क्रय-विक्रय, वाणिज्य, व्यापार, कृत्य, अकृत्य तथा सुवर्ण, रुपा, रत्न, माणिक, मोती, धन, धान्य इत्यादि, तथा सर्व प्रकारसे कुडा तोल कुडा मापसेभी निवृत्ति नहीं करी है.

सर्व प्रकारके आरंभ, सारंभ, समारंभ, पचन, पचावन, करण, करावण, परजीवोंको मारना, पीटना, तर्जना करना, वध बंधनसे परको क्लेश देना-इत्यादिसे निवृत्ति नहीं करी है.

जैसा वर्णन किया है, वैसेही सर्व सावद्य कर्त्तव्य के करनेवाले, बोधिबीज रहित, परजीवोंको परिताप उत्पन्न करनेसे जावजीव पर्यंत निवृत्त नहीं है. जैसे दृष्टान्त-कोइ पुरुष वटाणा, मसूर, चीणा, तील, मुंग, उडद-इत्यादि अपने भक्ष्यार्थ दलते है, चूरण करते है. इसी माफिक मिथ्यादृष्टि, अनार्य, मांसभक्षी ज्यों तीतर, वटेवर, लवोक, पारेवा, कपींजल, मयूर, मृग, सुअर, महिष, काच्छप, सर्प-आदि जानवरोंको

विना अपराध मार डालते है. निध्वंस परिणामी, किसी प्रकारकी घृणा रहित ऐसे अनार्य नास्तिक होते है.

ऐसे अक्रियावादीयोंके बाहिरकी परिषद जो दास-दासी, प्रेषक, दूत, भट्ट, सुभट, भागीदार, कामदार, नोकर, चाकर, मेता, पुरुष, कृषीकार-इत्यादि जो लघु अपराध कीया हो, तो उसको बडा भारी दंड देते है. जैसे इसको दंडो, मुंडो, तर्जना, ताडना करो, मारो, पीटो मजबूत बन्धन करो. इसको खाडेमें भाखसीमें डाल दो, इसके शरीरकी हडीयों तोड दो-एवं हाथ, पांव, नाक, कान, ओष्ठ, दान्त-आदि अंगोपांगको छेदन करो, एवं इसका चमडा निकालो, हृदयको भेदो, आंख, दान्त, जीभको छेदन करो, शूली दो, तलवारसे खंड खंड करो, इसको अग्निमें जला दो, इनको सिंहकी पूछमें बांधो, हस्तीके पांव नीचे डालो, इत्यादि लघु अपराध करनेपर अपराधीको अनेक प्रकारके कुमोतसे मारनेका दंड देते है. ऐसी अनार्य नास्तिकोंकी निर्दय वृत्ति है.

आभ्यन्तर परिषद् जैसे माता, पिता, बान्धव, भगीनी, भार्या, पुत्री, पुत्रवधू-इत्यादि. इन्होंसे कभी किंचिन्मात्र अपराध हो जाय, तो आप स्वयं भारी दंड देते है. जैसे शीतकालमें शीतल पाणी तथा उष्णकालमें उष्ण पाणी इसके शरीरपर डालो, अग्निकी अन्दर शरीर तपावों, रसीकर, वेंत कर, नाडीकर, चाबक कर, छडीकर, लताकर, शरीरके पसवाडे प्रहार करो, चामडीको उखेडो, हडीकर, लकडीकर, मुष्टिकर,

कंकर कर, फेदलू कर, मारो, पीटो, परिताप करो, इसी माफिक स्वजन, परजन, परको स्वल्प अपराधका महान् दंड करनेवाले, ऐसे क्रुर पुरुषोंसे उन्होंके परिवारवाले दूर निवास करना चाहते है. जैसे बीलीसे चुहे दूर रहते है. ऐसे निर्दय अनार्योंका इस लोकमें अहित होता है, हमेशां कोपित रहता है, और परलोकमें भी दुःखी होता है. अनेक क्लेश, शोक, संताप पाता है. वह अनार्य दूसरोंकी संपत्ति देख महान् दुःख करता है. उसको नुकशान पहुंचानेका इरादा करता है. वह दुष्ट परिणामी उभय लोकमें दुःखपरंपराको भोगवता है.

ऐसा अक्रियावादी पुरुष, स्त्री संबंधी (मैथुन) कामभोगोंमें मूर्च्छित, गृद्ध, अत्यंत आसक्त, ऐसा च्यार, पांच, छे दश वर्ष तथा स्वल्प या बहुतकाल ऐसे भोगोपभोग भोगवता हुवा बहुत जीवोंके साथ वैर-विरोध कर, बहुत जबर पापकर्म उपार्जन कर, कृतकर्म-प्रेरित तत्काल ही उस पापकर्मोंका भोक्ता होता है. जैसे कि लोहाका गोला पानीपर रखनेसे वह तत्काल ही रसातलको पहुंच जाता है. इसी माफिक अक्रियावादी वज्रपापके सेवनसे कर्मरुप धूली और पापरुप कर्मसे चीकणा बन्ध करता हुवा बहुत जीवोंके साथ वैर, विरोध, धूर्तबाजी, माया, निबिड मायासे परवंचन, आशातना, अयश, अप्रतीतिवाले कार्य करता हुवा बहुत त्रस, स्थावर प्राणीयोंकी घात कर दुर्ध्यान अवस्थामें कालअवसरमें

काल कर घोर अंधकार व्याप्त धरणीतले नरकगतिको प्राप्त होता है.

वह नरकावास अन्दरसे वर्तुल (गोलाकार) बाहरसे चोरस है. जमीन छुरी–अस्तरे जैसी तीक्ष्ण है. सदैव महा अन्धकार व्याप्त, ज्योतिषीयोंकी प्रभा रहित और रौद्र, मांस, चरबी, मेद, पीपपडलसे व्याप्त है. श्वान, सर्प, मनुष्यादिक मृत कलेवरकी दुर्गन्धसे भी अधिक दुर्गन्ध दशों दिशामें व्याप्त है. स्पर्श बडा ही कठिन है. सहन करना बडा ही मुश्कील है. अशुभ नरक, अशुभ नरकवाला वहांपर नारकीके नैरिय किंचित् भी निद्रा–प्रचला करना, सुना, रतिवेदनेका तो स्वप्न भी कहांसे होवे ? सदैवके लिये विस्तरण प्रकारकी उज्वल, प्रकृष्ट, कर्कश, कडुक, रौद्र, तीव्र, दुःख सहन कर सके ऐसी नारककी अन्दर नैरिया पूर्वकृत कर्मोंको भोगवते हुवे विचरते है.

जैसे दृष्टान्त—पर्वतका उन्नत शिखरपरसे मूल छेदा हुवा वृक्ष अपने गुरुत्वपनेसे नीचे स्थान खाडे, खाइ, विषम, दुर्गम स्थानपर पडते है, इसी माफिक अक्रियावादी अपने किये हुवे पापकर्मरुप शस्त्रसे पुन्यरुप वृक्षमूलको छेदन कर, अपने कर्मगुरुत्व कर स्वयं ही नरकादि गतिमें गिरते है. फिर अनेक जाति–योनिमें परिभ्रमण करता हुवा एक गर्भसे दूसरे गर्भमें संक्रमण करता हुवा दक्षिणदिशागामी नारकी कृष्ण-पक्षी भविष्यकालमें भी दुर्लभबोधि होगा. इति अक्रियावादी.

(२) क्रियावादी—क्रियावादी आत्माका अस्तित्व मानते है. आत्माका हितवादी है. ऐसी उसकी प्रज्ञा है, बुद्धि है. आत्महित साधनरुप सम्यग्दृष्टिपना होनेसे समवादी कहा जाते है. सर्व पदार्थोंको यथार्थपने मानते है. सर्व पदार्थोंको द्रव्यास्तिक नयापेक्षासे नित्य और पर्यायास्तिक नयापेक्षासे अनित्य मानते है. सत्यवाद स्थापन करनेवाले है, उन्होंकी मान्यता है कि यह लोक, परलोक अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव है. अस्तिरुप सुकृतका फल है, दुष्कृतका भी फल है, पुण्य है, पाप है. परलोकमें जीव उत्पन्न होते है. पापकर्म करनेसे नरकमें और पुन्यकर्म करनेसे देवलोकमें उत्पन्न भी होते है. नरकसे यावत् सिद्धि तक सर्व स्थान अस्तिभाव है. ऐसी जिसकी प्रज्ञा, दृष्टि, छन्दा, राग, मान्यता है; वह महारंभी यावत् महा इच्छावाला है. तथापि उत्तर दिशाकी नरकमें उत्पन्न होता है. शुक्लपक्षी, स्वल्प संसारी भविष्यमें सुलभबोधि होता है.

नोटः—आस्तिक सम्यग्वादी होनेपर क्या नरकमें जाते है? (उत्तर)—प्रथम मिथ्यात्वावस्थामें नरकायुष बांधा हो, पीछेसे अच्छा सत्संग होनेसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुइ हो. वह जीव नरकमें उत्तर दिशामें जाता है. परन्तु शुक्लपक्षी होनेसे भविष्यमें सुलभबोधि होता है.

इसी प्रकार अक्रियावादीयोंका मिथ्यामत, और क्रियावादीयोंका सम्यक्त्वका जानकार हो, उत्तम धर्मकी अन्दर

रुचिवान् बने, तीर्थंकर भगवानने फरमाये हुवे पवित्र धर्ममें दृढ श्रद्धा रखे. जीवादि पदार्थका स्वरुपको निर्णयपूर्वक समझे. हेय, ज्ञेय और उपादेयका जानकार बने. यह प्रथम सम्यक्त्व प्रतिमा. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंको होती है. सम्यक्त्वकी अन्दर देवादि भी क्षोभ नहीं कर सके. निरतिचार सम्यक्त्वका आराधन करे. परन्तु नवकारसी आदि व्रत प्रत्याख्यान जो जानता हुवा भी मोहनीय कर्मके उदयसे प्रत्याख्यान करनेको असमर्थ है. इति प्रथम सम्यक्त्व प्रतिमा.

(२) दूसरी व्रत प्रतिमा—जो पूर्वोक्त धर्मकी रुचि-वाला होते है, और शील–आचार, व्रत–नवकारसी आदि दश प्रत्याख्यान, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषध (अवैपारादि), ज्ञानादि गुणोंसे आत्माको पुष्ट बनानेको उपवास कर सकते परन्तु प्रत्याख्यानी मोहनीय कर्मोदयसे सामायिक और दिशावगासिक करनेको असमर्थ है. इति दूसरी प्रतिमा.

(३) सामायिक प्रतिमा—पूर्वोक्त सम्यक्त्वरुचि व्रत, प्रत्याख्यान, सामायिक, दिशावगासिक सम्यक् प्रकारसे पालन कर सके. परन्तु अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, (कल्याणक तिथि) प्रतिपूर्ण पौषध करनेमें असमर्थ है इति तीसरी सामायिक प्रतिमा.

(४) चोथी पौषध प्रतिमा—पूर्वोक्त धर्मरुचिसे यावत् प्रतिपूर्ण पौषध कर सके, परन्तु एक रात्रिकी जो प्रतिमा (एक

रात्रिका कायोत्सर्ग करना). यहां पांच बोल धारण करना पडता है. वह करनेमें असमर्थ है. यह प्रतिमा जघन्य एक दोय, तीन रात्रि, यावत् उत्कृष्ट च्यार मास तककी है. इति चौथी पौषध प्रतिमा.

(५) पांचवी एक रात्रिकी प्रतिमा—पूर्वोक्त यावत् पौषध पाल कर और पांच बोल जो—(१) स्नान मज्जनका त्याग. (२) रात्रिभोजन करनेका त्याग. (३) धोतीकी एक पांग राड धीरां धरे. (४) दिनको कुशीलका त्याग. (ब्रह्मचर्य पालन करे) (५) रात्रि समय मर्यादा करे. इस पांच नियमोंको पालन करे. इति पांचवी प्रतिमा उत्कृष्ट पांच मास धरे.

(६) छट्ठी ब्रह्मचर्य प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व कर्म करते हुये सर्वतः ब्रह्मचर्यव्रत पालन करे. इति छट्ठी ब्रह्मचर्य प्रतिमा. छ मास धारण करे.

(७) सचित्त प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व पालन कर और सचित वस्तु खानेका त्याग करे, यावत् सात मास फरे. इति सातवी सचित्त प्रतिमा.

(८) आठवी आरंभ प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व नियम पालन करे और अपने हाथोंसे आरंभ न करे यावत् आठ मास फरे. इति आठवी आरंभ प्रतिमा.

(९) नौवी सारंभ प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व नियम पाले, और अपने वास्ते आरंभादि करे, वह पदार्थ अपने काममें

नहीं आवे. अर्थात् त्याग करे. यावत् नव मास करे. इति नौवी सारंभ प्रतिमा.

(१०) असारंभ प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व नियम पाले और प्रतिमाधारीके निमित्त अगर कोइ आरंभ कर अशनादि देवे, वोभी उसको लेना नही कल्पै. विशेष इतना है कि इस प्रतिमाका आराधन करनेवाले श्रावक खुरमुंडन–शिरमुंडन कराके हजामत करावे, परन्तु शिरपर एक शिखा (चोटी) रखावे ताके साधु श्रावककी पेहिचान रहे. अगर कोइ करम्बवाला आके पूछे उस पर प्रतिमाधारीको दो भाषा बोलनी कल्पै. अगर जानता हो तो कहेकि मैं जानता हुं और न जानता हो तो कहे कि मैं नहीं जानुं. ज्यादा बोलना नहीं कल्पै. यावत् दश मास धरे. इति दशवी प्रतिमा.

(११) श्रमणभूत प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व क्रिया साधन करे खुरमंडन करे. स्वशक्ति शिरलोचन करे. साधुके माफिक वस्त्र, पात्र रखे, आचार विचार साधुकी माफिक पालन करते हुवे चलता हुवा इर्यासमिति संयुक्त च्यार हस्त प्रमाण जमीन देखके चले अगर चलते हुए राहस्ते त्रस प्राणी देखें तो यत्न करे. जीव हो तो अपने पावोंको उंचा नीचा तिरछा रखता हुवा अन्य मार्गमें प्राक्रम करे. भिक्षा के लिये अपना पेजबन्ध मुक्त न होनेसे अपने न्यातके घरोंकी भिक्षा करनी कल्पै. इसमें भी जिस घरपे जल है, पूर्वे चावल तैयार हो और दाल तैयार पीछेसे होती रहे, तो चावल लेना कल्पै, दाल

नहीं कल्पै. अगर पूर्वे दाल तैयार हुइ हो, तो दाल लेना कल्पै, तथा पूर्वे दोनों तैयार हुवा हो, तो दोनों लेना कल्पै. और पूर्वे कभी तैयार न हुवा हो तो दोनों लेना नहीं कल्पै. जिस कुलमें भिक्षा निमित्त जाते है वहांपर कहना चाहिये कि-मैं प्रतिमाधारक श्रावक हुं, अगर उस प्रतिमाधारी श्रावकको देख कोइ पूछे कि-तुम कोन हो ? तब उत्तर देना चाहिये, मैं इग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक हूं. इसी माफिक उत्कृष्ट इग्यार मास तक प्रतिमा आराधन करे, इति.

नोट—प्रथम प्रतिमा एक मासकी है. एकान्तर तपश्चर्या करे. दूसरी प्रतिमा उत्कृष्ट दोय मासकी है. छठ छठ पारणा करे. एवं तीसरी प्रतिमा तीन मासकी, तीन तीन उपवासका पारणा करे. चौथी प्रतिमा च्यार मासकी-यावत् इग्यारवी प्रतिमा इग्यारा मासकी और इग्यार इग्यार उपवासका पारणा करे.

आनन्दादि १० श्रावकोंको इग्यारा प्रतिमा वहानेमें साढे पांच वर्षकाल लगाथा. इसी माफिक तपश्चर्याभी करीथी.

प्रथमकी च्यार प्रतिमा सामान्य रुपसे गृहवासमें साधन होती है. पांचवी प्रतिमा कार्तिकशेठने १०० वार वहन करीथी. प्रायः इग्यारवी प्रतिमा वहनकर आयुष्य अधिक हो तो दीक्षा ग्रहन करते है. इति.

इति छट्ठा अध्ययनका संक्षिप्त सार.

—०c०—

(७) सातवां भिक्षुप्रतिमा नामका अध्ययन.

(१) प्रथम एक मासकी भिक्षु प्रतिमा. (२) दो मासकी भिक्षु प्रतिमा. (३) तीन मासकी भिक्षु प्रतिमा. (४) च्यार मासकी भिक्षु प्रतिमा. (५) पांच मासकी भिक्षु प्रतिमा. (६) छे मासकी भिक्षु प्रतिमा. (७) सात मासकी भिक्षु प्रतिमा. (८) प्रथम सात अहोरात्रिकी आठवी भिक्षु प्रतिमा. (९) दूसरी सात अहोरात्रिकी नौवी भिक्षु प्रतिमा. (१०) तीसरी सात अहोरातकी दशवी भिक्षु प्रतिमा. (११) अहोरातकी इग्यारवी भिक्षु प्रतिमा. (१२) एक रात्रिकी वारहवी भिक्षु प्रतिमा.

(१) एक मासकी प्रतिमा स्वीकार करनेवाले मुनिको एक मास तक अपने शरीरकी चिंता (संरक्षण) करना नहीं कल्पै. जो कोइ देव, मनुष्य, तिर्यंच, संवन्धी परीपह उत्पन्न हो, उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करना चाहिये.

(२) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको प्रतिदिन एक दात भोजनकी, एक दात आहारकी लेना कल्पै. वह भी अज्ञात कुलसे शुद्ध निर्दोष लेना, आहार ऐसा लेना कि जिसको वहुतसे दुपद, चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, मंगा भी नहीं इच्छता हो, वह भी एकला भोजन करता हो वहांसे लेना कल्पै. परन्तु दोय, तीन, च्यार, पांच या वहुतसे भोजन करते हो, वहांसे लेना नहीं

कल्पै. तथा गर्भवतीके लिये, बालकके लिये किया हुवा भी नहीं कल्पै. जो स्त्री अपने बच्चेको स्तनपान कराती हो, उन्हके हाथसे भी लेना नहीं कल्पै. दोनों पांव डेलीकी अन्दर हो, दोनों पांव डेलीकी बाहार हो, तो भी भिक्षा लेना नहीं कल्पै. अगर एक पांव बाहार, एक पांव अन्दर हो तो भिक्षा लेना कल्पै.

(३) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको गौचरी निमित्ते दिनका आदि, मध्यम और अन्तिम-ऐसे तीन काल कल्पै. जिसमें भी जिस कालमें भिक्षाको जाते हैं, उसमें भिक्षा मिले, न मिले तो इतनेमें ही सन्तोष रखे. परन्तु शेषकालमें भिक्षाको जाना नहीं कल्पै.

(४) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको छे प्रकारसे गौचरी करनी कल्पै—(१) पेला सम्पूर्ण संदुकके आकार च्यारों कौनोंके घरोंसे भिक्षा ग्रहन करे. (२) अर्द्धपेला, एक तर्फके घरोंसे भिक्षा ग्रहन करे. (३) गौमूत्रिका—एक इधर एक उधर घरोंसे भिक्षा ग्रहन करे. (४) पतंगीया—पतंगकी माफिक एक घर किसी महोलाका तो दूसरा किसी महोलाका घरसे भिक्षा ग्रहन करे. (५) संखावर्तन—एक घर उंचा, एक घर नीचासे भिक्षा ग्रहन करे. (६) सम—सीधा-पंक्तिसर घरोंकी भिक्षा करे.

(५) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको

जहांपर लोग जान जावे कि यह प्रतिमाधारी मुनि हैं, तो वहां एक रात्रिसे अधिक नहीं ठहर सके, अगर न जाने तो दोय रात्रि ठहर सके. इसीसे अधिक जितने दिन ठहरे उतना ही छेद या तपका प्रायश्चित होते है. यहांपर ग्रामादि अपेक्षा है, न कि जंगलकी.

(६) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिकों च्यार प्रकारकी भाषा बोलनी कल्पै. (१) याचनी—अशनादिककी याचना करना. (२) पृच्छना—प्रश्नादि तथा मार्गका पूछना. (३) अणवणि—गुर्वादिकी आज्ञा तथा मकानादिकी आज्ञाका लेना. (४) पूछा हुवा प्रश्नादिका उत्तर देना.

(७) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिको तीन उपासरोंकी प्रतिलेखना करना कल्पै. (१) आराम—बगीचोंके बंगलादिके नीचे. (२) मंडप—छत्री आदि विकट स्थानोंमें. (३) वृक्षके नीचे.

(८) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों उक्त तीनों उपासरोंकी आज्ञा लेना कल्पै.

(९) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों उक्त तीनों उपासरोंमें निवास करना कल्पै.

(१०) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों तीन संथारा (बिछाना) कि प्रतिलेखना करना कल्पै. (१)

पृथ्वीशिलाका पट. (२) काष्टका पाट. (३) यथा तैयार किया हो वैसा.

(११) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनि जिस मकानमें ठहरे हो, वहांपर कोइ स्त्री तथा पुरुष आया हो तो उसके लिये मुनिको उस मकानसे नीकलना तथा प्रवेश करना नहीं कल्पै. भावार्थ—कोइ पुन्यवान् आया हो, उसको सन्मान देना या दबावके लिये उस मकानसे अन्य स्थानमें नीकलना तथा अन्य स्थानमें प्रवेश करना नहीं कल्पै.

(१२) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनि ठहरा हो उसी उपाश्रयमें अग्नि प्रज्वलित हो गइ हो तो भी उस अग्निके भयसे अपना शरीरपर ममत्वभावके लिये वहांसे नीकलना तथा अन्य स्थानमें प्रवेश करना नहीं कल्पै. अगर कोइ गृहस्थ मुनिको देखके विचार करे कि इस अग्निमें यह मुनि जल जायगा. मैं इसको निकालुं. ऐसा विचारसे मुनिकी बांह पकडके निकाले तो उस मुनिको नहीं कल्पै कि उस निकालनेवाले गृहस्थको पकडके रोक रखे. परन्तु मुनिको कल्पै कि आप इर्यासमिति सहित चलता हुवा इस मकानसे निकल जावे.

भावार्थ—प्रतिमाधारी मुनि अपने लिये परिषह सहन करे, परन्तु दूसरा अपनेको निकालनेको आया हो, अगर उस समय आप नहीं नीकले, तो आपके निष्पक्ष उस गृहस्थको

नुकशान होता है. वास्ते उस गृहस्थके लिये आप जल्दी नीकल जावे.

(१३) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिके पगमें कांटा, खीला, कांकर, फंस भांग जावे तो, उसे नीकालना नहीं कल्पै. परिषहको सहन करता हुवा इर्या देखता चले.

(१४) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको आं-खमें कोइ जीव, रज, फुस, कचरा पड जावे तो उस मुनिको निकालना नहीं कल्पै. परीषहको सहन करता हुवा विहार करे.

(१५) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनि चलते हुवे जहांपर सूर्य अस्त हो, वहांपरही ठहर जाना चाहिये. चाहे वह स्थल हो, जल हो, खाड, खाइ, पहाड, पर्वत, वि-षमभूमि क्यों न हो, वह रात्रि तो वहांही ठहरना, सूर्यास्त होनेपर एक पांवभी नहीं चलना. जब सूर्य उदय हो, उस स-मय जिस दिशामें जानेकी इच्छा हो, वहांपरभी जा सकते है.

(१६) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको जहां पासमें पृथ्व्यादि हो, वहां ठहरके निद्रा या विशेष निद्रा करना नहीं कल्पै. कारण-सुते हुवाका हस्तादिका स्पर्श उस पृथ्व्या-दिसे होगा तो जीवोंकी विराधना होगी, वास्ते दूसरा निर्दोष स्थानको देख रहै, वहांपर आनाजाना सुख पूर्वक हो सक्ता है. मुनिको लघुनीत, वडीनीतकी बाधाकोभी रोकना नहीं कल्पै. कारण—यह रोगवृद्धिका कारण है. इस वास्ते पेस्तर

भूमिकाका प्रतिलेखन कर कारण हो उस समय वहां जाके निवृत्त होना कल्पै. फिर उसी स्थानपर आके कायोत्सर्ग करे.

(१७) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनि विहार कर आया हो उसके पांव सचित्त रज, पृथ्व्यादि संयुक्त हो, उस समय गृहस्थोंके कुलमें भिक्षा के लीये जाना नहीं कल्पै. अगर असा मालुम हो कि वह सचित्त रज पसीनेसे, मैलसे कर्दमसे उसके जीव विध्वंस हो गये है, तो उस मुनिको गृहस्थोंके कुलमें भिक्षा के लिये आनाजाना कल्पै.

(१८) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको शीतल पानीसे तथा गरम पानीसे हस्त, मुख, दान्त, नेत्र पांवादि शरीर धोना नहीं कल्पै. अगर शरीरके अशुचि मलमूत्रादिका लेप हो, तो धोना कल्पै. तथा भोजनके अंतमे हस्त, मुखादि साफ करे.

(१९) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिके सामने अश्व, हस्ती, बैल, भैंसा, सूवर, कुत्ता, व्याघ्र, सिंह तथा मनुष्य जो दुष्ट क्रुर स्वभाववाला और उन्मत्त हुवा आता हो, तो प्रतिमाधारी मुनि चलता हुवाकों पीछा हठना नहीं कल्पै. अर्थात् अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पीछा न हठे. अगर अदुष्ट जीव हो, मुनिको देख भागता हो, भीडकता हो तो उस जीवोंकी दया निमित्ते मुनि युग (च्यार हस्त) पीछा हठ सकते हैं.

(२०) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिको धूपसे छायामें आना और छायासे धूपमें जाना नहीं कल्पै. धूप, शीतके परीषहको सम्यक्प्रकारसे सहन करनाही कल्पै.

निश्चय कर यह मासिक भिक्षु प्रतिमा प्रतिपन्न अनगारको जैसे अन्य सूत्रोंमे मासिक प्रतिमाका अधिकार मुनियोंके लीये बतलाया है, जैसे इसका कल्प हैं, जैसे इसका मार्ग है, वैसेही यथावत् सम्यक् प्रकारसे परीषहोंको कायाकर स्पर्श करता हुवा, पालता हुवा, अतिचारोंको शोधता हुवा, पार पहुंचाता हुवा, कीर्त्ति करता हुवा जिनाज्ञाको प्रतिपालन करता हुवा मासिक प्रतिमाको आराधन करे. इति.

(२) दो मासिक भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करनेवाले मुनि दोय मास तक अपनी काया (शरीर) की सार संभालको छोड देते है. जो कोइ देव, मनुष्य, तिर्यच संबन्धी परीषह उत्पन्न होते है, उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे, शेष अधिकार मासिक भिक्षु प्रतिमावत् समझना, परन्तु यहां दोय दात आहारकी, दोय दात पाणीकी समझना. इति । २ ।

(३) एवं तीन मासिक भिक्षु प्रतिमा. परन्तु भोजन, पाणीकी तीन तीन दात समझना. (४) एवं च्यार मासिक भिक्षु प्रतिमा परंतु भोजन पाणिकी च्यार च्यार दात समझना. (५) एवं पांच मासिक भिक्षु प्रतिमा. परन्तु पांच पांच दात समझना. (६) छे मासिक. दात छे छे. (७)

एवं सात मासिक भिक्षु प्रतिमा. परन्तु भोजन पाणीकी दातों सात सात समझना. शेषाधिकार मासिक प्रतिमावत् समझना. इति । ७ ।

(८) प्रथम सात रात्रि नामकी आठवीं भिक्षु प्रतिमा. सात अहोरात्रि शरीरको वोसिरा देते हैं. बिलकुल निर्मम, निःस्पृही रहते हैं. पानी रहित एकान्तर तप करते हैं. ग्राम यावत् राजधानीके बाहार दिनमें सूर्यके सन्मुख आतापना और रात्रिमें ध्यान करते हैं वह भी आसन लगाके. (१) चिते सुता रहेना. (२) एक पसवाडेसे सोना. (३) सर्व रात्रि कायोत्सर्गमें बैठ जाना. उस समय देव, मनुष्य, तिर्यंचके उपसर्ग हो, उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करना परन्तु ध्यानसे चोभित होना नहीं कल्पे. अगर मल-मूत्रकी बाधा हो तो पूर्व प्रतिलेखन करी हुई भूमिकापर निर्वृत्त हो, फिर उसी आसनसे रात्रि निर्गमन करना कल्पे. यावत् पूर्ववत् अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेपर आज्ञाका आराधक हो सकता है ॥८॥

(९) दूसरे सात रात्रि नामकी नौवी भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करनेवाले मुनियोंको यावत् रात्रिमें दंडासन, लगड आसन (प्रजापतिके ढांचाके आकार शिर और पांव भूमिपर और सर्व शरीर उर्ध्व होता है.) उफटु आसनसे कायोत्सर्ग करे. शेषाधिकार पूर्ववत् यावत् आज्ञाका आराधक होता है ॥९॥

(१०) तीसरे सात रात्रि नामकी दशवी भिक्षु प्रतिमा

यावत् रात्रिमें आसन (१) गोदोहासन, जैसे पांवोंपर बेठके गायको दोते है. (२) वीरासन, जैसे खुरसीपर बेठनेके वाद खुरसी निकाल ली जावे. (३) आम्रखुज, जैसे अधोशिर और पांव उपर. यह तीन आसन करे. शेषाधिकार पूर्वकी माफिक. यावत् आराधक होता है.

(११) अहोरात्र नामकी इग्यारवी भिक्षु प्रतिमा. छठ तप कर ग्रामादिके वाहार जाके ध्यान करे. कुछ शरीरको नमाता हुवा दोनों पांवोके आगे आठ अंगुल, पीछे सात अंगुल अन्तर रख ध्यानारुढ हो. वहांपर उपसर्गादि हो उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे. यावत् पूर्वकी माफिक आराधक होता है.

(१२) एक रात्रि नामकी वारहवी भिक्षु प्रतिमा—अठम तप कर ग्रामादिके वाहार श्मशानमें जाके शरीर ममत्व त्याग कर पूर्वकी माफिक पांवोंको और दोनों हाथोंको निराधार, एक पुद्गलोपर दृष्टि स्थापनकर आंखोंको नहीं टमकारता हुवा ध्यान करे. उस समय देव, मनुष्य, तिर्यंच संबन्धी उपसर्ग हो उसे अगर सम्यक् प्रकारसे सहन न करे, तो तीन स्थानपर अहित, असुख, अकल्याण, अमोक्ष, अननुगामित होते है. वह तीन स्थान-(१)उन्माद (वेभानी), (२) दीर्घ कालका रोगका होना, (३) केवली प्ररुपित धर्मसे भ्रष्ट होता है. अगर एक रात्रिकी भिक्षु प्रतिमाको सम्यक् प्रकारसे आराधन करे, उपसर्गोंसे क्षोभित न हो, तो तीन स्थान—हित,

सुख, कल्याण, मोक्ष, अनुगामित होते है. (१) अवधिज्ञानकी प्राप्ति, (२) मनःपर्यवज्ञानकी प्राप्ति, (३) केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है. इसी माफिक एक रात्रिकी भिक्षुप्रतिमाको जैसे इसका कल्पमार्ग यावत् आज्ञाका आराधक होते है. इति । १२ ।

नोट—मुनियोंकी बारहा प्रतिमा यहांपर बतलाइ है. इसके सिवायभी सात सतमीया, आठ आठमीया, नौ नौमीया, दश दशमिया भिक्षु प्रतिमाः जवमज्ञ, चन्द्रमज्ञ, भद्रप्रतिमा, महाभद्रप्रतिमा, सर्वोत्तर भद्रप्रतिमा, आदि भिक्षु प्रतिमा शास्त्रकारोंने बतलाइ है. प्रायः प्रतिमा वह ही धारण करते है, कि जिन्होंके वज्र ऋषभ नाराच संहनन होते है. प्रतिमा एक विशेष अभिग्रहको कहते हैं. शरीर चले जाने—मरणान्त कष्ट होनेपरभी अपने नियमसे क्षोभित न होना उसीका नाम प्रतिमा है.

इति दशाश्रुत स्कन्ध सातवा अध्ययनका संक्षिप्त सार.



[८] आठवा अध्ययन.

तेणं कालेणं इत्यादि तस्मिन् काले तस्मिन् समये, काल चतुर्थ आरा, समय—चतुर्थ आरेमें तेवीश तीर्थंकर हुवे है. उसमें यह बात कौनसे समयकी है, इसका निर्णय करनेको कहते है कि समय वह है कि जो भगवान् वीर प्रभु विचर रहेथे.

भगवान् वीरप्रभुके पांच हस्तोत्तर नक्षत्र (उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र था) (१) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें दशवा देवलोकसे चवके देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें अवतार धारण किया. (२) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानका संहरण हुवा, अर्थात् देवानंदाकी कुखसे हरिणगमेपी देवताने त्रिशलादे राणीकी कुखमें संहरण कीया. (३) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानका जन्म हुवा (४) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानने दीक्षा धारण करी. (५) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुवा. यह पांच कार्य भगवानके हस्तोत्तरा नक्षत्रमें हुवा है. और स्वांति नक्षत्रमे भगवान् वीर प्रभु मोक्ष पधारेथे. शेषाधिकार पर्युषणाकल्प अर्थात् कल्पसूत्रमें लिखा है. श्रीभद्रबाहुस्वामी यह दशाश्रुत स्कन्ध रचा है. जिसका आठवा अध्ययनरुप कल्पसूत्र है. उसके अर्थरुप भगवान वीरप्रभु बहुतसे साधु, साध्वीयों, श्रावक, श्राविका, देव, देवीयोंके मध्यमे विराजमान हो फरमाया है. उपदेश किया है. विशेष प्रकारसे प्ररुपणा करते हुवे वारवार उपदेश किया है.

इति आठवा अध्ययन.

—:o:—

[९] नौवा अध्ययन.

महा मोहनीय कर्म बन्धके ३० स्थान है.

चंपानगरी, पूर्णभद्रोद्यान, कोणिकराजा, जिसकी धारिणी राणी, उस नगरीके उद्यानमें भगवान् वीर प्रभुका आग-

मन हुवा, राजा कोणिक सपरिवार च्यार प्रकारकी सेना सहित तथा नगरीके लोक भगवानको वन्दन करनेको आये. भगवानने विचित्र प्रकारकी धर्मदेशना दी. परिषद देशनामृतका पान कर पीछे गमन कीया.

भगवान् अपने साधु, साध्वीयोंको आमंत्रण कर कहते हुवेकि—हे आर्यो ! महा मोहनीय कर्मबन्धके तीस स्थान अगर पुरुष या स्त्रीयों वारवार इसका आचरण करनेसे समाचरते हुवे महामोहनीय कर्मका वन्ध करते है. वहही तीस स्थान मैं आज तुमको सुनाता हुं, ध्यान देके सुनो—

(१) त्रस जीवोंको पाणीमें डुवा डूबा के मारता है. वह जीव महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है. (२) त्रस जीवोंका श्वासोश्वास वन्धकर मारनेसे—(३) त्रस जीवोंको अग्नि या धूमसे मारनेसे—(४) सर्व अंगमें मस्तक उत्तम अंग है, अगर कोइ मस्तकपर घाव कर मारता है, वह जीव महा मोहनीय कर्म उपार्जन करता है. (५) मस्तकपर चर्म वींटके जीवोंको मारता है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है. (६) कोइ वावले, गूंगे, लूले, लंगडे या अज्ञानी जीवोंको फल या दंडसे मारे या हांसी, ठठा, मस्करी करते है, वह महा मोहनीय कर्म वान्धता है. (७) जो कोइ आचारी नाम धराता हुवे, गुप्तपणे अनाचारको सेवन करे, अपना अनाचार गुप्त रखनेके लीये असत्य वोले तथा वीतरागके वचनोंको गुप्त रख आप उत्सूत्रोंकी प्ररुपणा करे, तो महा मोहनीय कर्म बांधे.

सना करे, वह बाल अज्ञानी महा मोहनीय—(२२) जो आचार्योपाध्यायके पास ज्ञान, ध्यान कर आप अभिमान, गर्वका मारा उसी उपकारी महा पुरुषोंकी सेवा भक्ति, विनय, वैयावच्च, यश कीर्ति न करे तो महा मोहनीय. (२३) जो कोइ अवहुश्रुत होनेपरभी अपनी तारीफ बढाने कारण लोगोंसे कहैकि—मैं बहुश्रुत अर्थात् सर्व शास्त्रोंका पारगामी हुं. ऐसा असद्वाद वदे तो महा मोहनीय. (२४) जो कोइ तपस्वी होनेका दावा रखे, अर्थात् अपना कृश शरीर होनेसे दुनीयांको कहै कि मैं तपस्वी हूं-तो महा मोह. (२५) जो कोइ साधु शरीरादिसे सुदृढ सहननवाला होनेपरभी अभिमानके मारे विचारेकि—मैं ज्ञानी हूं, बहुश्रुत हूं, तो ग्लानादिकी वैयावच्च क्यों करुं? इसनेभी मेरी वैयावच्च नहीं करीथी, अथवा ग्लान, तपस्वी, वृद्धादिकी वैयावच्च करनेका कबूल कर फिर वैयावच्च न करे तो महा मोहनीय कर्म उपार्जन करे. (२६) जो कोइ चतुर्विध संघमें क्लेशवृद्धि करना, छेद, भेद डलाना, फुट पाड देना—ऐसा उपदेश दे कथा करे करावे तो महा मोहनीय—(२७) जो कोइ अधर्मकी प्ररुपणा करे तथा यंत्र, मंत्र, तंत्र, वशीकरण प्रयुंजे ऐसे अधर्मवर्धक कार्य करे, तो महामोहनीय. (२८) जो कोइ इस लोक-मनुष्य संबन्धी परलोक-देवता संबन्धी, कामभोगसे अतृप्त अर्थात् सदैव कामभोगकी अभिलाषा रख, जहां मरणावस्था आगइ हो, वहांतकभी कामाभिलाष रखे, तो महा मोहनीय. (२९) जो कोइ देवता महाऋद्धि, ज्योति, कान्ति, महाबल, महायशका धणी देव है, उसका अवर्णवाद बोले,

निन्दा करे, अथवा कोइ व्रत पालके देवता हुवा है, उसका अवर्णवाद बोले तो, महामोहनीय. (३०) जिसके पास देवता नहीं आता है, जिन्होंने देवतावोंको नहीं देखा हो और अपनी पूजा, प्रतिष्ठा मान बढानेके लीये जनसमूहके आगे कहेकि-च्यार जातिके देवतावोंसे अमुक जातिका देवता मेरे पास आता है, तो महामोहनीय कर्म उपार्जन करे.

यह ३० कारणोंसे जीव महा मोहनीय कर्म उपार्जन (बन्ध) करता है. वास्ते मुनिमहाराज इन कारणोंको सम्यक् प्रकारसे जानके परित्याग करे. अपना आत्माका हितार्थ शुद्ध चारित्रका खप करे. अगर पूर्वावस्थामें इस मोहनीय कर्म बन्धके स्थानोंको सेवन कीया हो, उस कर्मक्षय करनेको प्रयत्न करे. आचारवन्त, गुणवन्त, शुद्धात्मा क्षान्त्यादि दश प्रकारका पवित्र धर्मका पालन कर पापका परित्याग, जैसा सर्प कांचलीका त्याग करता है, इसी माफिक करे. इस लोक और परलोकमें कीर्तिभी उसी महा पुरुषोंकी होती है कि जिन्होंने ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप कर इस मोहनेन्द्रका मूलसे पराजय कीया है. अहो शूरवीर ! पूर्ण पराक्रमधारी ! तुमारा अनादि कालका परम शत्रु जो जन्म, जरा, मृत्युरुप दुःख देनेवालाका जल्दी दमन करो. जिससे चेतन अपना निजस्थानपर गमन करता हुवेमें कोइ विघ्न न करे. अर्थात् शाश्वत सुखोंमे विराजमान होवे. ऐसा फरमान सर्वज्ञका है.

॥ इति चौथा अध्ययन समाप्त ॥

(१०) दशवां अध्ययन.

नौ निदानाधिकार.

राजगृह नगर, गुणशीलोद्यान, श्रेणिक राजा, चेलणा राणी, इस सबका वर्णन जैसा उववाइजी सूत्रके माफिक समझना.

एक समय राजा श्रेणिक स्नान मज्जन कर, शरीरको चन्दनादिकका लेपन किया, कंठकी अन्दर अच्छे सुगन्धिदार पुष्पोंकी मालाको धारण कर सुवर्ण आदिसे मंडित, मणि आदि रत्नोंसे जडित भूपणोंको धारण किये, हाथोंकी अंगुलियोंमें मुद्रिका पहनी, कम्मरकी अन्दर कंदोरा धारण किया है, मुगटसे मस्तक सुशोभनीक बना है, इत्यादि अच्छे वस्त्र-भूपणोंसे शरीरको कल्पवृत्तकी माफिक अलंकृत कर, शिरपर कोरंटवृत्तकी माला संयुक्त छत्र धरावता हुवा, जैसे ग्रहगण, नत्तत्र, तारोंके सुपरिवारसे चन्द्र आकाशमें शोभायमान होता है. इसी माफिक भूमिके भूषणरुप श्रेणिक नरेन्द्र, जिसका दर्शन लोगोंको परमप्रिय है. वह एक समय बाहारकी आस्थानशालाकी अन्दर आ कर राजयोग्य सिंहासनपर बैठके अपने अनुचरोंको बुलवायके ऐसा आदेश करता हुवा— तुम इस राजगृह नगरकी बाहार आराममें जावो, जहां स्त्री-पुरुष क्रीडा करते हो, उद्यान जहां नानाप्रकारके वृत्त, पुष्प, पत्रादि होते है. कुंभकारादिकी शाला, यत्तादिके देवालय,

सभाके स्थानोंमें पाणीके पर्वकी शाला, करियाणेकी शाला, वैपारीयोंकी दुकानोंमें, रथोंकी शालाओंमें, तुनादिकी शालामें, सुतारोंकी शालामें, तुनारोंकी शालामें, इत्यादि स्थानोंमें जाके कहो कि—राजा श्रेणिक (अपरनाम भंभसार) की यह आज्ञा है कि श्रमणभगवन्त वीरप्रभु पृथ्वीमंडलको पवित्र करते हुवे, एक ग्रामसे दूसरे ग्राम विहार करते हुवे, सुखे सुखे तप-संयमकी अन्दर अपनी आत्माको भावते हुवे, यहांपर पधार जावे तो तुम लोग उन्होंको बडा आदरसत्कार करके स्थानादि जो चाहिये उन्होंकी आज्ञा दो, भक्ति करो, बादमे भगवान् पधारनेकी खुश खबर राजा श्रेणिकको शीघ्रता पूर्वक देना, ऐसा हुकम राजा श्रेणिकका है.

आदेशकारी पुरुषों इस श्रेणिकराजाका हुकमको सविनय सादर कर—कमलोंसे अपना शिरपर चढाके बोलेकि—हे धराधिप ! यह आपका हुकम मैं शीघ्रता पूर्वक सार्थक करुंगा. ऐसा कहके वह कुटम्बीक पुरुष राजगृह नगरके मध्य भाग होके नगरकी वाहार जाके जो पूर्वोक्त स्थानोंमे राजा श्रेणिकका हुकमकी उद्घोपणा कर शीघ्रतासे राजा श्रेणिकके पास आके आज्ञाको सुप्रत करदी.

उसी समय भगवान् वीरप्रभु, जिन्होंका धर्मचक्र आकाशमें चल रहा है, चौदा हजार मुनियों, छत्तीस हजार साध्वीयों क्रोटिगमे देव-देवीयोंके परिवारसे भूमंडलको पवित्र करते हुवे राजगृह नगरके उद्यानमें समवसरण करते हुवे.

राजगृह नगरके दो, तीन, च्यार यावत् बहुतसे रास्ते-पर लोगोंको खबर मिलतेही बडे उत्साहसे भगवान्‌को वन्दन करनेको गये. वन्दन नमस्कार कर, सेवा भक्ति कर अपना जन्म पवित्र कर रहेथे.

भगवानको पधारे हुवे देखके महत्तर वनपालक भगवान्‌के पास आया, भगवान्‌का नाम—गोत्र पूछा और हृदयमें धारण कर वन्दन नमस्कार कीया. बादमे वह सब वनपालक लोक एकत्र मिल आपसमे कहने लगे—अहो ! देवाणुप्रिय ! राजा श्रेणिक जिस भगवानके दर्शनकी अभिलापा करते थे वह भगवान् आज इस उद्यानमें पधार गये है. तो अपनेको शीघ्रता पूर्वक राजा श्रेणिकसे निवेदन करना चाहिये.

सब लोक एकत्र मिलके राजा श्रेणिकके पास गये. और कहेते हुवे कि—हे स्वामिन् ! जिस भगवानके दर्शनकी आपको प्यास थी अभिलापा करते थे, वह भगवान् वीरप्रभु आज उद्यानमें पधार गये है. यह सुनकर राजा श्रेणिक वडाही हर्प संतोपको प्राप्त हुवा सिंहासनसे उठ जिस दिशामे भगवान् विराजमान थे, उसी दिशामें सात आठ कदम जाके नमोत्थुणं देके बोला कि--हे भगवान् ! आप उद्या-नमें विराजमान हो, मैं यहांपर रहा आपको वन्दन करता हूं आप स्वीकार करीये.

बादमें राजा श्रेणिक उस खबर देनेवालोंका वडाही

आदर, सत्कार कीया और वधाइकी अन्दर इतना द्रव्य दीया कि उन्होंकी कितनी परंपरा तक भी खाया न जाय. बादमें उन्होंको विसर्जन किया और नगर गुतीया (कोटवाल) को बुलायके आदेश करते हुवे कि--तुम जावों राजगृह नगर अभ्यंतर और बाहारसे साफ करवाओं, सुगन्धि जलसे छंटकाव करवाओं, जगे जगेपर पुष्पोंके ढेर लगवावो, सुगन्धि धूपसे नगर व्याप्त कर दो-इत्यादि आज्ञाको शिरपर चढाके कोटवाल अपने कार्यमें प्रवृत्ति करता हुवा.

राजा श्रेणिक सेनापतिको बुलाके आज्ञादि कि तुम जावे-हस्ती, अश्व, रथ और- पैदल-यह च्यार प्रकारकी सेना तैयार कर हमारी आज्ञा वापीस सुप्रत करो. सेनापति राजाकी आज्ञाको सहर्ष स्वीकार, अपने कार्यमें प्रवृत्ति कर आज्ञा सुप्रत कर दी.

राजा श्रेणिक अपने रथकारको बुलवाय हुकम किया कि-धार्मिक रथ तैयार कर उत्थानशालामें लाके हाजर करो. राजाके हुकमको शिरपर चढाके सहर्ष रथकार रथशालामें जाके रथकी सर्व सामग्री तैयार कर, बहेलशालामें गया. वहांसे अच्छे, देखनेमें सुंदर चलनेमे शीघ्र चालवाले युवक वृषभोंको निकाल, उसको स्नान कराके अच्छे भूषण वस्त्र (झूलों) धारण करा रथके साथ जोड, रथ तैयार कर, राजा श्रेणिकसे अर्ज करी कि-हे नाथ! आपकी आज्ञा माफिक यह रथ तैयार है. रथकारकी यह बात श्रवण कर अर्थात् रथकी सजावटको देख-

कर राजा श्रेणिक वडाही हर्षको प्राप्त हुवा आप मज्जन घरमें प्रवेश करके स्नान मज्जन कर पूर्वकी माफिक अच्छे सुन्दर वस्त्रभूषण धारण कर, कल्पवृक्षकी माफिक बनके जहांपर चेलणा राणी थी, वहांपर आया और चेलणा राणीसे कहा कि–हे प्रिया ! आज श्रमणभगवान् वीरप्रभु गुणशीलोद्यानमें पधारे हुवे है. उन्होंका नाम--गोत्र श्रवण करनेका भी महाफल है, तो भगवान्को वन्दन करना, नमस्कार करना और श्रीमुखसे देशना श्रवण करना इसके फलका तो कहेना ही क्या ? वास्ते चलो भगवान्को वन्दन--नमस्कार करे, भगवान् महामंगल है. देवताके चैत्यकी माफिक उपासना करने योग्य है. राणी चेलणा यह वचन सुनके वडा ही हर्षको प्राप्त हुइ. अपने पतिकी आज्ञाको शिरपे चढाके आप मज्जन घरमें प्रवेश किया. वहांपर स्वच्छ सुगन्धि जलसे सविधि स्नान--मज्जन कर शरीरको चन्दनादिसे लेपन कर (कृतवलिकर्म–देवपूजन करी है) शरीरमें भूषण, जैसे पावोंमें नेपुर, कम्मरमें मणिमंडित कंदोरा, हृदयपर हार, कानोंमें चमकते कुंडल, अंगुलीयोंमें मुद्रिका, उत्तम खलकती चुडीयें, मांदलीये–इत्यादि रत्नजडित भूषणोंसे सुशोभित, जिसके कुंडलोंकी प्रभाने वदनकी शोभामे वृद्धि करी है. पेहने है कान्तिकारी रमणीय, वडा ही सुकुमाल जो नाककी हवासे उड जावे, मक्कीके जाल जैसे वस्त्र, और भी सुगन्धि पुष्पोंके बने हुवे तुरे गजरे, सेहरे, मालाओं आदि धारण किया है. चर्चित चन्दन कान्तिकारी है दर्शन जिन्होंका, जिसका रूप

विलास आश्चर्यकारी है–इत्यादि अच्छा सुन्दर रुप शृंगार कर बहुतसे दास–दासीयों नांजर फोजोंके परिवारसे अपने घरसे नीकले बाहारकी उत्थानशालामें चेलणा राणी आइ है.

राजा श्रेणिक चेलणा राणी साथमें रथपर बैठके राजगृह नगरके मध्य बाजार होके जैसे उववाइजी सूत्रमें कोणिक वन्दनाधिकारमें वर्णन किया है. इसी माफिक बडे ही आडम्बरसे भगवानको वन्दन करनेको गये. भगवानके छत्रादि अतिशयको देख आप सवारीसे उतर पैदल पांच अभिगम धारण करते हुवे जहां भगवान् विराजमान थे वहांपर आये. भगवानको तीन प्रदक्षिणा दे वन्दन–नमस्कार कर राजा श्रेणिकको आगे कर चेलणा आदि सब लोग भगवानकी सेवा–भक्ति करने लगे.

उस समय भगवान् वीरप्रभु राजा श्रेणिक, राणी चेलणा आदि मनुष्य परिषद, यति परिषद, मुनि परिषद, देव परिषद, देवी परिषद–इत्यादि १२ प्रकारकी परिषदकी अन्दर विस्तारसे धर्मकथा सुनाइ. विस्तार उववाइजी सूत्रसे देखे.

परिषद भगवान्की मधुर अमृतमय देशना श्रवण कर बडा ही आनन्द पाया, यथाशक्ति व्रत, प्रत्याख्यान कर अपने अपने स्थानकी तर्फ गमन किया. राजा श्रेणिक राणी चेलणा भी भगवानकी भवतारक देशना सुन; भगवान्को वन्दन–नमस्कार कर अपने स्थानपर गमन किया.

वहांपर भगवान्के समवसरणमें रहे हुवे कितनेक साधु-

साध्वीयों राजा श्रेणिक और राणी चेलणाको देखके उसी साधु साध्वीयोंके ऐसे अध्यवसाय, मनोगत परिणाम हुवाकि— अहो ! आश्चर्य ! यह श्रेणिक राजा वडा महर्द्धिक, महाऋद्धि, महा ज्योति, महाकान्ति, यावत् महासुखके धणी, जिन्होंने किया है स्नान मज्जन, शरीरको वस्त्र भूषणसे कल्पवृक्ष सदृश बनाया है. और चेलणा राणी यहभी इसी प्रकारसे एक शृंगारका घर है. जिसके राजा श्रेणिक मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगवता हुवा विचर रहा है. हमने देवता नहीं देखे है, परन्तु यह प्रत्यक्ष देव देवीकी माफिकही देख पडते है. अगर हमारे तप, अनशनादिसंयम व्रतरुप तथा ब्रह्मचर्यके फल हो, तो हमभी भविष्यकालमे राजा श्रेणिककी माफिक मनुष्य संबन्धी भोग भोगवते विचरे अर्थात् हमकोभी श्रेणिक राजा सदृश भोगोंकी प्राप्ति हो । इति साधु–साधुवोंने ऐसा निदान (नियाणा) कीया.

अहो ! आश्चर्य ! यह चेलणा राणी स्नान मज्जन कर यावत् सर्व अंग सुन्दर कर शृंगार किया हुवा, राजा श्रेणिकके साथ मनुष्य संबन्धी भोग भोग रही है. हमने देवतोंको नहीं देखा है, परन्तु यह प्रत्यक्ष देवताकी माफिक भोग भोगवते है. इसलीये अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो हमभी भविष्यमें चेलणा राणीके सदृश मनुष्य संबन्धी सुख भोगवते विचरे. अर्थात् हमकोभी चेलणा राणीके जैसे भोग-

विलास मिले। साध्वीयोंने भगवानके समवसरणमें ऐसा निदान किया था.

भगवान् वीर प्रभु समवसरण स्थित साधु, साध्वीयोंके यह अकृत्य कार्य (निदान) को अपने केवलज्ञान द्वारा जानके साधु, साध्वीयोंको आमंत्रण कर (बुलवाय कर) कहेने लगे— अहो! आर्य! आज राजा श्रेणिकको देखके तुमने पूर्वोक्त निदान किया है. इति साधु. हे साध्वीयों! आज राणी चेलणाको देख तुमने पूर्वोक्त निदान किया है। इति साध्वीयों. हे साधु साध्वीयों! क्या यह बात सची है? अर्थात् तुमने पूर्वोक्त निदान किया है? साधु, साध्वीयोंने निष्कपट भावसे कहा—हां भगवान्! आपका फरमान सत्य है हम लोगोंने ऐसाही निदान कीया है.

हे आर्य! निश्चयकर मैंने जो धर्म (द्वादशांगरुप) प्ररुपा है, वह सत्य, प्रधान, परिपूर्ण, निःकेवल राग द्वेष रहित शुद्ध–पवित्र, न्यायसंयुक्त, सरल, शल्य रहित, सर्व कार्यमें सिद्धि करनेका राहस्ता है, संसारसे पार होनेका मार्ग है, निर्वृतिपुरीको प्राप्त करनेका मार्ग है, अवस्थित स्थानका मार्ग है, निर्मल, पवित्र मार्ग है, शारीरिक मानसिक दुःखोंका अन्त करनेका मार्ग है, इस पवित्र राहस्ते चलता हुवा जीव सर्व कार्योंको सिद्ध कर लेता है लोकालोकके भावोंको जाना है, सकल कर्मोसे मुक्त हुवे है. सकल कषायरुप तापसे शीतलीभूत हुवा है. सर्व शारीरिक मानसिक दुःखोका अंत किया है.

कल्प यावत् मरके दक्षिणकी नरकमे जावे. भविष्यके लीयेभी दुर्लभ वोधी होता है.

हे आयुष्यवंत श्रमणो! तथारुपके निदानका यह फल हुवा कि वह जीव केवली प्ररुपित धर्म श्रवण करनेके लीयेभी अयोग्य है. अर्थात् केवली प्ररुपित धर्मका श्रवण करनाही दुष्कर हो जाता है. इति प्रथम निदान.

(२) अहो श्रमणों! मैंने जो धर्म प्ररुपित कीया है, वह यावत् सर्व शारीरिक और मानसिक दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मकी अन्दर प्रवृत्ति करती हुइ साध्वीयों बहुतसे परीषह-उपसर्गोंको सहन करती हुइ, काम विकारका पराजय करनेमे पराक्रम करती हुइ विचरती है. सर्व अधिकार प्रथम निदानकी माफिक समझना.

एक समय एक स्त्रीको देखे, वह स्त्री कैसी है कि जगतमे वह एकही अद्भुत रुप लावण्य, चतुराइवाली है, मानो एक मातानेही ऐसी पुत्रीको जन्म दीया है. रत्नोंके आभरण समान, तेलकी सीसीकी माफिक उसको गुप्त रीतिसे संरक्षण कीया है, उत्तम जरी खीनखाप आदि वस्त्रकी सिंदुककी माफिक उन्हका संरक्षण कीया है, रत्नोंके करंडकी माफीक परम अमूल्य जिन्हको सर्व दुखोंसे बचाके रक्षण कीया है. वह स्त्री अपने पिताके घरसे निकलती हुइ, पतिके घरमें जाती हुइ, जिसके आगे पीछे बहुतसे दास, दासी, नोकर, चाकर, यावत् एकको

चुलानेपर च्यार पांच हाजर होते हैं. यावत् सर्व प्रथम निदानकी माफिक उस स्त्रीको देख साध्वीयों निदान करेकि—मेरे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो मैं भविष्यमें इस स्त्रीकी माफिक भोग भोगवती विचरुं. इति साध्वीका निदान.

हे आर्य ! वह साध्वीयों निदान कर उसकी आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न ले, विराधक भावमें काल कर महर्द्धिक देवतापणे उत्पन्न होवे, वहांसे जो निदान किया था, ऐसी स्त्री होवे, ऐसाही सुख–भोग प्राप्त करे, यावत् भोग भोगवती हुइ विचरे, उस स्त्रीको दोनों कालमें धर्म सुनानेवाला मिलने परभी धर्म नहीं सुने, अर्थात् धर्मश्रवण करनेकोभी अयोग्य है. वह महारंभ यावत् कामभोगमें मूर्च्छित हो, कालकर दक्षिण दिशाकी नारकीमें उत्पन्न होवे, भविष्यमेंभी दुर्लभ बोधि होवे.

हे मुनियों इस निदानका यह फल हुवाकि केवली प्ररुपित धर्मका श्रवण करनाभी नहीं बने, अर्थात् धर्म श्रवण करनेके लीयेभी अयोग्य होती है.

(३) हे आर्य ! मैं जो धर्म प्ररुपण कीया है, उसकी अन्दर यावत् पराक्रम करता हुवा साधु कोइ स्त्रीको देखे, वह अति रुप–यौवनवती यावत् पूर्ववत् वर्णन करना. उसको देख, साधु निदान करेकि निश्चय कर पुरुषपणा बडाही खराब है, कारण, पुरुष होनेसे बडे बडे संग्राम करना पडता है. जिसकी अन्दर तीक्षण शस्त्रसे प्राण देना पडता है. औरभी व्यापार

करना, द्रव्योपार्जन करना, देश देशान्तर जाना, सब लोगों (आश्रितों) का पोपण करना—इत्यादि पुरुप होना अच्छा नहीं है. अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें हम स्त्रीपनेको प्राप्त करे, वहभी पूर्ववत् रुप, यौवन, लावण्य, चतुराइ, जोकि जगतमें एकही पाइ जाय ऐसी. फिर पुरुषोंके साथ निर्विघ्नतासे भोग भोगवती विचरे. । इति साधु । यह निदान साधु करे. उस स्थानकी आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न लेवे. विराधक भावसे काल कर महर्द्धिक देवतावोंमें उत्पन्न हुवे. वह देव संबन्धी दिव्य सुख भोगके आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य लोकमे अच्छा कुल–जातिको अच्छे रुप, योवन, लावण्यको प्राप्त हुइ, उस पुत्रीको उंच कुलमें भार्या करके देवे, पूर्व निदानकृत फलसे मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगवती आनन्दमें विचरे.

उस स्त्रीको अगर कोइ दोनो काल धर्म सुनानेवाला मिले, तोभी वह धर्म नहीं सुने, अर्थात् धर्म सुननेके लीये अयोग्य है. बहुत काल महारंभ, महा परिग्रह, महा काम भोगमें गृद्ध, मूर्च्छित हो काल कर दक्षिणकी नारकीमें नैरियापने उत्पन्न होगा. भविष्यके लीयेभी दुर्लभबोधि होगा.

हे आर्य ! इस निदानका यह फल हुवाकि वह धर्म सुननेके लीयेभी अयोग्य है. अर्थात् धर्म सुननाभी उदय नहीं आता है. । इति ।

(४) हे आर्य ! मैं धर्म प्ररुपण कीया है. वह यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मको धारण कर साध्वीयों अनेक प्रकारके परीषह सहन करती हुइ किसी समय पुरुषोंको देखे, जैसे उग्र कुलकी महामातासे जन्मा हुवा, भोगकुलकी महामातासे जन्मा हुवा, नगरसे जाते हुवे तथा नगरमें प्रवेश करते हुवे जिन्होंकी ऋद्धि-साहिबी, पूर्वकी माफिक एकको बोलानेपर च्यार पांच हाजर होवे ऐसे ऋद्धिवन्त पुरुषोंको देख, साध्वी निदान करेकि-अहो ! लोकमें स्त्रीयोंका जन्म महा दुःख दाता है. अर्थात् स्त्रीपना है, वह दुःख है. क्योंकि ग्राम यावत् राजधानी सन्निवेशकी अन्दर खुल्ली रहके फिर सके नहीं. अगर फिरे तो, स्त्री जाति कैसी है. सो दृष्टान्त--आम्रके फल, आंबलिके फल, बीजोरेके फल, मंसपेसी, इक्षुके खंड, संबलीवृक्षके सुन्दर फल, यह पदार्थों बहुतसे लोगोंको आस्वादनीय लगते है. इस पदार्थोंको बहुत लोक खाना चाहते हैं, बहुत लोक इसकी अपेक्षा रखते हैं, बहुत लोक इसकी अभिलाषा रखते है. इसी माफिक स्त्री जातिकों बहुतसे लोक आस्वादन (भोगवना) करना चाहते है. यावत् स्त्रीजातिको कहांभी सुख-चेन नहीं है. सर्व गृहकार्य करना पडता है. औरभी स्त्रीजातिपन एक दुःखका खजाना है. वास्ते स्त्रीपन अच्छा नहीं है. परन्तु पुरुषपन जातमें अच्छा है, स्वतंत्र है. अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें हम पुरुष उग्र कुल, भोगकुल यावत् महा-

ऋद्धिवान् पुरुष हो. स्त्रीयोंके साथ मनुष्य संबन्धी भोग भोगवते विचरे. इति साध्वी निदान कर उसकी आलोचना न करे यावत् प्रायश्चित्त न लेवे. काल कर महर्द्धिक देवपने उत्पन्न हो. वह देवसंबन्धी सुख भोग आयुष्यके अन्तमे वहांसे चवके कृतनिदान माफिक पुरुषपने उत्पन्न होवे, वह धर्म सुननेके लीये अयोग्य अर्थात् धर्म सुननाभी उदय नहीं आता. वह कृत निदान पुरुष महारंभ, महापारिग्रह, महा भोग भोगवनेमें गृद्ध मूर्च्छित हो, अन्तमे काल कर दक्षिण दिशाकी नारकीमे नैरियपने उत्पन्न हुवे. भविष्यमेभी दुर्लभ बोधि होवे.

हे आर्य ! इस निदानका यह फल हुवाकि यह जीव केवली प्ररुपित धर्मभी सुन नहीं सके. अर्थात् धर्म सुननेकोभी अयोग्य होता है. । इति ।

(५) हे आर्य ! मैं जो धर्म प्ररुपित किया है. यावत् उस धर्मकी अन्दर साधु-साध्वी अनेक परीषह सहन करते हुवे, धर्ममे पराक्रम करते हुवे मनुष्य संबन्धी कामभोगोंसे विरक्त हुवा ऐसा विचार करेकि-अहो ! आश्चर्य ! यह मनुष्य संबन्धी कामभोग अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सडन पडन विध्वंसन इसका सदैव धर्म है. अहो ! यह मनुष्यका शरीर मल मूत्र, श्लेष्म, मंस, चरवी, नाकमेल, वमन, पित्त, शुक्र, रक्त, इत्यादि अशुचिका स्थान है. देखनेसेही विरुप दिखाता है. उश्वास निश्वास दुर्गन्धिमय है. मल, मूत्र कर भरा हुवा है.

व्याधिका खजाना है. वहभी पहिले व पीछे अवश्य छोडना पडेगा. इससे तो वह उर्ध्वलोक निवास करनेवाले देवता- वों अच्छे है, कि वह देवता अन्य किसी देवतावोंकी देवीयोंको अपने वशमें कर सर्व कामभोग उस देवीके साथ भोगवते है. तथा आप स्वयं अपने शरीरसे देवरुप और देवी- रुप बनाके उसके साथ भोग करे तथा अपनी देवीयोंके साथ भोग करे. अर्थात् ऐसा देवपना अच्छा है. वास्ते मेरे तप, सं- यम, ब्रह्मचर्यका फल हो तो भविष्य कालमें मैंभी यहांसे मरके उस देवोंकी अन्दर उत्पन्न हो. पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी देवी- योंके साथ मनोहर भोग भोगवते हुवे विचरुं. । इति ।

हे आर्य ! जो कोइ साधु–साध्वीयों ऐसा निदान कर उसकी आलोचना न करे, यावत् पापका प्रायश्चित्त न लेवे और काल करे, वह देवोंमें उत्पन्न हुवे. वह महर्द्धिक, महा- ज्योति यावत् महान् सुखवाले देवता होवे. वह देवता अन्य देवतावोंकी देवीयोंको तथा अपने शरीरसे वैक्रिय बनाइ हुइ देवीयोंसे और अपनी देवीयोंसे देवता संबन्धी मनोवांछित भोग भोगवे. चिरकाल देवसुख भोगवके अन्तमें वहांसे चवके उग्रकुलादि उत्तम कुलमें जन्म धारण करे यावत् आते जातेके साथे बहुतसे दास–दासीयों, वहांतककी एक बुलानेपर च्यार पांच आके हाजर होवे.

हे भगवन् ! उस पुरुषको कोइ केवली प्ररुपित धर्म सुना सके ? हां, धर्म सुना सकते है. हे भगवन् ! वह धर्म

श्रवण कर श्रद्धा प्रतीत रुचि कर सके? धर्म सुन तो सके, परन्तु श्रद्धा प्रतीत रुचि कर सके ? धर्म सुन तो सके परन्तु श्रद्धा प्रतीत रुचि नहीं ला सके. वह महारंभी, यावत् कामभोगकी इच्छावाला मरके दक्षिणकी नरकमें उत्पन्न होता है. भविष्यमें दुर्लभबोधि होगा.

हे आर्य ! उस निदानका यह फल हुवा कि वह धर्म श्रवण करनेके योग्य होता है, परन्तु धर्मपर श्रद्धा प्रतीत रुचि नहीं कर सके. ॥ इति ॥

(६) हे आर्य! मैं जो धर्म प्ररुपा है. वह सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मकी अन्दर साधु-साध्वी पराक्रम करते हुवेकों मनुष्य संबन्धि कामभोग अनित्य है. यावत् पहिले पीछे अवश्य छोडने योग्य है। इससे तो उर्ध्वलोकमें जो देवों है, वह अन्य देवतावोंकी देवीयोंको वश कर नहीं भोगवते है, परन्तु अपनी देवीयोंको वश कर भोगवते है. तथा अपने शरीरसे वैक्रिय देव-देवी बनाके भोग भोगवते है. वह अच्छे है. वास्ते हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो तो हम उस देवोंमें उत्पन्न हुवे. ऐसा निदान कर आलोचना नहीं करता हुवा काल कर वह देवता होते है. पूर्वकृत निदान माफिक देवतावों संबन्धी सुख भोगवके वहांसे चवके उत्तम कुल-जातिमें मनुष्यपणे उत्पन्न होते है. यावत् महाऋद्धिवन्त जहांतक एकको बोलानेपर पांच आके हाजर हुवे.

हे भगवन्! उसको केवलीप्ररुपित धर्म सुना सके? हां, धर्म सुना सके. हे भगवन्! वह धर्म श्रवण कर श्रद्धा प्रतीत रुचि करे? नहीं करे. परन्तु वह अरण्यवासी तापस तथा ग्राम नजदीकवासी तपस्वी रहस्य (गुप्तपने) अत्याचार सेवन करनेवाले विशेष संयमव्रत यद्यपि व्यवहार क्रियाकल्प रखते भी हो, तो भी सम्यक्त्व न होनेसे वह कष्टक्रिया भी अज्ञानरुप है, और सर्व प्राणभूत जीव-सत्त्वकी घातसे नहीं निर्वृति पाइ है, अपने मान, पूजा रखनेके लीये मिश्रभाषा बोलते है, तथा आगे कहेंगे-ऐसी विपरीत भाषा बोलते हैं. हम उत्तम है, हमको मत मारो, अन्य अधर्मी है, उसको मारो. इसी माफिक हमको दंडादिका प्रहार मत करो, परिताप मत दो, दुःख मत दो, पकडो मत, उपद्रव मत करो, यह सब अन्य जीवोंको करो, अर्थात् अपना सुख वांछना और दूसरोको दुःख देना, यह उन्होंका मूल सिद्धान्त है, वह बाल, अज्ञानी, स्त्रीयों संबन्धी कामभोगमें गृद्ध मूर्च्छित हुवे काल प्राप्त हो, आसुरीकाय तथा किल्बिपीया देवोंमें उत्पन्न हो, वहांसे मरके वारवार हलका बकरे (मींढे) गुंगे, लूले, लंगडे, बोबडेपनेमें उत्पन्न होगा. हे आर्य! उक्त निदान करनेवाला जीव धर्मपर श्रद्धाप्रतीत रुचि करनेवाला नहीं होता है. ॥ इति ॥

(७) हे आर्य! मैं जो धर्म कहा है, वह सर्व दुःखोंका

अन्त करनेवाला है. उस धर्मकी अन्दर पराक्रम करते हुवे मनुष्य संवन्धी कामभोग अनित्य है, यावत् जो उर्ध्वलोकमें देवों है, जो पारकी देवीकों अपने वश कर नहीं भोगवते है तथा अपने शरीरसे वनाके देवीको भी नहीं भोगवते है. परन्तु जो अपनी देवी है, उसको अपने वशमें कर भोगवते है. अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो हम उक्त देवता हुवे. ऐसा निदान कर आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न करते हुवे काल कर उक्त देवोंमें उत्पन्न होते है. वहां देवतावों संवन्धी चिरकाल सुख भोगवके वहांसे काल कर उत्तम कुल-जातिकी अन्दर मनुष्य हुवे. वह महर्द्धिक यावत् एकको बुलानेपर च्यार पांच आहे हाजर हुवे.

हे भगवन् ! उस मनुष्यकों कोइ श्रमण महान् केवली प्ररुपित धर्म सुना शके ? हा, सुना सके. क्या वह धर्मपर श्रद्धाप्रतीत रुचि करे ? हाँ, करे. वह दर्शन श्रावक हो सके. परन्तु निदानके पाप फलसे वह पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत यह श्रावकके वारहा व्रत तथा नोकारसी आदि प्रत्याख्यान करनेको समर्थ नहीं होते है. वह केवल सम्यक्त्वधारी श्रावक होते है. जीवादि पदार्थका जानकार होते है. हाडहाड किमीजी-धर्मकी अन्दर राग जागता है. ऐसा सम्यक्त्वरुप श्रावकपणा पालता हुवा वहुत कालतक आयुष्य पाल वहांसे मरके देवोंकी अन्दर जाते है.

हे आर्य ! इस निदानका यह फल हुवाकि वह समर्थ नहीं है कि श्रावकके पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत, और नोकारसी आदि तथा पौषध, उपवासादि करनेको समर्थ न हो सके. । इति ।

(८) हे आर्य ! मैं जो धर्म कहा है, वह सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मकी अन्दर साधु, साध्वी पराक्रम करते हुवे ऐसा जानेकि–यह मनुष्य संबन्धी कामभोग अनित्य, अशाश्वत, यावत् पहिले या पीछे अवश्य छोडने योग्य है. तथा देवतावों संबन्धी कामभोगभी अनित्य, अशाश्वत है, वह चल चलायमान है. यावम् पहिले या पीछे अवश्य छोडनाही होगा. मनुष्य–देवोंके कामभोगसे विरक्त हुवा ऐसा जानेकि– मेरे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें मैं उग्र कुल, भोगकुलकी अन्दर महामाता (उत्तम जाति) की अन्दर पुत्रपणे उत्पन्न हो, जीवादि पदार्थका जानकार बन, यावत् साधु, साध्वीयोंको प्रासुक, निर्दोप, एपणिक, निर्जीव, अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि चौदा प्रकारका दान देता हुवा विचरुं. ऐसा निदान कर आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न लेवे ओर काल कर वह महाऋद्धि यावत् महा सुखवाला देवता हुवे, वहां चिरकाल देवताका सुख भोगवके, वहांसे मरके उत्तम जाति–कुलकी अन्दर मनुष्य हुवे. वहां पर केवली प्ररुपित धर्म सुने, श्रद्धाप्रतीत रुचि करे, सम्यक्त्व सहित धा-

रहा व्रतोंको धारण कर सके; परन्तु निदानके पापोदयसे 'मुंडे भवित्ता' अर्थात् संयम-दीक्षा लेनेको असमर्थ है, वह श्रावक हो जीवादि पदार्थोंका जान हुवे, अशनादि चौदा प्रकारका प्रासुक, एषणीय आहार साधु साध्वीयोंको देता हुवा बहुतसे व्रत प्रत्याख्यान पौषध, उपवासादि कर अन्तमे आलोचना सहित अनशन कर समाधिमें काल कर उंच देवोंमे उत्पन्न होता है.

हे आर्य ! उस पाप निदानका फल यह हुवाकि वह सर्व विरति-दीक्षा लेनेको असमर्थ अर्थात् अयोग्य हुवा. । इति ।

(९) हे आर्य ! मैं जो धर्म कहा है, वह सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. उस धर्मकी अन्दर साधु साध्वी पराक्रम करते हुवे ऐसा जानेकि-यह मनुष्य संबन्धी तथा देवसंबन्धी कामभोग अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत है, पहिले या पीछे अवश्य छोडने योग्य है. अगर मेरे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें मैं ऐसे कुलमें उत्पन्न हो. यथा--

(१) अन्तकुल—स्वल्प कुटंब, सोभी गरीब. (२) प्रान्तकुल—बिलकुल गरीब कुल. (३) तुच्छकुल—स्वल्प कुटंबवाले कुलमें. (४) दरिद्रकुल—निर्धन कुटंबवाला. (५) कृपणकुल—धन होनेपरभी कृपणता. (६) भिक्षुकुल—भिक्षाकर आजीविका करे. (७) ब्राह्मणकुल—ब्राह्मणोंका कुल सदैव भिक्षु.

ऐसे कुलमें पुत्रपणे उत्पन्न होनेसे भविष्यमें मैं दीक्षा लेउंगा, तो मेरा दीक्षाका कार्यमें कोइ भी विघ्न नहीं करेगा. वास्ते मेरेको ऐसा कुल मिले तो अच्छा. ऐसा निदान कर आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न लेता हुवा काल कर उर्ध्वलोकमें महर्द्धिक यावत् महासुखवाला देवता हुवे. वहां चिरकाल देवसुख भोगवके वहांसे चवके उक्त कुलोंमें उत्पन्न हुवे. उसको धर्मश्रवण करना मिले. श्रद्धाप्रतीत रुचि हुवे. यावत् सर्वविरति-दीक्षाको ग्रहन करे. परन्तु पापनिदानका फलोदयसे उसी भवमें केवलज्ञानको प्राप्त नहीं कर सके.

यह दीक्षा ग्रहन कर इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य पालन करते हुवे बहुत वर्ष चारित्र पालके अन्तमें आलोचनापूर्वक अनशन कर काल प्राप्त हो उर्ध्वगतिमें देवतापणे उत्पन्न हुवे. यह महर्द्धिक यावत् महासुखवाला हुवे.

हे आर्य ! इस पापनिदानका फल यह हुवा कि दीक्षा तो ग्रहन कर सके, परन्तु उसी भवकी अन्दर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जानेमें असमर्थ है. ॥ इति ॥

(१०) हे आर्य ! मैं जो धर्म कहा है, वह धर्म, शारीरिक और मानसिक ऐसे सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. उस धर्मकी अन्दर साधु-साध्वीयों पराक्रम करते हुवे सर्व प्रकारके कामभोगसे विरक्त, एवं राग द्वेषसे विरक्त, एवं

स्त्री आदिके संगसे विरक्त, एवं शरीर, स्नेह, ममत्व-भावसे विरक्त सर्व चारित्रेकी क्रियावोंके परिवारसे प्रवृत्त, उस श्रमण भगवन्तको अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, यावत् अनुत्तर निर्वाणका मार्गको संशोधन करता हुवा अपना आत्माको सम्यक्प्रकारसे भावते हुवेको जिन्होंका अन्त नहीं है ऐसा अनुत्तर प्रधान, जिसको कोइ बाध न कर सके, जिसको कोइ प्रकारका आवरण नहीं आ सके, वह भी संपूर्ण, प्रतिपूर्ण, ऐसा महत्ववाला केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होते है.

वह श्रमण भगवन्त आरिहंत होते है. वह जिन केवली, सर्वज्ञानी, सर्वदर्शनी, देवता मनुष्य, असुरादिकसे पूजित, यावत् बहुत कालतक केवलीपर्याय पालके अपना अवशेष आयुष्य जान, भक्त पानीका प्रत्याख्यान अर्थात् अनशन कर फिर चरम श्वासोश्वासको वोसिराते हुवे सर्व शारीरिक और मानसिक दुःखोंका अन्त कर मोक्ष महेलमे विराजमान हो जाते है.

हे आर्य ! ऐसा अनिदान अर्थात् निदान नहीं करनेका फल यह हुवाकि उसी भवमें सर्व कर्मोंका मूलोंको उच्छेदन कर मोक्षसुखोंको प्राप्त कर लेते हैं. ऐसा उपदेश भगवान् वीरप्रभु अपने शिष्य साधु-साध्वीयोंको आमंत्रण करके दीया था, अर्थात् अपने शिष्योंकी डूबती नौकाको अपने करकमलोंसे पार करी है.

तत्पश्चात् वह सर्व साधु-साध्वीयों भगवानकी मधुर देशना-हितकारी देशना श्रवण कर बडा ही हर्षको-आनन्दको प्राप्त हो, अपने जो राजा श्रेणिक और राणी चेलणाका स्वरुप देख निदान किया गया था, उसकी आलोचना कर, प्रायश्चित ग्रहन कर, अपना आत्माको विशुद्ध बनाके भगवानको वन्दन-नमस्कार कर अपना आत्माकी अन्दर रमणता करते हुवे विचरने लगे.

यह व्याख्यान भगवान् महावीरप्रभु राजगृह नगरके गुणशीलोद्यानमें बहुतसे साधु, बहुतसी साध्वीयों, बहुत श्रावक, बहुतसी श्राविकावों, बहुतसे देवों, बहुतसी देवीयों, सदेव मनुष्य असुरादिकी परिषदके मध्य विराजमान हो आख्यान, भाषण, प्ररुपण, विशेष प्ररुपण (आत्माको कर्मबन्ध निदानरुप अध्ययन) अर्थ सहित, हेतु सहित, कारण सहित, सूत्र सहित, सूत्रके अर्थ सहित, व्याख्या सहित यावत् एसा उपदेश वारवार किया है.

। इति निदान नामका दशवा अध्ययन ।



नोट—निदान दो प्रकारके होते है (१) तीव्र रसवाला (२) मन्द रसवाला, जो तीव्र रसवाला निदान कीया हो, तो उे निदानवालोंको केवली प्ररुपित धर्मको प्राप्ति नहीं होती है,

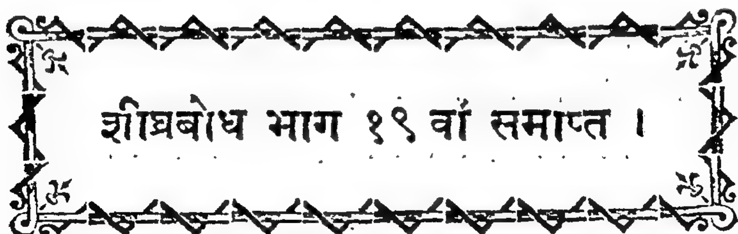
अगर मन्द रसवाला निदान हो तो छे निदानमें सम्यक्त्वादि धर्मकी प्राप्ति होती है. जैसे कृष्ण वासुदेव तथा द्रौपदी महा सतीको सनिदानभी धर्मकी प्राप्ति हुइथी.

इति श्री दशाश्रुतस्कंध-दशवा अध्ययन.



। इति श्री दशाश्रुत स्कंध सूत्रका संक्षिप्त सार ।





शीघ्रबोध भाग १९ वां समाप्त ।

अथश्री

शीघ्रबोध भाग २१ वां.

अथ श्री व्यवहारसूत्रका संक्षिप्त सार.

(उद्देशा दश.)

श्रीमद् आचारांगादि सूत्रोमें मुनियोंके आचारका प्रतिपादन कीया है. उस आचारसे पतित होनेवालोंके लीये लघु निशीथ सूत्रमें आलोचना कर, प्रायश्चित्त ले शुद्ध होना बतलाया हैं।

आलोचना सुननेवाले तथा आलोचना करनेवाले मुनि कैसा होना चाहिये तथा आलोचना किस भावोंसे करते हैं, उसको कितना प्रायश्चित्त दीया जाता है, यह इस प्रथम उद्देशा द्वारे बतलाया जायगा.

(१) प्रथम उद्देशा—

(१) किसी मुनिने एक[१] मासिक प्रायश्चित्त योग, दुष्कृतका स्थान सेवन कीया, उसकी आलोचना गीतार्थ आचार्य के पास निष्कपट भावसे करी हो, उस मुनिको एक मासिक प्रायश्चित्त*

१—मासिक प्रायश्चित स्थान देखो—लघु निशीथसूत्र.

* मासिक प्रायश्चित—जैसे तप मासिक, छेदमासिक, प्रत्याख्यान मासिक इनके भी लघुमासिक, गुरुमासिक—दो दो भेद है. खुलासा देखो लघुनिशीथ सूत्र.

देवे. अगर माया[1] —कपट संयुक्त आलोचना करी हो, तो उस मुनिको दो मासका प्रायश्चित्त देना चाहिये. एक मासतो दुष्कृत स्थान सेवन कीया उसका, और एक मास जो कपट माया करी उसका.

(२) मुनि दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया (कपट) रहित आलोचना करे, उसको दो मासिक प्रायश्चित्त देना, अगर माया[2] (कपट) संयुक्त आलोचना करे, उसको तीन

१—एक नदीके कीनारे पर निवास करनेवाला तापसने मच्छ भक्षण कीया था, उसीसे उन्होंके शरीर में बहुत व्याधि हो गइ; उस तापसके भक्त लोगोंने एक अच्छा वैद्य बुलाया. वैद्यने पूछा कि—'आपने क्या भक्षण कीया था ?' तापस लज्जाके मारे सत्य नहीं बोला, और कहा कि—'मैंने कंदमूलका भक्षण कीया.' वैद्यने दवाका प्रयोग किया, जिससे फायदा के बदले रोगकी अधिक वृद्धि हो गइ. जब वैद्यने कहा कि—'आप सत्य सत्य कह दीजीये, क्या भक्षण कीया था ?' तापसने लज्जा छोडके कहा कि—'मैंने मच्छ भक्षण कीया था.' तब वैद्यने उसकी दवा देके रोगचिकित्सा करी. इसी माफिक कपट कर आलोचना करने से पापकी न्यूनताके बदले वृद्धि होती है. और माया (कपट) रहित आलोचना करनेसे पाप निर्मूल हो आत्मा निर्मल होती है. वास्ते अव्वल पाप सेवन नहीं करे, अगर मोहनीय कर्मके उदयसे हो भी जावे, तो शुद्ध अंतःकरणके भावसे आलोचना करनी चाहिये.

२—केवलीके पास माया संयुक्त आलोचना करे, तो केवली उसे प्रायश्चित्त न दे, किन्तु छद्मस्थोंके समीप आलोचना करनेको कहे. छद्मस्थ आलोचना प्रथम सुनते है, उस समय प्रायश्चित्त न दे, दुसरी दफे उसी आलोचनाको और सुने, फीर प्रायश्चित्त न दे, तीसरी दफे ओर भी सुने, तीनों दफेकी आलोचना एक सरिखी हो तो अनुमानसे जाने कि माया रहित आलोचना है. अगर तीनों दफेमें फारफेर हो तो माया संयुक्त आलोचना जान एक मास मायाका और जितना प्रायश्चित्त सेवन कीया हो उतना मूल मिलाके उसको प्रायश्चित्त दीया जाता है.

मासिक प्रायश्चित देना कारण—दो मासिक मूल्य प्रायश्चित और एक मास माया—कपटका, एवं.

(३) मुनि तीन मासिक प्रायश्चित स्थान सेवन कर माया रहित आलोचना करे, उस मुनिको तीन मासिक प्रायश्चित दीया जाता है. अगर माया संयुक्त आलोचना करे तो च्यार मासिक प्रायश्चित देना चाहिये. भावना पूर्ववत्.

(४) मुनि च्यार मासिक प्रायश्चित स्थान सेवन कर माया रहित आलोचना करी हो, तो उस मुनिको च्यार मासिक प्रायश्चित देना, अगर माया संयुक्त आलोचना करे, पांच मासका प्रायश्चित देना. भावना पूर्ववत्.

(५) मुनि पांच मासिक प्रा०स्थान सेवन कर आलोचना करी हो तो उस मुनिको पांचमासिक प्रायश्चित देना, अगर माया संयुक्त आलोचना करी हो, तो उस मुनिको छ मासिक प्रायश्चित देना चाहिये. भावना पूर्ववत्. छे माससे अधिक प्रायश्चित नहीं[1] है. अधिक प्रायश्चित हो तो फीरसे आठवां प्रायश्चित अर्थात् मूलसे दीक्षा देनी चाहिये.

(६) मुनि बहुत सी वार मासिक प्रायश्चित सेवन कर मायारहित आलोचना करे, उस मुनिको मासिक प्रायश्चित होता है, अगर माया संयुक्त आलोचना करनेसे दो मासिक प्रायश्चित्त होता है. एक मासिक मूल प्रायश्चित और एक मास मायाका.

(७) एवं बहुतसे दो मासिक.

---

१ जिन तीर्थंकरोंने उत्कृष्ट तप कीया हो, तथा उन्होंके शासनमें उत्कृष्ट तप हो, उनसे अधिक तपका प्रायश्चित नहीं दीया जाता है. भगवान् वीरप्रभु उत्कृष्ट छे मासी तप कीया था, वास्ते वीरशासनके मुनियोंको उत्कृष्ट छे मासमें अधिक तप प्रायश्चित नहीं दीया जाता है. अधिक होनो मूलमें दीक्षा दी जावे.

(८) वहुतसे तीन मासिक.

(९) वहुतसे च्यार मासिक.

(१०) वहुतसे पांच मासिक प्रायश्चित्त सेवन कर आलोचना जो माया रहित करने वालोंको मूल सेवन कीया उतना ही प्रायश्चित्त दीया जाता है. अगर माया संयुक्त आलोचना करे. उस मुनिका मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त यावत् छे मासका प्रायश्चित्त होता है. इसके उपरान्त चाहे माया रहित, चाहे माया संयुक्त आलोचना करे. परन्तु छे माससे ज्यादा तपादि प्रायश्चित्त नहीं दीया जाता. उस मुनिको तो फिरसे दीक्षाका ही प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(११) मुनि जो मासिक, दोमासिक, तीन मासिक च्यार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया रहित निष्कपट भावसे आलोचना करनेपर उस मुनिको मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, चार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त होता है. अगर माया संयुक्त आलोचना करे तो मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त होता है. इस्के आगे प्रायश्चित्त नहीं है. भावना पूर्ववत्.

(१२) मुनि जो वहुसे मासिक, वहुतसे दो मासिक, एवं तीन मासिक, च्यार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया रहित आलोचना करे, उस मुनिको मासिक यावत् पांच मासिक प्रायश्चित्त होता है. अगर मायासंयुक्त आलोचना करे उसे मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक यावत् छेमासका प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१३) जो मुनि चातुर्मासिक, साधिक चातुर्मासिक पंचमासिक, साधिकपंचमासिक प्रायश्चित्त स्थानको सेवन कर माया रहित आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्त ही दीया जाता है.

अगर मायासंयुक्त आलोचना करे, तो मूल प्रायश्चितसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त दीया जाता है.

(१४) एवं बहुत वचनापेक्षाका भी सूत्र समझना. परन्तु छे मास उपरान्त प्रायश्चित्त नहीं है. भावना पूर्ववत्. चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्रथम एकवचन या बहुवचन आ गया था; परन्तु यहां साधिक चातुर्मासिक सम्बन्धपर सूत्र अलग कहा है.

(१५) किसी मुनिको प्रायश्चित्त दीया है. वह मुनि प्रायश्चित्त तप करते हुवे और भी प्रायश्चित्तका स्थान सेवन करे, उसको प्रायश्चित्त देनेकी अपेक्षा यह सूत्र कहा जाता है.

जो मुनि चातुर्मासिक, साधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक, साधिक पंचमासिकसे कोइ भी प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर मायासंयुक्त आलोचना करे. अगर वह द्वेष संघमें प्रगट सेवन कीया हो, तो उसको संघ सन्मुख ही प्रायश्चित्त देना चाहिये कि संघको प्रतीत रहै, और दूसरे साधुवोंको इस बातका क्षोभ रहै. तथा जिस प्रायश्चित्तको गुप्तपनेसे सेवन किया हो, संघ उसे न जानता हो, उसे गुप्त आलोचना देनी, जिसे शासनका उडहा न हो. यह गीतार्थोकी गंभीरता है. इसीसे साधु दूसरी दफे द्वेष न लगावेगा. तपश्चर्या करते हुवे साधुका आचार व्यवहार सामाचारी शुद्ध हो, उसे गुरु आज्ञासे वाचना आदिकी साह्यता करना. कारण—वाचना देना महान् लाभका कारन है. और तप करनेवाले मुनिका चित्त भी हमेशां स्थिर रहै. अगर जो मुनिकी सामाचारी ठीक न हो उसको द्रव्यादि जाणी गुरु आज्ञा दे तो वाचना देना, नहीं तो न देना. परिहार तपकी पूरतीमें उस साधुकी वैयावच्च करनेमें अन्य साधुको स्थापन करना, अगर प्रायश्चित्त तप करते और भी प्रायश्चित्त सेवन करे तो यथा तप उस चालु

प्रायश्चित्तमें ही वृद्धि करना (इसकी विधि निशीथ सूत्रमें है.) आलोचना करनेवालोंके च्यार भांगा है. यथा—आचार्यमहाराजकी आज्ञासे मुनि अन्य स्थल विहार कर कितने अरसेसें वापीस आचार्यमहाराजके समीप आये, उसमें कितने ही दोष लगे थे, उसकी आलोचना आचार्यश्रीके पासमें करते है.

(१) पहले दोष लगा था, उसकी पहले आलोचना करे, अर्थात् क्रमःसर प्रायश्चित्त लगा होवे, उसी माफिक आलोचना करे.

(२) पहले दोष लगा था, परन्तु आलोचना करते समय विस्मृत हो जानेके सबबसे पहले दूसरे दोषोंकी आलोचना करे फिर स्मृति होनेसे पहले सेवन कीये हुवे दोषोंकी पीछे आलोचना करे.

(३) पीछे सेवन कीया हुवा दोषोंकी पहले आलोचना करे.

(४) पीछे सेवन कीये हुवे दोषोंकी पीछे आलोचना करे.

आलोचना करते समय परिणामोंकी चतुर्भंगी.

(१) आलोचना करनेवाले मुनि पहला विचार किया था कि अपने निष्कपटभावसे आलोचना करनी. इसी माफिक शुद्ध भावोंसे आलोचना करे, ज्ञानवन्त मुनि.

(२) मायारहित शुद्ध भावोंसे आलोचना करनेका इरादा था, परन्तु आलोचना करते समय मायासंयुक्त आलोचना करे. भावार्थ—ज्यादा प्रायश्चित्त आनेसे अन्य लघु मुनियोंसे मुजे लघु होना पडेगा, लोगोंमें मानपूजाकी हानि होगी—इत्यादि विचारोंसे मायासंयुक्त आलोचना करे.

(३) पहला विचार था कि मायासंयुक्त आलोचना करुंगा.

आलोचना करते समय मायारहित शुद्ध निर्मल भावोंसे आलोचना करे. भावार्थ—पहला विचार था कि ज्यादा प्रायश्चित्त आनेसे मेरी मानपूजाकी हानि होगी. फिर आलोचना करते समय आचार्यमहाराज जो स्थानांग सूत्रमें आलोचना करनेवालोंके गुण और शुद्ध भावोंसे आलोचना करनेवाला इस लोक और परलोकमें पूजनीय होता है. लोक तारीफ करते है. यावत् मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है. ऐसा सुन अपने परिणामको बदलाके शुद्ध भावोंसे आलोचना करे.

(४) पहले विचार था कि मायासंयुक्त आलोचना करुंगा, और आलोचना करते समय भी मायासंयुक्त आलोचना करे. बाल, अज्ञानी, भवाभिनन्दी जीवोंका यह लक्षण है.

आलोचना करनेवालोंका भावोंको आचार्यमहाराज जानके जैसा जिसको प्रायश्चित्त होता हो, वैसा उसे प्रायश्चित्त देवे. सबके लीये एकसा ही प्रायश्चित्त नहीं है. एक ही दोषके भिन्न भिन्न परिणामवालोंको भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त दीया जाता है.

(१६) इसी माफिक बहुतवार चातुर्मासिक, साधिक चातुर्मासिक, पंच मासिक, साधिक पंच मासिक, प्रायश्चित सेवन कीया हो. उसकी दो चोभंगीयों १५ वां सूत्रमें लिखी गइ हैं. यावत् जिस प्रायश्चित्त के योग्य हो, ऐसा प्रायश्चित देना. भावना पूर्ववत्.

(१७) जो मुनि चातुर्मासिक, साधिक चातुर्मासिक, पंच मासिक, साधिक पंच मासिक प्रायश्चित्त स्थानको सेवन कर आलोचना (पूर्ववत् चतुर्भंगीसे) करे, उस मुनिको तपकी अन्दर तथा यथायोग्य वैयावचमें स्थापन करे. उस तप करते हुयेमें और प्रायश्चित्त सेवन करे, तो उस चालु तपमें प्रायश्चित्तकी वृद्धि

करना तथा प्रायश्चित्त तप करके निकलते हुवेको अगर लघु दोष लग जावे, तो उसी तपकी अन्दर सामान्यतासे वृद्धि कर शुद्ध कर देना.

(१८) इसी माफिक बहु वचनापेक्षा भी समझना.

जो मुनि प्रायश्चित्त सेवन कर निर्मळ भावोंसें आलोचना करते है. उसको कारण बतलाते हुवे, हेतु बतलाते हुवे, अर्थ बतलाते हुवे इस लोक, परलोकके आराधकपनाके अक्षय सुख बतलाते हुवे प्रायश्चित्त देवे, और दीया हुवा प्रायश्चित्तमें सहायता कर उसको यथा निर्वाह हो एसा तप कराके शुद्ध बना लेवे. यह फर्ज गीतार्थ आचार्य महाराजकी है.

(१९) बहुतसे मुनि ऐसे है कि जो प्रायश्चित्त सेवन कीया, उसकी आलोचना भी नहीं करी है. उसे शास्त्रकारोंने 'प्रायश्चित्तीये' कहा है. और बहुतसे मुनि निरतिचार व्रत पालन करते है, उसे 'अप्रायश्चित्तीये' कहा है, वह दोनों प्रायश्चित्तीये, अप्रायश्चित्तीये मुनि एकत्र रहना चाहे, एकत्र बैठना चाहे, एकत्र शय्या करना चाहे, तो उस मुनियोंको पेस्तर [1]स्थविर महाराजको पुछना चाहिये, अगर स्थविर महाराज किसी प्रकारका खास कारन जानके आज्ञा देवे, तो उस दोनों पक्षवाले मुनियोंको एकत्र रहना कल्पै. अगर स्थविर महाराज आज्ञा न दे तो उस दोनों पक्षवालोंको एकत्र रहना नहीं कल्पै. अगर स्थविर महाराजकी

---

१ स्थविर तीन प्रकारके होते है. (१) वय स्थविर ६० वर्षकी आयुष्यवाला (२) दीक्षा स्थविर वीश वर्षका चारित्र पर्यायवाला, (३) सूत्र स्थविर स्थानांगसूत्र और समवायांग सूत्रके जानकार तथा कितनेक स्थानोंपर आचार्य महाराजको भी स्थविरके नामसे ही बतलाये है.

आज्ञाका भंग कर दोनों पक्षवाले मुनि एकत्र निवास करे, तो जितने दिन वह एकत्र रहे, उतने दिनोंका तप प्रायश्चित्त तथा छेद प्रायश्चित्त आवे. भावार्थ—प्रायश्चित्तीये, अप्रायश्चित्तीये मुनि एकत्र रहनेसे लोकमें अप्रतीतिका कारन होता है. एसा हो तो फीर प्रायश्चित्तीये मुनियोंको शुद्धाचारकी आवश्यक्ताही क्यों और दोषोंका प्रायश्चितही क्यों ले ? इत्यादि कारणोंसे एकत्र रहना नहीं कल्पै. अगर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखके आचार्य महाराज आज्ञा दे, उस हालतमें कल्पै भी सही. यह ही स्याद्वाद रहस्यका मार्ग है.

(२०) आचार्य महाराजको किसी अन्य ग्लान साधुकी वैयावच्चके लीये किसी साधुकी आवश्यक्ता होनेपर परिहार तप करनेवाले साधुको अन्य ग्राम मुनियोंकी वैयावच्चके लीये जानेका आदेश दीया, उस समय आचार्य महाराज उस मुनिको कहे कि—हे आर्य ! रहस्तेमें चलना और परिहार तप करना यह दो वार्तो होना कठिन है. वास्ते रहस्तेमें इस तपका छोड देना. इसपर उस साधुको अशक्ति हो तो तप छोड कर जिस दिशामें अपने स्वधर्मी साधु विचरते हो उसी दिशाकी तरफ विहार करना. रहस्तेमें एक रात्रि, दो रात्रिसे ज्यादा रहना नहीं कल्पै. अगर शरीरमें व्याधि हो तो जहांतक व्याधि रहे, वहांतक रहना कल्पै. रोगमुक्त होनेपर पहलेके साधु कहे कि—हे आर्य ! एक दो रात्रि और ठहरो, इससे पुर्ण खातरी हो जाय. उस हालतमें एक दोय रात्रि ठहरना कल्पै. अगर एक दो रात्रिसे अधिक (सुखशीलीयापनासे) ठहरे, तो जितने रोज रहे उतने रोजका तप तथा छेद प्रायश्चित्त होता है. भावार्थ—ग्लान मुनियोंकी वैयावच्चके लीये भेजा हुवा साधु रहस्तेमें विहार या उपकार निमित्त ठहर नहीं सके. तथा रोगमुक्त होनेपर भी ज्यादा ठहर नहीं सके. अगर ठहर जावे तो

जिस ग्लानोंकी वैयावच्चके लीये भेजा था, उसकी वैयावच्च कोन करे ? इस लाये उस मुनिको शीघ्रतापूर्वक ही जाना चाहिये.

(२१) इसी माफिक रवाने होते समय आचार्यमहाराज तप छोडनेका न कहा हो, तो उस मुनिको जो प्रायश्चित्तका तप कर रहा था, उसी माफिक तप करते हुवे ही ग्लानिकी वैयावच्चमें जाना चाहिये. रहस्तेमें विलंब न करे.

(२२) इसी माफिक पेस्तर आचार्यमहाराजका इरादा था कि विहार समय इस मुनिको कहे कि-रहस्तेमें तप छोड देना, परन्तु विहार करते समय किसी कारणसे कह नहीं सका हो तो उस मुनिको तप करते हुवे ही ग्लानोंकी वैयावच्चमें जाना चाहिये. पूर्ववत् शीघ्रतासे.

(२३) कोइ मुनि गच्छको छोडके एकल प्रतिमारुप अभिग्रह धारण कर अकेला विहार करे, अगर अकेले विहार करनेमें अनेक परिसह उत्पन्न होते है, उसको सहन करनेमें असमर्थ हो, तथा आचारादि शीथिल हो जानेसे या किसी भी कारणसे पीछे उसी गच्छमें आना चाहे तो गणनायकको चाहिये कि-वह उस मुनिसे फिरसे आलोचना प्रतिक्रमण करावे और उसको छेद प्रायश्चित्त तथा फिरसे उत्थापन देके गच्छमें लेवे.

(२४) इसी माफिक गणविच्छेदक.

(२५) इसी माफिक आचार्योपाध्यायको भी समझना. भावार्थ—आठ[१] गुणोंका धणी हो, वह अकेला विहार कर सकता है. अकेला विहार करनेमें अप्रतिबद्ध रहनेसे कर्मनिर्जरा बहुत होती है. परन्तु इतना शक्तिमान् होना चाहिये. अगर परिसह सहन करनेमें असमर्थ हो उसे गच्छमें ही रहना अच्छा है.

---

१ स्थानायांग सूत्रके आठवे स्थानको देखे.

(२६) संयमसे शिथिल हो, संयमको पास रख छोडे; उसे पासत्था कहा जाता है. कोइ मुनि गच्छके कठिन आचारादि पालनेमें असमर्थ होनेसे गच्छ त्याग कर पासत्था धर्मको स्वीकार कर विचरने लगा. बादमें परिणाम अच्छा हुवा कि-पौद्गलिक क्षणमात्रके सुखोंके लीये मैंने गच्छ त्याग कर इस भववृद्धिका कारन पासत्थपनेको स्वीकार कर अकृत्य कार्य कीया है. वास्ते अब पीछे उसी गच्छमें जाना चाहिये अगर वह साधु पुनः गच्छमें आना चाहे, तो पेस्तर उसको आलोचना-प्रतिक्रमण करना चाहिये. पुनः छेद प्रायश्चित्त तथा पुनः दीक्षा देके गच्छमें लेना कल्पै.

(२७) एवं गच्छ छोडके स्वच्छंद विहारी होनेवालोंका अलायक.

(२८) एवं कुशील—जिन्होंका आचार खराब है. प्रतिदिन विगइ सेवन करनेवालोंका अलायक.

(२९) एवं उमन्ना—क्रियामें शिथिल, पुंजन प्रतिलेखनमें प्रमादी, लोचादि करनेमें असमर्थ, ऐसा उमन्नोंका अलायक.

(३०) एवं संसक्त—आचार्यवंत साधु मिलनेसे आप आचारवन्त बन जावे, पासत्थादि मिलनेसे पासत्थादि बन जावे, अर्थात् दुराचारीयोंसे संसर्ग रखनेवालोंका अलायक. २६, २७, २८, २९, ३०. इस पांचों अलायकका. भावार्थ—उक्त कारणोंसे गच्छका त्याग कर भिन्न भिन्न प्रवृत्ति करनेवाले फिरसे उसी गच्छमें आना चाहे तो प्रथम आलोचना कराके यथायोग्य प्रायश्चित्त तप या छेद तथा उत्थापन देके फिर गच्छमें लेना चाहिये कि उस मुनिको तथा अन्य मुनियोंको इस बातका क्षोभ रहे. गच्छ मर्यादा तथा सदाचारकी प्रवृत्ति मजबूत बनी रहे.

(३१) जो कोइ साधु गच्छ छोडके पाखंडी लिंगको स्वीकार करे अर्थात् अन्य यतियोंके लिंगमें रहे और वापिस स्वगच्छमें आना चाहे, तो उसे कोइ आलोचना प्रायश्चित्त नहीं. फक्त व्यवहारसे उसकी आलोचना सुन ले, फिर उस मुनिको गच्छ में ले लेना चाहिये. भावार्थ—अगर कोइ राजादिका जैन मुनियों पर कोप हो जानेसे अन्य साधुवोंका योग न होनेपर अपना संयमका निर्वाह करनेके लीये अन्य यतियोंके लिंगमें रह कर, अपनी साधुक्रिया बराबर साधन करता केवल शासन रक्षणके लीये ही ऐसा कार्य करे, तो उसे प्रायश्चित्त नहीं होता है. इस विषयमें स्थानांग सूत्र चतुर्थ स्थानकी चौभंगी, तथा भगवती सूत्र निर्ग्रंथाधिकारे विशेष खुलासा है.

(३२) जो कोइ साधु स्वगच्छको छोडके व्रत भंग कर गृहस्थधर्मको सेवन कर लीया हो बाद में उसको परिणाम हो कि मैंने चारित्र चिंतामणिको हाथसे गमा दीया है. अर्थात् संसारसे अरुचि—संवेगकी तर्फ लक्ष्य कर फिरसे उसी गच्छमें आना चाहे तो आचार्य महाराज उसकी योग्यता देखे, भविष्यके लीये ख्याल कर, उसे छेदके तप प्रायश्चित्त कुछ भी नहीं दे, किन्तु पुनः उसी रोजसे दीक्षा देवे.

(३३) जो कोइ साधु अकृत्य ऐसा प्रायश्चित्त स्थानकों सेवन करे फिरसे शुद्ध भावना आनेसे आलोचना करनेकी इच्छा करे, तो उस मुनिको अपने आचार्योपाध्याय जो बहुश्रुत, बहु आगमका जाणकार, पांच व्यवहारके ज्ञाता हो उन्होंके समीप आलोचना करे, प्रतिक्रमण करे, पापसे विशुद्ध हो, प्रायश्चित्तसे निवृत्त हो, हाथ जोडके कहे कि—अब में ऐसा पापकर्मको सेवन न करुंगा. हे भगवन्! इस प्रायश्चित्तकी यथायोग्य आलोचना दो. अर्थात् गुरु देवे उस प्रायश्चित्तको स्वीकार करे.

(३४) अगर अपने आचार्योपाध्याय उस समय हाजर न हो तो अपने संभोगी (एक मंडलमें भोजन करनेवाले) साधु जो बहुश्रुत—बहुत आगमोंके जानकार, उन्होंके समीप आलोचना कर यावत् प्रायश्चित्तको स्वीकार करे.

(३५) अगर अपने संभोगी साधु न मिले तो अन्य संभोगवाले गीतार्थ—बहुत आगमोंके जानकार मुनि हो, उन्होंके पास आलोचना कर यावत् प्रायश्चित्तको स्वीकार करे.

(३६) अगर अन्य संभोगवाले उक्त मुनि न मिले, तो रुप साधु अर्थात् आचारादि क्रियामें शिथिल है, केवल रजोहरण, मुखवस्त्रिका साधुका रुप उन्होंके पास है, परन्तु बहुश्रुत-बहुत आगमोंका जानकार है, उन्होंके पास आलोचना यावत् प्रायश्चित्तको स्वीकार करे.

(३७) अगर रुपसाधु बहुश्रुत न मिले तो पीछे कृत श्रावक 'जो पहला दीक्षा लेके बहुश्रुत-बहुत आगमोंका जानकार हो फिर मोहनीय कर्म के उदयसे श्रावक हो गया हो.' उसके पास आलोचना कर यावत् प्रायश्चित स्वीकार करे.

(३८) अगर उक्त श्रावक भी न मिले तो—'समभावियाई चेइयाई' अर्थात् सुविहित आचार्योंकी करि हुइ प्रतिष्ठा ऐसी जिनेन्द्र देवोंकी प्रतिमायें आगे शुद्ध भावसे आलोचनाकर यावत् प्रायश्चित स्वीकार करे.*

---

* 'समभावियाई चेइयाई' का अर्थ—ढूंढीये लोग श्रावक तथा सम्यग्दृष्टि करते है. यह असत्य है. क्योंकि आलोचनामें गीतार्थोंकी आवश्यक्ता है. जिसमेंभी छेद सूत्रों का तो अवश्य जानकार होना चाहिये और जानकार श्रावकका पाठ तो पहले आ गया है. इस वास्ते पूर्व महर्षियोंने कीया वह ही अर्थ प्रमाण है.

(३१) अगर ऐसा मंदिरमूर्तिका भी जहांपर योग न हो, तो फिर ग्राम तथा नगर यावत् सन्निवेश के बाहार जहांपर कोइ सुननेवाला न हो, ऐसे स्थलमें जाके पूर्व तथा उत्तर दिशाके सन्मुख मुंह कर दोय हाथ जोड शिरपे चडाके ऐसा शब्द उच्चारण करना चाहिये-हे भगवन् ! मैंने यह अकृत्य कार्य कीया है. हे भगवन् ! में आपकी साक्षीसे अर्थात् आपके समीप आलोचना करता हुं. प्रतिक्रमण करता हुं. मेरी आत्माकी निंदा करता हुं. घृणा करता हुं. पापोंसे निवृत्ति करता हुं. आत्मा विशुद्ध करता हुं. आइंदासे ऐसा अकृत्य कार्य नहीं करुंगा ऐसा कहे. यथायोग स्वयं प्रायश्चित्त स्वीकार करना चाहिये.

भावार्थ—जो किंचित् ही पाप लगा हो, उसकी आलोचनाके लीये क्षणमात्र भी प्रमाद न करना चाहिये. न जाने आयुष्यका किस समय बन्ध पडता है. काल किस समय आता है. इस वास्ते आलोचना शीघ्रतापूर्वक करना चाहिये. परन्तु आलोचनाके सुननेवाला गीतार्थ, गंभीर, धैर्यवान् होना चाहिये. वास्ते शास्त्रकारोंने आलोचना करनेकी विधि बतलाइ है. इसी माफिक करना चाहिये. इति.

श्री व्यवहार सूत्र-प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(२) दूसरा उद्देशा.

(१) दो स्वधर्मी साधु एकत्र हो विहार कर रहे है. उसमें एक साधुने अकृत्य कार्य अर्थात् किसी प्रकारका दोषको सेवन कीया है, तो उस दोषका यथायोग उस मुनिको प्रायश्चित्त देके

उस प्रायश्चितके तपकी अन्दर स्थापन करना चाहिये, और दुसरा मुनि उसको सहायता अर्थात् वैयावच्च करे.

(२) अगर दोनों मुनियोंको साथमें ही प्रायश्चित लगा हो, तो उस मुनियोंसे एक मुनि पहले तप करे. दुसरा मुनि उसको सहायता करे, जब उस मुनिका तप पूर्ण हो जाय, तब दुसरा मुनि तपश्चर्या करे और पहला मुनि उसको सहायता करे.

(३) एवं बहुतसे मुनि एकत्र हो विहार करे जिसमें एक मुनिको दोष लगा हो, तो उसे आलोचना दे तप कराना. दुसरा मुनि उसको सहायता करे.

(४) एवं बहुतसे मुनियोंको एक साथमें दोष लगा हो. जैसे शय्यातरका आहार मूलमें आ गया. सर्व साधुओंने भोगव भी लीया. बादमें खबर हुइ कि इस आहारमें शय्यातरका आहार सामेल था, तो सर्व साधुओंको प्रायश्चित्त होता है. उसमें एक साधुको वैयावचके लीये रखे और शेष सर्व साधु उस प्रायश्चितका तप करे. उन्होंका तप पूर्ण होनेपर एक साधु रहा था. वह तप करे और दुसरे साधु उसकी सहायता करे. अगर अधिक साधुओंकी आवश्यक्ता हो तो अधिकको भी रख सकते हैं.

भावार्थ – प्रायश्चित सहित आयुष्य बंध करके काल करनेसे जीव विराधक होता है. वास्ते लगे हुये पापकी आलोचना कर उसका तप ही शीघ्र कर लेना चाहिये. जिससे जीव आराधक हो पारंगत हो जाता है.

(५) प्रतिहार कल्प साधु—जो पहला प्रायश्चित्त सेवन कीया था, वह साधु तपश्चर्या करता हुवा अकृत्य स्थानको और सेवन कीया, उसकी आलोचना करनेपर आचार्य महाराज उसकी

शक्तिको देख तप प्रायश्चित्त देवे. अगर वह साधु तकलीफ पाता हो तो उसकी वैयावच्चमें एक दुसरे साधुको रखे अगर वह साधु दुसरे साधुवोंसे वैयावच्चही करावे और अपना प्रायश्चित्तका तपभी न करे तो वह साधु दुतरफी प्रायश्चित्तका अधिकारी बनता है.

(६) प्रायश्चित्त तप करता हुवा साधु ग्लानपनेको प्राप्त हुवा 'गणविच्छेदक' के पास आवे तो गणविच्छेदकको नहीं कल्पै कि उस ग्लान साधुको निकाल देना कि तिरस्कार करना. गणविच्छेदक का फर्ज है कि उस ग्लान मुनिकी अग्लानपणे वैयावच्च करावे. जहांतक वह रोगमुक्त न हो, वहांतक, फिर रोगमुक्त हो जानेपर व्यवहार शुद्धि निमित्त सदोष साधुकी वैयावच्च करनेवाले मुनिको स्तोक—नाम मात्र प्रायश्चित्त देवे.

(७) अणुठ्ठप्पा पायश्चित्त (तीन कारणोंसे यह प्रायश्चित्त होता है, देखो, बृहत्कल्पसूत्रमें) वहता हुवा साधु ग्लानपनेको प्राप्त हुवा हो, वह साधु गणविच्छेदकके पास आवे तो गणविच्छेदकको नहीं कल्पै, उसको गणसे निकाल देना या उसका तिरस्कार करना. गणविच्छेदककी फर्ज है कि उस मुनिकी अग्लानपणे वैयावच्च करावे. जहांतक उस मुनिका शरीर रोगरहित न हो वहांतक. फिर रोग रहित हो जाने के बाद जो मुनि वैयावच्च करी थी, उसको नाम मात्र स्तोक प्रायश्चित्त देना. कारण—वह रोगी साधु प्रायश्चित्त वह रहा था. जैन शासनकी बलिहारी है कि आप प्रायश्चित्त भी ग्रहन करे, परन्तु परोपकारके लीये उस ग्लान साधुकी वैयावच्च कर उसे समाधि उपजावे.

(८) एवं पारंचिय प्रायश्चित्त वहता हुवा (दशवा प्रायश्चित्त)

(९) 'खित्तचित्त' किसी प्रकारकी वायुके प्रयोगसे विक्षिप्त—विकल चित्त हुवा साधु ग्लान हो, उसको गच्छ वहार

करना गणविच्छेदकको नहीं कल्पै. किन्तु उस मुनिकी अम्लानपणे वैयावच्च करना कल्पै. जहांतक वह मुनिका शरीर रोग रहित न हो, वहांतक. यावत् पूर्ववत्.

(१०) 'दित्तचित्त' कन्दर्पादि कारणोंसे दित्तचित्त होता है.

(११) 'जक्खाइट्ठं' यक्ष भूतादिके कारणसे " "

(१२) 'उमायपत्तं' उन्मादको प्राप्त हुवा.

(१३) 'उवसग्गं' उपसर्गको प्राप्त हुवा.

(१४) 'साधिकरण' किसीके साथ क्रोधादि होनेसे.

(१५) 'सप्रायश्चित्त' किसी कारणसे अधिक प्रायश्चित्त आने पर.

(१६) भात पाणीका परित्याग (संथारा) करने पर.

(१७) 'अर्थजात' किसी प्रकारकी तीव्र अभिलाष हो, तथा अर्थ याने द्रव्यादि देखनेसे अभिलाषा वशात्.

उपर लिखे कारणोंसे साधु अपना स्वरुप भूल वेभान हो जाता है, ग्लान हो जाता है, उस समय गणविच्छेदकको, उस मुनिको गण बाहार कर देना या तिरस्कार करना नहीं कल्पै. किन्तु उस मुनिकी वैयावच्च करना कराना कल्पै. कारण— ऐसी हालतमें उस मुनिको गच्छ बाहार निकाल दीया जाय तो शासनकी लघुता होती है. मुनियोंमें निर्दयता और अन्य लोगोंका शासन-गच्छमें दीक्षा लेनेका अभाव हो होता है. तथा संयमी जीवोंको सहायता देना महान् लाभका कारण है. वास्ते गणविच्छेदकको चाहिये कि उस मुनिका शरीर जहांतक रोग मुक्त न हो वहांतक वैयावच्च करे. फिर उस मुनिका शरीर रोगमुक्त हो जाय तब वैयावच्च करनेवाले

मुनिको व्यवहार शुद्धिके निमित्त नाम मात्र प्रायश्चित्त देवे. कारण-वह ग्लान साधु उस समय दोषित है, परन्तु वैयावच्च करनेवाला उत्कृष्ट परिणामसे तीर्थंकर गोत्र बांध सकता है.

(१८) नौवा प्रायश्चित सेवन करनेवालेको अगृहस्थपणे दीक्षा देना नहीं कल्पै गणविच्छेदकको.

(१९) नौवा अनवस्थित नामका प्रायश्चित कोइ साधु सेवन कीया हो, उसको फिरसे गृहस्थलिंग धारण करवाके ही दीक्षा देना गणविच्छेदकको कल्पै.

(२०) दशवा प्रायश्चित करनेवालेको अगृहस्थपणे दीक्षा देना नहीं कल्पै गणविच्छेदकको.

(२१) दशवा पारंचित नामका प्रायश्चित किसी साधुने सेवन कीया हो, उसको फिरसे गृहस्थलिंग धारण करवाके ही दीक्षा देना गणविच्छेदकको कल्पै.

(२२) नौवां अनवस्थित तथा दशवां पारंचित नामका प्रायश्चित किसी साधुने सेवन कीया हो, उसे गृहस्थलिंग करवाके तथा अगृहस्थ (साधु) लिंगसे ही दीक्षा देना कल्पै.

भावार्थ—नौवां दशवां प्रायश्चित (वृहत्कल्पमें देखो) यह एक लौकिक प्रसिद्ध प्रायश्चित है. इस वास्ते जनसमूहको शासनकी प्रतीतिके लीये तथा दुसरे साधुवोंका क्षोभके लीये उसे प्रसिद्धिमें ही गृहस्थलिंग करवाके फिरसे नवी दीक्षा देना कल्पै. अगर कोइ आचार्यादि महान् अतिशय धारक हो, जिसकी विशाल समुदाय हो, अगर कोइ भवितव्यताके कारण ऐसा दोष सेवन कीया हो, वह बात गुप्तपणे हो तो उसको प्रायश्चित अन्दर ही देना चाहिये. तात्पर्य-गुप्त प्रायश्चित्त हो, तो आलोचना भी गुप्त देना. और प्रसिद्ध प्रायश्चित्त हो तो आलोचना भी प्रसिद्ध देना परन्तु आलो-

चना विना आराधक नहीं होता है. जैसे गच्छको और संघको प्रतीतिका कारन हो, ऐसा करना चाहिये.

(२३) दो साधु सदृश समाचारीवाले साथमें विचरते है. किसी कारणसे एक साधु दुसरे साधुपर अभ्याख्यान (कलंक) देनेके इरादेसे आचार्यादिके पास जाके अर्ज करे कि-हे भगवन्, मैंने अमुक साधुके साथ अमुक अकृत्य काम कीया है. इसपर जिस साधुका नाम लीया, उस साधुको आचार्य बुलवाके हितबुद्धि और मधुरतासे पुछे—अगर यह साधु स्वीकार करे, तो उसको प्रायश्चित्त देवे, अगर वह साधु कहे कि-मैंने यह अकृत्य कार्य नहीं कीया है. तो कलंकदाता मुनिको उसका प्रमाण पुरःसर पुछे, अगर वह साबुती पुरी न दे सके, तो जितना प्रायश्चित उस मुनिको आता था, उतना ही प्रायश्चित्त उस कलंकदाता मुनिको देना चाहिये. अगर आचार्य उस बातका पूर्ण निर्णय न कर, राग द्वेषके वश हो अप्रतिसेवीको प्रतिसेवी बनाके प्रायश्चित देवे तो उतना ही प्रायश्चित्तका भागी प्रायश्चित्त देनेवाला आचार्य होता है.

भावार्थ—संयम है सो आत्माकी साक्षीसे पलता है. और सत्य प्रतिज्ञा ऐसा व्यवहार है. अगर विगर साबुती किसीपर आक्षेप कायम कर दिया जायगा, तो फिर हरेक मुनि हरेकपर आक्षेप करते रहेगा, तो गच्छ और शासनकी मर्यादा रहना असंभव होगा. वास्ते बात करनेवाले मुनिको प्रथम पूर्ण साबुती या जांच कर लेना चाहिये.

(२४) किसी मुनिको मोहकर्मका प्रबल उदय होनेसे कामपीडित हो, गच्छको छोडके संसारमें जाना प्रारंभ कीया, जाते हुवेका परिणाम हुवा कि—अहो ! मैंने अकृत्य कीया, पाया हुवा चारित्र चिंतामणिको छोड काचका कटका ग्रहन करनेकी अभिलाषा करता हुं. ऐसे विचारसे वह साधु फिरसे उसी गच्छमें

आनेकी इच्छा करे, अगर उस समय अन्य साधु शंका करे कि-इसने दोष सेवन कीया होगा या नहीं? उन्होंकी प्रतीतिके लीये आचार्यमहाराज उसकी जांच करे. प्रथम उस साधुको पूछे. अगर वह साधु कहे कि—मैंने अमुक दोष सेवन कीया है. तो उसको यथायोग्य प्रायश्चित्त देना. अगर साधु कहे कि—मैंने कुच्छ भी दोष सेवन नहीं कीया है, तो उसकी सत्यतापर ही आधार रखे. कारण प्रायश्चित्त आदि व्यवहारसे ही दीया जाता है.

भावार्थ—अगर आचार्यादिको अधिक शंका हो तो जहां पर वह साधु गया हो, वहांपर तलास करा लि जावे. भगवती सूत्र ८-६ मनकी आलोचना मनसे भी शुद्ध हो सकत्ती है.

(२५) एक पक्षवाले साधुको स्वल्पकालके लीये आचार्योपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै. परन्तु गच्छवासी निर्ग्रथोंको उसकी प्रतीति होनी चाहिये.

भावार्थ—जिन्होंको रागद्वेषका पक्ष नहीं है. अथवा एक गच्छमें गुरुकुलवासको चिरकाल सेवन कीया हो. प्रायः गुरुकुलवास सेवन करनेवालेमें अनेक गुण होते है. नये पुराणे आचार व्यवहार, साधु आदिके जानकार होते है, गच्छमर्यादा चलानेमें कुशल होते है, उन्होंको आचार्यकी मौजुदगीमें पद्वी दी जाती है. अगर आचार्य कभी कालधर्म पाया हो, तो भी उन्होंके पीछे पद्वीका झघडा न हो, साधु सनाथ रहै. स्वल्पकालकी पद्वी देनेका कारण यह है कि—अगर दुसरा कोइ योग्य हो तो वह पद्वी उन्होंको भी दे सकते है. अगर दुसरा पद्वीके योग्य न हो तो, चिरकालके लीये ही उसी पद्वीको रख सकते है.

(२६) जो कोइ मुनि परिहार तप कर रहे है, और कितनेक अपरिहारिक साधु एकत्र निवास करते है. उन्होंको एक

मंडलपर संविभागके साथ भोजन करना नहीं कल्पै. कहांतक? कि जो एक मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, च्यार मासिक, पांच मासिक, छे मासिक, जितना तप कीया हो, उतने मास और प्रत्येक मासके पीछे पांच पांच दिन. एवं छे मासके तपवालेके साथ तपके सिवाय एक मास साथमें भोजन नहीं करे. कारण-तपस्याके पारणेवालोंको शाताकारी आहार देना चाहिये. वास्ते एकत्र भोजन नहीं करे. बादमें सर्व साधु संविभाग संयुक्त सामेल आहार करे.

(२७) परिहार तप करनेवाले मुनिके पारणादिमें अशनादि च्यार आहार वह स्वयं ही ले आते है. दुसरे साधुको देना दिलाना नहीं कल्पै. अगर आचार्यमहाराज विशेष कारण जानके आज्ञा दे तो अशनादि आहार देना दिलाना कल्पै. इसी माफिक घृतादि विगइ भी समझना.

(२८) किसी स्थविर महाराजकी वैयावचमें कोइ परिहारिक तप करनेवाला साधु रहेता है, तो उस परिहारिक तपस्वीके पात्रमें लाया हुवा आहार स्थविरोंके काममें नहीं आवे. अगर स्थविर महाराज किसी विशेष कारणसे आज्ञा दे दे कि-हे आर्य! तुम तुमारे गौचरी जाते हो तो हमारे भी इतना आहार ले आना. तो भी उस परिहारिक साधुके पात्रमें भोजन न करे. आहार लानेके बादमें आचार्य अपने पात्रमें तथा अपने कमंडलमें पाणी लेके काममें लेवे (भोगवे).

(२९) इसी माफिक परिहारिक साधु स्थविरोंके लीये गौचरी जा रहा है. उस समय विशेष कारण जान स्थविर कहे कि—हे आर्य! तुम हमारे लीये भी अशनादि लेते आना. आहारादि लानेके बाद अपने अपने पात्रमें आहार, कमंडलमें पाणी ले लेवे. फिर पूर्वकी माफिक आहारादि भोगवे.

भावार्थ—प्रायश्चित्त लेके तप कर रहा है. इसी वास्ते वह साधु शुद्ध है. वास्ते उसने लाया हुवा अशनादि स्थविर भोगव सके. परन्तु अबी तक तपको पूर्ण नहीं कीया है. वास्ते उस साधुके पात्रादिमें भोजन न करें. उससे उस साधुको क्षोभ रहेता है. तपको पूर्णतासे पार पहुंचा सकते हैं. इति.

श्री व्यवहार सूत्र—दूसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

—————

(३) तीसरा उद्देशा.

(१) साधु इच्छा करे कि मैं गणको धारण करुं. अर्थात् शिष्यादि परिवारको ले आगेवान हो के विचरुं. परन्तु आचारांग और निशीथसूत्रके जानकार नहीं है. उन साधुको नहीं कल्पै गणको धारण करना.

(२) अगर आचारांग और निशीथसूत्रका ज्ञाता हो, उस साधुको गण धारण करना कल्पै.

भावार्थ—आगेवान हो विचरनेवाले साधुवोंको आचारांगसूत्रका ज्ञाता अवश्य होना चाहिये, कारण—साधुवोंका आचार, गोचार, विनय, वैयावच्च, भाषा आदि मुनि मार्गका आचारांगसूत्रमें प्रतिपादन कीया हुवा है. अगर उस आचारसे स्खलना हो जावे, अर्थात् दोष लग भी जावे तो उसका प्रायश्चित निशीथ सूत्रमें है. वास्ते उक्त दोनों सूत्रोंका जानकार हो, उस मुनिको ही आगेवान होके विहार करना कल्पै.

(३) आगेवान हो विहार करनेकी इच्छावाले मुनियोंको पेस्तर स्थविर (आचार्य) महाराजसे पूछना इसपर आचार्य महाराज योग्य जानके आज्ञा दे तो कल्पै.

(४) अगर आज्ञा नहीं देवे तो उस मुनिको आगेवान होके विचरना नही कल्पै. जो विना आज्ञा गणधारण करे, आगेवान हो विचरे, उस मुनिको, जितने दिन आज्ञा बाहार रहै, उतने दिनका छेद तथा तप प्रायश्चित होता है और जो उन्होंके साथ रहनेवाले साधु है, उसको प्रायश्चित्त नही है. कारण वह उस अग्रेश्वर साधु के कहनेसे रहे थे।

(५) तीन वर्षकी दीक्षा पर्यायवाले साधु आचारमें, संयममें, प्रवचनमें, प्रज्ञामें, संग्रह करनेमें, अवग्रह लेनेमें कुशल—होशीयार हो, जिसका चारित्र खंडित न हुवा हो. संयममें सवला दोष नहीं लगा हो, आचार भेदित न हुवा हो, कपाय कर चारित्र संक्लिष्ट नहीं हुवा हो, बहु श्रुत, बहुत आगम तथा विद्याओंके जानकार हो, कमसे कम आचारांग सूत्र, निशीथ सूत्र के अथ--परमार्थका जानकार हो, उस मुनिको उपाध्याय पद देना कल्पै.

(६) इससे विपरीत जो आचारमें अकुशल यावत् अल्प सूत्र अर्थात् आचारांग, निशीथका अज्ञातको उपाध्यायपद देना नहीं कल्पै.

(७) पांच वर्षोंकी दीक्षा पर्यायवाला साधु आचारमें कुशल यावत् बहुश्रुत हो, कमसे कम दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार, बृहत्कल्प सूत्रोंके जानकार हो, उस मुनिको आचार्य, उपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै

(८) इससे विपरीत हो, उसे आचार्य उपाध्यायकी पद्वी देना नहीं कल्पै.

(९) आठ वर्षोंकी दीक्षा पर्यायवाले मुनि आचार कुशल यावत् बहुश्रुत--बहुत आगमों विद्याओंके जानकार कमसे कम स्थानांग, समवायांग सूत्रोंका जानकार हो, उस महात्माओंको

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणि, गणविच्छेदक, पद्वी देना कल्पै. और उस मुनिको उक्त पद्वी लेना भी कल्पै.

(१०) इससे विपरीत हो तो न संघको पद्वी देना कल्पै, न उस मुनिको पद्वी लेना कल्पै. कारण-पद्वीधरोंके लीये प्रथम इतनी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये. जो उपर लिखी हुइ है.

(११) एक दिनके दिक्षितको भी आचार्यपद्वी देना कल्पै.

भावार्थ—किसी गच्छके आचार्य कालधर्म प्राप्त हुवे, उस गच्छमें साधु संप्रदाय विशाल हैं, किन्तु पीछे असा कोइ योग्य साधु नहीं है कि जिसको आचार्यपद पर स्थापन कर अपना निर्वाह कर सके. उस समय अच्छा, उच्च, कुलीन जिस कुलको अन्दर वडी उदारता है, विश्वासकारी उच्च कार्य कीया हुवा है, संसारमें अपने विशाल कुटुम्बका हितपूर्वक निर्वाह कीया हो, लोकमें पूर्ण प्रतीत हो-इत्यादि उत्तम गुणोंवाले कुलका योग्य पुरुष दीक्षा ली हो, असा एक दिनकी दीक्षावालेको आचार्यपद देना कल्पे.

(१२) वर्ष पर्याय धारक मुनिको आचार्थ उपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै.

भावार्थ—कोइ गच्छमें आचार्योपाध्याय कालधर्म प्राप्त हो गये हो और चिरदिक्षित आचार्योपाध्यायका योग न हो, उस हालतमें पूर्वोक्त जातिवान्, कुलवान्, गच्छ निर्वाह करने योग्य अचिरकाल दीक्षित है, उसको भी आचार्योपाध्याय पद्वी देनी कल्पै. परन्तु वह मुनि आचारांग निशीथका जानकार न हो तो उसे कह देना चाहिये कि-आप पेस्तर आचारांग निशीथका अभ्यास करो. इसपर वह मुनि अभ्यास कर आचारांग निशीथ सूत्र पढ ले, तो उसे आचार्योपाध्याय पद्वी देना कल्पै. अगर

आचारांग निशीथ सूत्रका अभ्यास न करे, तो पद्वी देना नहीं कल्पै. कारण-साधुवर्गका खास आधार आचारांग और निशीथ-सूत्र परही है.

(१३) जिस गच्छमें नवयुवक तरुण साधुवोंका समूह है, उस गच्छके आचार्योपाध्याय कालधर्म प्राप्त हो जावे तो उस मुनियोंको आचार्योपाध्याय विना रहेना नहीं कल्पै. उस मुनियोंको चाहिये कि शीघ्रतासे प्रथम आचार्य, फिर उपाध्यायपद पर स्थापन कर, उन्ही की आज्ञामें प्रवृत्ति करना चाहिये. कारण-आचार्योपाध्याय विना साधुवोंका निर्वाह होना असंभव है.

(१४) जिस गच्छमें नव युवक तरुण साध्वीयां है. उन्होंके आचार्य, उपाध्याय और प्रवर्त्तिनी कालधर्म प्राप्त हो गये हो, तो उन्होंको पहले आचार्यपद, पीछे उपाध्यायपद और पीछे प्रवर्तिनीपद स्थापन करना चाहिये. भावना पूर्ववत्

(१५) साधु गच्छमें (साधुवेषमें) रह कर मैथुनको सेवन कीया हो, उस साधुको जावजीवतक आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर, गणविच्छेदक, इस पद्वीयोंमेंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नहीं कल्पै, और उस साधुको लेना भी नहीं कल्पै जिसको शासनका, गच्छका और वेपकी मर्यादाका भी भय नहीं है, तो वह पद्वीधर हो के शासनका और गच्छका क्या निर्वाह कर सके ?

(१६) कोइ साधु प्रवल मोहनीयकर्मसे पोडित होनेपर गच्छ संप्रदायको छोडके मैथुन सेवन कीया हो, फीर मोहनीयकर्म उपशांत होनेसे उसी गच्छमें फिरसे दीक्षा लेवे, अर्थात् दीक्षा देनेवाला उसे दीक्षायोग्य जाने तो दे; उस साधुको तीन वर्षतक पूर्वोक्त सात पद्वीसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नहीं कल्पै,

और न तो उस साधुको पद्वी धारण करना कल्पै. अगर तीन वर्ष अतिक्रमके बाद चतुर्थ वर्षमें प्रवेश किया हो, वह साधु कामविकारसे बिलकुल उपशांत हुवा हो, निवृत्ति पाइ हो, इंद्रियों शांत हो, तो पूर्वोक्त सात पद्वीमेंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना और उस मुनिको पद्वी लेना कल्पै.

भावार्थ—भवितव्यताके योगसे किसी गातार्थको कर्मोदय के कारणसे विकार हो, तो भी उसके दिलमें शासन वसा हुवा है कि वह गच्छ, वेष छोडके अकृत्य कार्य किया है, और काम उपशांत होनेसे अपना आत्मस्वरुप समझ दीक्षा ली है. ऐसेको पद्वी दी जावे तो शासनप्रभावनापूर्वक गच्छका निर्वाह कर सकेगा.

(१७) इसी माफिक गण विच्छेदक.

(१८) एवं आचार्योपाध्याय.

भावार्थ—अपने पदमें रहके अकृत्य कार्य करे, उसे जावजीव किसी प्रकारकी पद्वी देना और उन्होंको पद्वी लेना नहीं कल्पै. अगर अपने पदको, वेषको छोड पूर्वोक्त तीन वर्षोंके बाद योग्य जाने तो पद्वी देना और उन्होंको लेना कल्पै. भावनापूर्ववत्.

(१९) साधु अपने वेषको विना छोडे और देशांतर विना गये अकृत्य कार्य करे, तो उस साधुको जावजीवतक सात पद्वीमेंसे कोइभी पद्वी देना नहीं कल्पै.

भावार्थ – जिस देश, ग्राममें वेषका त्याग कीया है, उसी देश, ग्रामादिमें अकृत्य कार्य करनेसे शासनकी लघुता करनेवाला होता है. वास्ते उसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नही कल्पै. अगर किसी साधुको भोगावली कर्मोदयसे उन्माद प्राप्ति हो भी जावे, परन्तु उसके हृदयमें शासन वस रहा है. वह अपना वेशका त्याग कर, देशान्तर जा, अपनी कामाग्निको शांत कर, फिर

आत्मभावना वृत्तिसे पुनः उसी गच्छमें दीक्षा ले, बादमें तीन वर्ष हो जावे, काम विकारसे पूर्ण निवृत्त हो जाय, उपशान्त हो, इंद्रियों शांत हो, उसको योग्य जाने तो सात पद्वीमेंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(२०) एवं गणविच्छेदक.

(२१) एवं आचार्योपाध्यायभी समझना.

(२२) साधु बहुश्रुत (पूर्वांगके ज्ञान) बहुत आगम, विद्याके जानकार, अगर कोइ जबर कारण होनेपर मायासंयुक्त मृषावाद—उत्सूत्र बोलके अपनी उपजीविका करनेवाला हो, उसे जावजीव तक सात पद्वीमेंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नहीं कल्पै.

भावार्थ—असत्य बोलनेवालोंकी किसी प्रकारसे प्रतीति नहीं रहती हैं. उत्सूत्र बोलनेवाला शासनका घाती कहा जाता हैं. सभीका पत्ता मिलता है, परन्तु असत्यवादीयोंका पत्ता नहीं मिलता है. वास्ते असत्य बोलनेवाला पद्वीके अयोग्य हैं.

(२३) एवं गणविच्छेदक.

(२४) एवं आचार्य.

(२५) एवं उपाध्याय.

(२६) बहुतसे साधु एकत्र हो सबके सब उत्सूत्रादि असत्य बोले.

(२७) एवं बहुतसे गण विच्छेदक.

(२८) एवं बहुतसे आचार्य.

(२९) एवं बहुतसे उपाध्याय.

(३०) एवं बहुतसे साधु, बहुतसे गणविच्छेदक, बहुतसे आचार्य, बहुतसे उपाध्याय एकत्र हुये, माया संयुक्त मृषावाद

बोले, उत्सूत्र बोले, आगम विरुद्ध आचरण करे-इत्यादि असत्य बोले तो सबके सबको जावजीवतक सात प्रकारमेंसे कोइभी पद्वी देना नहीं कल्पै. अर्थात् सबके सब पद्वीके अयोग्य है. इति.

श्री व्यवहारसूत्र-तीसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(४) चौथा उद्देशा.

(१) आचार्योपाध्यायजीको शीतोष्ण कालमें अकेले विहार करना नहीं कल्पै.

(२) आचार्योपाध्यायजीको शीतोष्ण कालमें आप सहित दो ठाणेसे विहार करना कल्पै. अधिक सामग्री न हो, तो उतने रहै, परन्तु कमसे कम दो ठाणे तो होनाही चाहिये.

(३) गणविच्छेदकको शीतोष्ण कालमें आप सहित दो ठाणे विहार करना नहीं कल्पै.

(४) आप सहित तीन ठाणेसे कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(५) आचार्योपाध्यायको आप सहित दो ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(६) आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करना कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(७) गणविच्छेदकको आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करणा नहीं कल्पै.

(८) आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास रहना कल्पै.

भावार्थ—कमसे कम रहे तो यह कल्प है. आचार्योपाध्यायसे एक साधु गणविच्छेदकको अधिक रखना चाहिये. कारण–

दुसरे साधुवोंके कारण हो तो आचार्य इच्छा हो तो वैयावच्च करें करावें; परन्तु गणविच्छेदकको तो अवश्य वैयावच्च करना ही पडता है. वास्ते एक साधु अधिक रखना ही चाहिये.

(९) ग्राम-नगर यावत् राजधानी बहुतसे आचार्योपाध्याय, आप सहित दो ठाणे, बहुतसे गणविच्छेदक आप सहित तीन ठाणे शीतोष्णकालमें विहार करना कल्पै.

(१०) और आप सहित तीन ठाणे आचार्योपाध्याय, आप सहित च्यार ठाणे गणविच्छेदकको चातुर्मास रहना कल्पै. परन्तु साधु अपनी अपनी निश्रा कर रहना चाहिये. कारण—कभी अलग अलग जानेका काम पडे तो भी नियत कीये हुये साधुवोंको साथ ले विहार कर सके. भावना पूर्ववत्.

(११) आचारांग और निशीथसूत्रके जानकार साधुको आगेवान करके उन्होंके साथ अन्य साधु विहार कर रहे थे. कदाचित् वह आगेवान साधु कालधर्मको प्राप्त हो गया हो, तो शेष रहे हुये साधुवोंकी अन्दर अगर आचारांग और निशीथसूत्रका जानकार साधु हो तो उसे आगेवान कर, सब साधु उन्होंकी आज्ञामें विचरना. अगर ऐसा न हो, अर्थात् सब साधु आचारांग और निशीथसूत्रके अपठित हो तो सब साधुवोंको प्रतिज्ञापूर्वक वहांसे विहार कर जिस दिशामें अपने स्वधर्मी साधु विचरते हो, उसी दिशामें एक रात्रि विहार प्रतिमा ग्रहन कर, उस स्वधर्मीयोंके पास आ जाना चाहिये. रहस्तेमें उपकार निमित्त नहीं ठहरना. अगर शरीरमें कारण हो तो ठेर सके. कारण—निवृत्ति होनेके बाद पूर्वस्थित साधु कहे—हे आर्य! एक दोय रात्रि और ठहरो कि तुमारे रोगनिवृत्तिकी पूर्ण खातरी हो. ऐसा मौकापर एक दोय रात्रि ठहरना भी कल्पै. एक दोय

रात्रिसे अधिक नहीं रहना. अगर रोगचिकित्सा होनेपर एक दोय रात्रिसे अधिक ठहरे, तो जितना दिन ठहरे, उतना ही दिनोंका छेद तथा तप प्रायश्चित्त होता है.

भावार्थ—आचारांग और निशीथसूत्रके जानकार हो वह मुनि ही मुनिमार्गको ठीक तौरपर चला सकता है. अपठितोंके लीये रहस्तेमें एक दोय रात्रिसे अधिक ठहरना भी शास्त्रकारोंने बिलकुल मना कीया है. कारण—लाभके बदले बडा भारी नुकशान उठाना पडता है. चारित्र तो क्या परन्तु कभी कभी सम्यक्त्व रत्न ही खो बेठना पडता है. वास्ते आचारांग और निशीथके अपठित साधुवोंको आगेवान होके विहार करनेकी साफ मनाइ है.

(१२) इसी माफिक चातुर्मास रहे हुवे साधुवोंके आगेवान मुनि काल करनेपर दुसरा आचारांग-निशीथके जानकार हो तो उसकी निश्राय रहना. अगर ऐसा न हो तो चातुर्मासमें भी विहार कर, अन्य साधु जो आचारांग-निशीथका जानकार हो, उन्होंके पास आ जाना चाहिये. परन्तु एक दोय रात्रिसे अधिक अपठित साधुवोंको रहनेकी आज्ञा नहीं है. स्वेच्छासे रह भी जावे, तो जितने दिन रहे, उतने दिनका छेद तथा तपप्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१३) आचार्योपाध्याय अन्त समय पीछले साधुवोंको कहे कि—हे आर्य ! मेरा मृत्युके बाद आचार्यपदवी अमुक साधुको दे देना. ऐसा कहके आचार्य कालधर्म प्राप्त हो गये. पीछेसे साधु (संघ) उस साधुको आचार्योपाध्याय पद्वीके योग्य जाने तो उसे आचार्योपाध्याय पद्वी दे देवे, अगर वह साधु पद्वीके योग्य नहीं है, (आचार्य रागभावसे ही कह गये हो.) अगर गच्छमें

दुसरा साधु पद्वी योग्य हो तो उस योग्य साधुको पद्वी देवे. अगर दुसरा साधु भी योग्य न हो, तो मूल जो आचार्य कह गये थे, उसी साधुको पद्वी दे देवे. परन्तु उस साधुसे इतना करार करना चाहिये कि—अभी गच्छमें कोइ दुसरा पद्वी योग्य साधु नहीं है, वहांतक तुमको यह पदवी दी जाती है. फिर पद्वी योग्य साधु निकल आवेगा, उस समय आपको पद्वी छोडनी पडेगी इस सरतसे पद्वी दे देवे. बादमें कोइ पद्वीयोग्य साधु हो तो, संघ एकत्र हो मूल साधुको कहे कि—हे आर्य! अब हमारे पास पद्वीयोग्य साधु है. वास्ते आप अपनी पद्वीको छोड दें. इतना कहने पर वह साधु पद्वी छोड दे तो उसको किसी प्रकारका छेद तथा तप प्रायश्चित्त नहीं है. अगर आप उस पद्वीको न छोडे, तो जितना दिन पद्वी रखे, उतना दिनका छेद तथा तप प्रायश्चित्तका भागी होता है. तथा उस पद्वी छोडानेका प्रयत्न साधु संघ न करे तो सबके सब संघ प्रायश्चित्तका भागी होता है.

भावार्थ—गच्छपति योग्य अतिशयवान् होता है. वह अपने शासन तथा गच्छका निर्वाह करता हुवा शासनोन्नति कर सक्ता है. वास्ते पद्वी योग्य महात्माओंको ही देना चाहिये, अयोग्य को पद्वी देनेकी साफ मनाइ है.

(१४) इसी माफिक आचार्योपाध्याय प्रबल मोहकर्मोदयसे विकार अर्थात् कामदेवको जीत न सके, शेष भोगावलिकर्म भोगवने के लीये गच्छका परित्याग करते समय कहे कि-मेरी पद्वी अमुक साधुको देना. वह योग्य हो तो उसको ही देना, अगर पद्वीके योग्य न हो, तो दुसरा साधु पद्वीके योग्य हो, उसे पद्वी देना. अगर दुसरा साधु योग्य न हो, तो मूल जिस साधुका नाम आचार्यने कहा था, उसे पर्वोक्त सरत कर पद्वी देना, फिर दुसरा

योग्य साधु होने पर उसकी पदवी ले लेना चाहिये. माँगनेपर पद्वी छोड दे तो प्रायश्चित्त नहीं है. अगर न छोडे तथा छोडाने के लीये साधु संघ प्रयत्न न करे, तो सबको तथा प्रकारका छेद और तप प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१५) आचार्योपाध्याय किसी गृहस्थको दीक्षा दी है, उस साधुको वडी दीक्षा देनेका समय आनेपर आचार्य जानते हुवे च्यार पांच रात्रिसे अधिक न रखे. अगर कोइ राजा और प्रधान शेठ और गुमास्ता तथा पिता और पुत्र साथमें दीक्षा ली हो, राजा, शेठ, और पिता जो [1]वडी दीक्षा योग्य न हुवा हो और प्रधान, गुमास्ता, पुत्र वडीदीक्षा योग्य हो गये हो तो जवतक राजा, शेठ और पिता वडी दीक्षा योग्य नहो वहांतक प्रधान, गुमास्ता और पुत्रको आचार्य वडी दीक्षासे रोक सकते है. परन्तु ऐसा कारण न होनेपर उस लघु दीक्षावाला साधुको वडी दीक्षासे रोके तो रोकनेवाला आचार्य उतने दिनके तप तथा छेदके प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(१६) एवं अनजानते हुवे रोके.

(१७) एवं जानते अनजानते हुवे रोंके, परन्तु यहां दश रात्रिसे ज्यादा रखनेसे प्रायश्चित्त होता है.

नोटः—अगर पिता, पुत्र और दुसराभी साथमें दीक्षा ली हो, पिता वडी दीक्षा योग्य न हुवा, परन्तु उसका पुत्र वडी दीक्षा योग्य हो गया है और साथमें दीक्षा लेनेवालाभी वडी दीक्षाके योग्य हो गया हे. अगर पिताके लीये पुत्रको रोक दीया

---

१ सात रात्रि, च्यार मास, छे मास–छोटी दीक्षाका तीन काल है. इतने समयमें प्रतिक्रमणसे पंडिषण नामका अध्ययन तथा दशवैकालिकका चतुर्थाध्ययन पढलेनेवालोंको वडी दीक्षा दी जाती है.

जाय, तो साथमें दुसरे दीक्षा लीथी, वह पुत्रसे दीक्षामें वृद्ध हो जावे. इस वास्ते आचार्य महाराज उस दीक्षित पिताको मधुर वचनोंसे समझावे—हे आर्य! अगर तुमारे पुत्रको वडी दीक्षा आवेगा, तो उसका गौरव तुमारेही लीये होगा—इत्यादि समझायके पुत्रको वडी दीक्षा दे सके है.

(१८) कोइ मुनि ज्ञानाभ्यासके लीये स्वगच्छको छोड अन्य गच्छमें जावे. अन्य गच्छमें जो रत्नत्रयादिसे वृद्ध साधु है, वह सामान्य ज्ञानवाला है. और लघु साधु है, वह अच्छे गीतार्थ है. उन्होंके पास वह साधु ज्ञानाभ्यास कर रहा है उस समय कोइ अन्य साधर्मी साधु मिले, वह पूछते है कि – हे आर्य! तुम किसके पास ज्ञानाभ्यास करते हो? उत्तरमें अभ्यासी साधु रत्नत्रयादिसे वृद्ध साधुयोंका नाम बतलावे. तब पूछनेवाला कहे कि—इसे तो तुमारेही ज्ञान अच्छा है. तो तुम उन्होंके पास कैसे अभ्यास करते हो. तब अभ्यासक कहे कि—मैं ज्ञानाभ्यास तो अमुक मुनिके पास करता हुं, परन्तु जो महात्मा मुझे ज्ञान देता है, वह उन्ही रत्नत्रयादिसे वृद्धकी आज्ञासे देता है.

भावार्थ—वह निर्देशकोंका वहुमान करता हुवा अभ्यास करानेवाला महात्माकाभी विनय सहित वहुमान कीया है.

(१९) वहुतसे स्वधर्मी साधु एकत्र होके विचरनेकी इच्छा करे, परन्तु स्थविर महाराजको पूछे विना एकत्र हो विचरना नहीं कल्पै. अगर स्थविरोंकी आज्ञा विना एकत्र होके विचरे तो जितने दिन आज्ञा विना विचरे, उतने दिनोंका छेद तथा तप प्रायश्चित्त होता है.

भावार्थ—स्थविर लाभका कारण जाने तो आज्ञा दे, नहीं तो आज्ञा न देवे.

(२०) विना आज्ञा विहार करे, तो एक दोय तीन च्यार पांच रात्रिसे अपने स्थविरोंको देखके सत्यभावसे आलोचना —प्रतिक्रमण कर, यथायोग्य प्रायश्चित्तको स्वीकार कर पुनः स्थविरोंकी आज्ञामें रहे, किन्तु हाथकी रेखा सुके वहांतक भी आज्ञा वहार न रहे. आज्ञा है वही प्रधान धर्म है.

(२१) आज्ञा वहार विहार करतेको च्यार पांच रात्रिसे अधिक समय हो गया हो, बादमें स्थविरोंको देख सत्यभावसे आलोचना-प्रतिक्रमण कर, जो शास्त्र परिमाणसे स्थविरों तप, छेद, पुनः उत्थापन प्रायश्चित्त देवे, उसे सविनय स्वीकार करे, दुसरी दफे आज्ञा लेके विचरे. जो जो कार्य करना हो, वह सब स्थविरोंकी आज्ञासे ही करे, हाथकी रेखा सुके वहांतक भी आज्ञाके वहार नहीं रहे. तीसरा महाव्रतकी रक्षाके निमित्त स्थविरोंकी आज्ञाको यावत् काया कर स्पर्श करे. एवं.

(२२) (२३) दो अलापक विहारसे निवृत्ति होनेका है.

भावार्थ—इस च्यारों सूत्रोंमें स्थविरोंकी आज्ञाका प्रधानपणा बतलाया है. स्थविरोंकी आज्ञाका पालन करनेसे ही मुनियोंका तीसरा व्रत पालन हो सकता है.

(२४) दो स्वधर्मी साथमें विहार करते हैं. जिसमें एक शिष्य है, दुसरा रत्नत्रयादिसे गुरु है. शिष्यको श्रुतज्ञान तथा शिष्यादिका परिवार बहुत है, और गुरुको स्वल्प है. तदपि शिष्यको गुरुमहाराजका विनय वैयावच्चादि करना, आहार, पाणी, वस्त्र, पात्रादि अनुकूलतापूर्वक लाके देना कल्पै. गुरुकुल वास रह के उन्होंकी सेवा-भक्ति करना कल्पै. कारण—जो परिवार है, वह सब गुरुकृपाका ही फल है.

(२५) और जो शिष्यको श्रुतज्ञान तथा शिष्यादिका

परिवार स्वल्प है, और गुरुको बहुत परिवार है. परन्तु गुरुकी इच्छा हो तो शिष्यको देवे, इच्छा न हो तो न देवे, इच्छा हो तो पासमें रखे, इच्छा हो तो पासमें न रखे, इच्छा हो तो अशनादि देवे, इच्छा हो तो न भी देवे, यह सब गुरुमहाराजकी इच्छापर आधार है. परन्तु शिष्यको तो गुरुमहाराजका बहुमान विनय करना ही चाहिये.

(२६) दो स्वधर्मी साधु साथमें विहार करते हो, तो उनको बराबर होके रहना नहीं कल्पै. परन्तु एक गुरु दुसरा शिष्य होके रहना कल्पै. अर्थात् एक दुसरेको वृद्ध समझ उन्होंको वन्दन-नमस्कार, सेवा-भक्ति करते रहना चाहिये.

(२७) एवं दो गणविच्छेदक.

(२८) दो आचार्योपाध्याय.

(२९) बहुतसे साधु.

(३०) बहुतसे गणविच्छेदक.

(३१) बहुतसे आचार्योपाध्याय.

(३२) बहुतसे साधु, बहुतसे गणविच्छेदक, बहुतसे आचार्योपाध्याय, एकत्र होके रहते है. उन्होंको सबको बराबर होके रहना नहीं कल्पै. परन्तु उस सबोंकी अन्दर गुरु-लघु होना चाहिये. गुरुवोंके प्रति लघुवोंको साधु वन्दन नमस्कार, सेवा-भक्ति करते रहना चाहिये. जिनसे शासनका प्रभाव और विनयमय धर्मका पालन हो सके. अर्थात् छोटा साधु बडे साधुवोंको, छोटा गणविच्छेदक बडे गणविच्छेदकको, छोटे आचार्योपाध्याय बडे आचार्योपाध्यायको वन्दन करे तथा क्रमसर जैसे जैसे दीक्षापर्याय हो, उसी माफिक वन्दन करते हुवेको शीतोष्णकालमें विहार करना कल्पै. इति.

श्री व्यवहारसूत्र—चतुर्थ उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(५) पांचवा उद्देशा.

(१) जैसे साधुवोंको आचार्य होते है, वैसे ही साध्वीयोंको आचार, गौचरमें प्रवृत्ति करानेवाली प्रवर्तिनीजी होती है. उस प्रवर्तणीजीको शीतोष्णकालमें आप सहित दो ठाणे विहार करना नहीं कल्पै.

(२) आप सहित तीन ठाणे विहार करना कल्पै.

(३) गणविच्छेदणी—एक संघाडेमें आगेवान होके विचरे, उसे गणविच्छेदणी कहते है. उसे आप सहित तीन ठाणे शीतोष्णकालमें विहार करना नहीं कल्पै.

(४) परन्तु आप सहित च्यार ठाणेसे विहार करना कल्पै.

(५) प्रवर्तणीको आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(६) आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास करना कल्पै.

(७) गणविच्छेदणीको आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(८) आप सहित पांच ठाणे चातुर्मास करना कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(९) ग्राम नगर यावत् राजधानी वहुतसी प्रवर्त्तणोयों आप सहित तीन ठाणे, वहुतसी गणविच्छेदणीयों आप सहित च्यार ठाणेसे शीतोष्ण कालमें विचरना कल्पै. और वहुतसी प्रवर्तणीयों आप सहित च्यार ठाणे. वहुतसी गणविच्छेदणीयों आप सहित पांच ठाणे चातुर्मास करना कल्पै.

(१०) एक दुसरेकी निश्रामें रहैं.

(११) जो साध्वी आचारांग और निशीथ सूत्रकी ज्ञानकार अन्य साध्वीयोंको ले अग्रेसर विहार करती हो, कदाचित् वह आगेवान साध्वी काल कर जावे, तो शेष साध्वीयोंकी अन्दर जो आचारांग और निशीथ सूत्रकी जानकार अन्य साध्वी हो, तो उसको आगेवान कर सब साध्वीयों उसकी निश्रामें विचरे. कदाच ऐसी ज्ञानकार साध्वी न हो तो उस साध्वीयोंको अन्य दिशामें जानकार साध्वीयां विचरती हो, वहांपर रहस्तेमें एकेक रात्री रहके जाना कल्पै. रहस्तेमें उपकार निमित्त रहना नहीं कल्पै. अगर शरीरमें रोगादि कारण हो, तो जहांतक रोग न मिटे, वहांतक रहना कल्पै. रोग मुक्त होनेपरभी अन्य साध्वीयां कहे कि—हे आर्या ! एक दो रात्रि और ठेरो, ताके तुमारा शरीरका विश्वास हो, उस हालतमें एक दो रात्रि रहना कल्पे. परन्तु अधिक ठहरना नहीं कल्पे. अगर अधिक रहे, तो जितने दिन रहे, उतने दिनोंका छेद तथा तपप्रायश्चित्त होता है.

(१२) एवं चतुर्मास रहे हुवेका भी अलापक समझना.

भावार्थ—अपठित साध्वीयोंको रहेना नहीं कल्पै. अगर चातुर्मास हो, तो भी वहांसे विहार कर, आचारांग, और निशीथ सूत्रके जानकारके पास आजाना चाहिये.

(१३) *प्रवर्तणी अन्त समय कहे कि—हे आर्या ! मैं काल* कर जाउं, तो मेरी पद्वी अमुक साध्वीको दे देना. अगर वह साध्वी योग्य हो तो उसे पद्वी दे देना. तथा वह साध्वी पदवीके योग्य न हो और दुसरी साध्वीयां योग्य हो, तो उसे पद्वि देना चाहिये. दुसरी साध्वी पद्वि योग्य न हो, तो जिसका नाम बतलाया था, उसे पद्वि दे देना, परन्तु यह सरत कर लेना कि—अबी हमारे पास पद्वीयोग्य साध्वी नहीं है वास्ते

आपको यह प्रवर्त्तणीके कहनेसे पद्वी दी जाती है, परन्तु अन्य कोइ पद्वी योग्य साध्वी होगी, तो आपको यह पद्वी छोडनी होगी. बादमें कोइ साध्वी पद्वी योग्य हो, तो पहलेसे पद्वि छोडा लेनी. इसपर पद्वी छोड दे तो किसी प्रकारका प्रायश्चित्त नहीं है, अगर वह पद्विको नहीं छोडे तो जितने दिन पद्वी रखे, उतने दिन छेद तथा तपप्रायश्चित्त होता है. अगर उसकी पद्वी छोडनेमें साध्वी और संघ प्रयत्न न करे, तो उस साध्वी तथा संघ सबको प्रायश्चित्तके भागी बनना पडता है.

(१४) इसी माफिक प्रवर्त्तणी साध्वी प्रबल मोहनीयकर्मके उदयसे कामपीडित हो, फिर संसारमें जाते समयकाभी सूत्र कहेना. भावना चतुर्थ उद्देशा माफिक समझना.

(१५) आचार्य महाराज अपने नवयुवक तरुण अवस्थावाले शिष्यको आचारांग और निशीथ सूत्रका अभ्यास कराया हो, परन्तु वह शिष्यको विस्मृत होगया जाण आचार्यश्रीने पूछा कि-हे आर्य! जो तुमको आचारांग और निशीथसूत्र विस्मृत हुवा है, तो क्या शरीरमें रोगादिकके कारणसे या प्रमादके कारणसे ? शिष्य अर्ज करे कि—हे भगवन्! मुजे प्रमादसे सूत्र विस्मृत हुवा है. तो उस शिष्यको जावजीवतक सातों पद्वीयोंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नहीं कल्पै. कारण अभ्यास कीया हुवा ज्ञान विस्मृत हो गया, तो गच्छका रक्षण कैसे करेगा ? अगर शिष्य कहे कि—हे भगवन्! प्रमादसे नहीं, किन्तु मेरे शरीरमें अमुक रोग हुवा था, उस व्याधिसे पीडित होनेसे सूत्रों विस्मृत हुवा है. तब आचार्यश्री कहे कि-हे शिष्य! अब उस आचारांग और निशीथको फिरसे याद कर लेगा ? शिष्य कबूल करे कि—हाँ मैं फिरसे उस सूत्रोंको कंठस्थ कर लुंगा. तो उस शिष्यको

सात पद्वीयोंसे पद्वी देना कल्पै. अगर कंठस्थ करनेका स्वीकार कर, फिरसे कंठस्थ नहीं करे तो, उसे न तो पद्वी देना कल्पै और न उस शिष्यको पद्वी लेना कल्पै.

(१६) इसी माफिक नवयुवति तरुण साध्वीको भी समझना चाहिये. परन्तु यहां पद्वी प्रवर्तणी तथा गणविच्छेदणी-दोय कहना. शेष साधुवत्.

(१७) स्थविर मुनि स्थविर भूमिको प्राप्त हुये, अगर आचारांग और निशीथसूत्र भूल भी जावे, और पीछेसे कंठस्थ करे, न भी करे, तो उन्हांको सातों पद्वीसे किसी प्रकारकी भी पद्वी देना कल्पै. कारण कि चिरकालसे उन महात्मायोंने कंठस्थ कर उसकी स्वाध्याय करी हुइ है. अगर क्रमसर कंठस्थ न भी हो, तो भी उसकी मतलब उन्होंकी स्मृतिमें जरुर है, तथा चिरकाल दीक्षापर्याय होनेसे बहुतसे आचार-गोचर प्रवृत्ति उन्होंने देखी हुइ है.

(१८) स्थविर, स्थविरकी भूमि (६० वर्ष) को प्राप्त हुवा, जो आचारांग और निशीथसूत्र विस्मृत हो गया हो, तो वह बैठे बैठे, सोते सोते, एक पसवाडे सोते हुये धीरे धीरेसे याद करे. परन्तु आचारांग और निशीथ अवश्य कंठस्थ रखना चाहिये. कारण—साधुवोंकी दीक्षासे लेके अन्त समय तकका व्यवहार आचारांगसूत्रमें है, और उससे स्खलित हो, तो शुद्ध करनेके लीये निशीथसूत्र है.

(१९) साधु साध्वीयोंके आपसमें बारह[१] प्रकारका संभोग है. अर्थात् वस्त्र पात्र लेना देना, वांचना देना इत्यादि. उस साधु साध्वीयोंको आलोचना लेना देना आपसमें नहीं कल्पै. अर्थात् आलोचना करना हो तो साधु साधुवोंके पास और साध्वीयों

---

१ बारह प्रकारका संभोग समवायांगजी सूत्रमें देखो.

साध्वीयोंके पास ही आलोचना करना कल्पे. अगर अपनी अपनी समाजमें आलोचना सुननेवाला हो, तो उन्होंके पास ही आलोचना करना, प्रायश्चित्त लेना. अगर दश बोलोंका जानकार साध्वीयोंमें उस समय हाजर न हो, तो साध्वीयों साधुवोंके पास भी आलोचना कर सके, और साधु साध्वीयोंके पास आलोचना कर सके.

भावार्थ—जहांतक आलोचना सुन प्रायश्चित्त देनेवाला हो, वहांतक तो साध्वीयोंको साध्वीयोंके पास और साधुवोंको साधुवोंके पास ही आलोचना करना चाहिये कि जिससे आपसमें परिचय न बढे. अगर ऐसा न हो, तो आलोचना क्षणमात्र भी रखना नहीं चाहिये. साध्वीयों साधुओंके पास भी आलोचना ले सके.

(२०) साधु साध्वीयोंके आपसमें संभोग है, तथापि आपसमें वैयावच्च करना नहीं कल्पै, जहांतक अन्य वैयावच्च करनेवाला हो वहांतक. परन्तु दुसरा कोइ वैयावच्च करनेवाला न हो, उस आफतमें साधु, साध्वीयोंकी वैयावच्च तथा साध्वीयों, साधुवोंकी वैयावच्च कर सके. भावना पुर्ववत्.

(२१) साधुको रात्रि तथा वैकालमें अगर सर्प काट खाया हो, तो उसका औषधोपचार पुरुष करता हो, वहांतक पुरुषके पास ही कराना. अगर उसका उपचार करनेवाली कोइ स्त्री हो, तो मरणान्त कष्टमें साधु स्त्रीके पास भी औषधोपचार करा सकते है. इसी माफिक साध्वीको सर्प काट खाया हो, तो जहांतक स्त्री उपचार करनेवाली हो, वहांतक स्त्रीसे उपचार कराना, अगर स्त्री न हो, किन्तु पुरुष उपचार करता हो, तो मरणान्त कष्टमें पुरुषसे भी उपचार कराना कल्पै. यहांपर लाभालाभका कारण देखना. यह कल्प स्थविरकल्पी मुनियोंका है. जिनकल्पी मुनिको

तो किसी प्रकारका वैयावच कराना कल्पै ही नहीं. अगर जिनकल्पी मुनिको सर्प काट खानेपर उपचार करावे तो प्रायश्चित्तका भागी होता है. परन्तु स्थविरकल्पी पुर्वोक्त उपचार करानेसे प्रायश्चित्तका भागी नहीं है. कारण-उन्होंका ऐसा कल्प है. इति.

श्री व्यवहारसूत्र-पांचवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(६) छठा उद्देशा.

(१) साधु इच्छा करे कि मैं मेरे संसारी संबंधी लोगोंके घरपर गौचरी आदिके लीये गमन करुं, तो उस मुनिको चाहिये कि पेस्तर स्थविर (आचार्य) को पुछे कि—हे भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं अमुक कार्यके लीये मेरे संसारी संबन्धीयोंके यहां जाउ ? इसपर आचार्यमहाराज योग्य जान आज्ञा दे, तो गमन करे, अगर आज्ञा न दे तो उस मुनिको जाना नहीं कल्पै. कारण—संसारी लोगोंका दीर्घकालसे परिचय था, वह मोहकी वृद्धि करनेवाला होता है. अगर आचार्यकी आज्ञाका उलंघन कर स्वच्छन्दाचारी साधु अपने संबन्धीयोंके यहां चला भी जावे, तो जितने दिन आचार्यकी आज्ञा बहार रहै, उतने दिनोंका तप तथा छेद प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(२) साधु अल्पश्रुत, अल्प आगमविद्याका जानकार अकेलेको अपने संसारी संबंधीयोंके यहां जाना नहीं कल्पै.

(३) अगर बहुश्रुत गीतार्थोंके साथमें जाता हो, तो उसे अपने संसारी संबंधीयोंके यहां जाना कल्पै.

(४) साधु गीतार्थके साथमें अपने संसारी संबंधीयोंके यहां भिक्षाके लीये जाते है. वहां पहले चावल चुलासे उतरा हो तो चावल लेना कल्पै, शेष नहीं.

(५) पहले दाल उतरी हो तो दाल लेना कल्पै, शेष नहीं.

(६) पहले चावल दाल दोनों उतरा हो तो दोनों कल्पै.

(७) चावल दाल दोनों पीछेसे उतरा हो तो दोनों न कल्पै.

(८) मुनि जानेके पहले जो उतरा हो, वह लेना कल्पै.

(९) मुनि जानेके बाद चुलासे जो उतरा हो वह लेना न कल्पै.

(१०) आचार्योपाध्यायका गच्छकी अन्दर पांच अतिशय होते है.

(१) स्थंडिल, गौचरी आदि जाके पीछे उपाश्रयकी अन्दर आते समय उपाश्रयकी अन्दर आके पगको प्रमार्जन करे.

(२) उपाश्रयकी अन्दर लघु वडीनीतिसे निवृत्त हो सके.

(३) आप समर्थ होनेपर भी अन्य साधुवोंकी वैयावच्च इच्छा हो तो करे, इच्छा हो तो न भी करे.

(४) उपाश्रयकी अन्दर एक दोय रात्रि एकान्तमें ठेर सके.

(५) उपाश्रयकी वहार अर्थात् ग्रामादिसे वहार जंगलमें एक दो रात्रि एकान्तमें ठेर सके.

यह पांच कार्य सामान्य साधु नहीं कर सके, परन्तु आचार्य करे, तो आज्ञाका अतिक्रम न होवे.

(११) गणविच्छेदक गच्छकी अन्दर दोय अतिशय होते हैं.

(१) उपाश्रयकी अन्दर एकान्त एक दो रात्रि रह सके.

(२) उपाश्रयकी वहार एक दो रात्रि एकान्तमें रह सके.

भावार्थ—आचार्य तथा गणविच्छेदकोंके आधारसे शासन रहा हुवा है. उन्होंके पास विद्यादिका प्रयोग अवश्य होना चाहिये. कभी शासनका कार्य हो तो अपनी आत्मलब्धिसे शासनकी प्रभावना कर सके.

(१२) ग्राम, नगर, यावत् संन्निवेश, जिसके एक दरवाजा हो, निकास प्रवेशका एक ही रहस्ता हो, वहांपर बहुतसे साधु जो आचारांग और निशीथसूत्रके अज्ञात हो, उन्होंको उक्त ग्रामादिमें ठेरना नहीं कल्पै. अगर उन्होंकी अन्दर एक साधु भी आचारांग और निशीथका जानकार हो, तो कोइ प्रकारका प्रायश्चित्त नहीं है. अगर ऐसा जानकार साधु न हो तो उन सब अज्ञात साधुवोंको प्रायश्चित्त होता है. जितने दिन रहे, उतने दिनोंका छेद तथा तप प्रायश्चित्त अज्ञातोंके लीये होता है. भावना पुर्ववत्.

(१३) एवं ग्रामादिके अलग अलग दरवाजे, निकास प्रवेश अलग अलग हो तो भी बहुतसे अज्ञात साधुवोंको वहांपर रहना नहीं कल्पै. अगर एक भी आचारांग निशीथ पठित साधु हो तो प्रायश्चित्त नहीं आवे. नहि तो सबको तप तथा छेद प्रायश्चित्त होता है.

भावार्थ—अज्ञात साधु अगर उन्मार्ग जाता हो, तो ज्ञात साधु उसे निवार सके.

(१४) ग्रामादिके बहुत दरवाजे; बहुत निकाश प्रवेशके रास्ते है. वहांपर बहुश्रुत, बहुतसे आगम विधायोंके जानकारको अकेला ठेरना नहीं कल्पै, तो अज्ञात साधुवोंका तो कहना ही क्या ?

(१५) ग्रामादिके एक दरवाजा, एक निकास प्रवेशका रास्ता हो, वहांपर बहुश्रुत, बहुत आगमका जानकार मुनिको अकेला रहना कल्पै; परन्तु उस मुनिको अहोनिश साधुभावका ही चिंतन करना, अप्रमादपणे तप संयममें मग्न रहना चाहिये.

(१६) बहुतसे मनुष्य (स्त्री, पुरुष) तथा पशु आदि एकत्र हुया हो, कुचेष्टायोंसे काम प्रदीप्त करते हो, मैथुन सेवन

करते हो, वहांपर साधु साध्वीको नहीं ठेरना चाहिये. कारण आत्मा निमित्तवासी है. जीवोंको चिरकालका काम विकारसे परिचय है. अगर कोइ ऐसे अयोग्य स्थानमें ठेरेगा, तो उस कामी पुरुष या पशु आदिको देख विकार उत्पन्न होनेसे कोइ अचित श्रोत्रसे अपने वीर्यपात के लीये हस्तकर्म करते हुवे को अनुवातिक मासिक प्रायश्चित होगा.

(१७) इसी माफिक मैथुन संज्ञासे हस्त कर्म करते हुवे को अनुघातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित होगा.

(१८) साधु साध्वीयोंके पास किसी अन्य गच्छसे साध्वी आइ हो. उसका साधु आचार खंडित हुवा है. संयममें सबल दोष लगा है, अनाचारसे आचारको भेद दीया है, क्रोधादि कर चारित्रको मलिन कर दीया हो उस स्थानकी आलोचना विगर सुने प्रतिक्रमण न करावे, प्रायश्चित्त न देवे ऐसेही खंडित आचारवालेकी सुखशाता पूछना, वाचना देना, दीक्षाका देना साथमें भोजनका करना (साध्वीयोंको) सदैव साथमें रहना, स्वल्पकाल तथा चिरकालकी पद्वीका देना नहीं कल्पै.

(१९) आचारादि खंडित हुवा हो तो उसे आलोचना प्रतिक्रमण कराके, प्रायश्चित दे शुद्ध कर उसके साथ पूर्वोक्त व्यवहार करना कल्पै.

(२०) (२१) इसी माफिक साधु आश्रयभी दो अलापक समझना.

भावार्थ—किसी कारणसे अन्य गच्छ के साधु साध्वी अन्य गच्छमें जावे तो प्रथम उसको मधुर वचनोंसे समझावे, आलोचनादि करायके प्रायश्चित्त दे पीछे उसी गच्छमें भेज देवे. अगर उस गच्छमें विनय धर्म और ज्ञान धर्मकी खामीसे आया हो, तो उसे

शुद्ध कर आप रख भी सके. कारण समयोकों सहायता देना बहुत लाभका कारण है. और योग्य हो तो उसे स्वल्प काल तथा जावजीव तक आचार्यादि पद्वी भी देना कल्पै. इति.

श्री व्यवहारसूत्र—छठा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(७) सातवां उद्देशा.

(१) साधु साध्वीयोंके आपसमें अशनादि बारह प्रकारके संभोग है. अर्थात् साधुवोंकी आज्ञामें विहार करनेवाली साध्वीयों है. उन्हों के पास कोइ अन्य गच्छसे निकलके साध्वी आइ है. आनेवाली साध्वीका आचार खंडित यावत् उसको प्रायश्चित्त दीया विना स्वल्पकालकी या चिरकालकी पद्वी देना साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(२) साधुवोंको पूछ कर, उस आइ हुइ साध्वीको प्रायश्चित्त देके यावत् स्वल्पकाल या चिरकालकी पद्वी देना साध्वीयोंको कल्पै.

(३) साध्वीयोंको विना पूछे साधु उस साध्वीको पूर्वोक्त प्रायश्चित्त नहीं दे सके. कारण—आखिर साध्वीयोंका निर्वाह करना साध्वीयोंके हाथमें है. पीछेसे भी साध्वीयोंकी प्रकृति नहीं मिलती हो, तो निर्वाह होना मुश्कील होता है.

(४) साधु, साध्वीयोंको पूछ कर, उस साध्वीकी आलोचना सुन, प्रायश्चित देके शुद्ध कर गच्छमें ले सके, यावत् योग्य हो तो प्रवर्तिणी या गणविच्छेदणीकी पद्वी भी दे सके.

(५) साधु साध्वीयोंके बारह प्रकारका संभोग है. अगर साध्वीयों गच्छ मर्यादाका उलंघन कर अकृत्य कार्य करे (पासत्था-

योंको वन्दन करना, अशनादि देना लेना। उस हालतमें साधु, साध्वीयोंके साथ प्रत्यक्षमें संभोगका विसंभोग करे. अर्थात् अपने संभोगसे बहार कर देवे. प्रथम साध्वीयोंको बुलवाके कहे कि— हे आर्या! तुमको दो तीन दफे मना करने पर भी तुम अपने अकृत्य कार्यको नहीं छोडती हो. इस वास्ते आज हम तुमारे साथ संभोगको विसंभोग करते हैं. उसपर साध्वी बोले कि-मैंने जो कार्य कीया है उसकी आलोचना करती हुं, फिर ऐसा कार्य न करुंगी. तो उसके साथ पूर्वकी माफिक संभोग रखना कल्पै. अगर साध्वी अपनी भूलको स्वकार न करें, तो प्रत्यक्षमें ही विसंभोग कर देना चाहिये. ताके दुसरी साध्वीयोंको क्षोभ रहै.

(६) एवं साधु अकृत्य कार्य करे तो साध्वीयोंको प्रत्यक्षमें संभोगका विसंभोग करना नहीं कल्पै, परन्तु परोक्ष जैसे किसी साथ कहला देवे कि—अमुक अमुक कारणोंसे हम आपके साथ संभोग तोड देतें है. अगर साधु अपनी भूलको स्वीकार करे, तो साध्वीको साधुके साथ वन्दन व्यवहारादि संभोग रखना कल्पै. अगर साधु अपनी भूलको स्वीकार न करें, तो उसको परोक्षपणे संभोगका विसंभोग कर, अपने आचार्योपाध्याय मिलेनपर साध्वी कह देवे कि—हे भगवन्! अमुक साधुके साथ हमने अमुक कारणसे संभोगका विसंभोग कीया है.

(७) साधुवोंको अपने लीये किसी साध्वीको दीक्षा देना, शिक्षा देना, साथमें भोजन करना, साथमें रखना, नहीं कल्पैं.

(८) अगर किसी देशमें मुनि उपदेशसे गृहस्थ दीक्षा लेता हो, परन्तु उसकी लडकी बाधा कर रही है कि—अगर दीक्षा लो, तो मैंभी दीक्षा लेउंगी. परन्तु साध्वी वहांपर हाजर नहीं है. उस हालतमें साधु उस पिताके साथमें लडकीको साध्वीयोंके लीये

दीक्षा देवे. यावत् उसको साध्वीयों मिलनेपर सुप्रत कर देवे. यह सूत्र हमेशांके लीये नहीं है, किन्तु पेसा कोइ विशेष कारण होनेपर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके जानकारोंकी अपेक्षाका है.

(९) इसी माफिक साध्वी अपने लीये साधुको दीक्षा न देवे.

(१०) परन्तु किसी माताके साथ पुत्र दीक्षाका आग्रह करता हो, तो साध्वीयों साधुके लीये दीक्षा देकर आचार्यादि मिलनेपर साधुको सुप्रत कर देवे. भावना पूर्ववत्.

(११) साध्वीयोंको विकट देशमें विहार करना नहीं कल्पे. कारण—वहांपर वहूतसे तस्कर लोग, अनार्यलोग हो, वहांपर वस्त्रहरण, व्रतभंगादिक अनेक दोषोंका संभव है.

(१२) साधुवोंको विकट देशमेंभी लाभालाभका कारण जान विहार करना कल्पे.

(१३) साधुवोंको आपसमें क्रोधादि हुवा हो, उससे एक पक्षवाले साधु विकट देशमें विहार कर गये हो, तो दुसरा पक्षवाले साधुवोंको स्वस्थान रहके खमतखामणा करना नहीं कल्पे. उन्होंको वहां विकट देशमें जाके अपना अपराध क्षमाना चाहिये.

(१४) साध्वीयोंको कल्पै, अपने स्थान रहके खमतखामणा कर लेना. कारण—वह विकट देशमें जा नहीं सक्ती है. भावना पूर्ववत्.

(१५) साधु साध्वीयोंको अस्वाध्यायकी अन्दर स्वाध्याय करना नहीं कल्पे. अर्थात् आगमोंमें ३२ अस्वाध्याय तथा अन्य भी अस्वाध्याय कहा है. उन्होंकी अन्दर स्वाध्याय करना नहीं कल्पै.

(१६) साधु साध्वीयोंको स्वाध्याय कालमें स्वाध्याय करना कल्पे.

(१७) साधु साध्वीयोंको अपने लीये अस्वाध्यायकी अन्दर स्वाध्याय करना नहीं कल्पे.

(१८) परन्तु किसी साधु साध्वीयोंकी वाचना चलती हो, तो उसको वाचना देना कल्पै. अस्वाध्यायपर पाटे (वस्त्र) वन्ध लेना चाहिये. यह विशेष सूत्र गुरुगम्यताका है.

(१९) तीन वर्षके दीक्षापर्यायवाला साधु, और तीस वर्षकी दीक्षापर्यायवाली साध्वीको उपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै.

(२०) पांच वर्षके दीक्षापर्यायवाला साधु और साठ वर्षकी दीक्षापर्यायवाली साध्वीको आचार्य (प्रवर्तणी) पद्वी देना कल्पै. पद्वी देते समय योग्यायोग्यका विचार अवश्य करना चाहिये. इस विषय चतुर्थ उद्देशामें खुलासा कीया हुवा है.

(२१) ग्रामानुग्राम विहार करता हुवा साधु, साध्वी कदाच कालधर्म प्राप्त हो, तो उसके साथवाले साधुवोंको चाहिये कि- उस मुनि तथा साध्वीका शरीरको लेके वहुत निर्जीव भूमिपर परठे. अर्थात् एकान्त भूमिकापर परठे, और उस साधुके भंडोपकरण हो, वह साधुवोंको काम आने योग्य हो तो गृहस्थोंकी आज्ञासे ग्रहन कर अपने आचार्यादि वृद्धोंके पास रखे, जिसको जरुरत जाने आचार्यमहाराज उसको देवे. वह मुनि, आचार्यश्रीकी आज्ञा लेके अपने काममें लेवे.

(२२) साधु साध्वीयों जिस मकानमें ठेरे है. उस मकानका मालिक अपना मकान किसी अन्यको भाडे देता हो, उस समय कहे कि इतना मकानमें साधु ठेरे हुवे है, शेष मकान तुमको भाडे देता हुं, तो घरधणीको शय्यातर रखना. अगर घरधणी न कहे, और भाडे लेनेवाला कहे कि-हे साधु! यह मकान मैंने भाडे लीया है. परन्तु आप सुखपूर्वक विराजो, तो भाडे लेनेवालेको शय्यातर रखना. अगर दोनों आज्ञा दे, तो दोनोंको शय्यातर रखना.

(२३) इसी माफिक मकान वेचनेके विषयमें समझना.

(२४) साधु जिस मकानमें ठेरे, उस मकानकी आज्ञा प्रथम लेना चाहिये. अगर कोइ गृहस्थकी नित्य निवास करनेवाली विधवा पुत्री हो, तो उसकी भी आज्ञा लेना कल्पै, तो फिर पिता, पुत्रादिकी आज्ञाका तो कहना ही क्या? सुहागण अनित्य निवासवाली पुत्रीकी आज्ञा नहीं लेना. कारण-उनका सासरा कहा है. कभी उनके हाथसे आहार ग्रहन करनेमें आवे, तो शय्यातर दोष लग जावें, परन्तु विधवा नित्य निवास करनेवाली पुत्रीकी आज्ञा ले सकते हैं.

(२५) रहस्तेमें चलते चलते कभी वृक्ष नीचे रहनेका काम पडे, तो भी गृहस्थोंकी आज्ञा लेना. अगर कोइ न मिले, तो पहले वहां पर ठेरे हुवे मुसाफिरकी भी आज्ञा लेके ठेरना.

(२६) जिस राजाके राज्यमें मुनि विहार करते हो, उस राजाका देहान्त हो गया हो, या किसी कारणसे अन्य राजाका राज्याभिषेक हुवा हो, परन्तु आगेके राजाकी स्थितिमें कुछ भी फेरफार नहीं हुवा हो, तो पहलेकी लीइ हुइ आज्ञामें ही रहना चाहिये. अर्थात् फिरसे आज्ञा लेनेकी जरुरत नहीं है.

(२७) अगर नये राजाका अभिषेक होनेपर पहलेका कायदा तोड दीया हो, नये कायदे बांधा हो, तो साधुवोंको उस राजाकी दुसरीवार आज्ञा लेना चाहिये कि-हम लोग आपके देशमें विहार कर, धर्मोपदेश करते हैं. इसमें आपकी आज्ञा है? कारण कि साधु विगर आज्ञा विहार करे, तो तीसरा व्रतका रक्षण नहीं होता है. चोरी लगती है. वास्ते अवश्य आज्ञा लेके विहार करना चाहिये. इति.

श्री व्यवहार सूत्र–सातवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(८) आठवां उद्देशा.

(१) आचार्यमहाराज अपने शिष्य संयुक्त किसी नगरमें चातुर्मास कीया हो, वहांपर गृहस्थोंके मकानमें आज्ञासे ठेरे हैं. उसमें कोई साधु कहे कि—हे भगवन्! इस मकानका इतना अन्दरका मकान और इतना वहारका मकान मैं मेरी निश्रामें रखु ? आचार्यश्री उस साधुकी अशठता-सरलता जाणे कि-यह तपस्वी है, बीमार है, तो उतनी जगहकी आज्ञा देवे तो उस मुनिको वह स्थान भोगवना कल्पै. अगर आचार्य श्री जाणे कि —यह धूर्तताले आप सुखशीलीयापणासे साताकारी मकान अपनी निश्रामें रखना चाहता है. तो उस जगहकी आज्ञा न दे, और कहे कि हे आर्य ! पेस्तर रत्नत्रयादिसे वृद्ध साधु है, उन्होंके क्रमसर स्थान देनेपर तुमारे विभागमें आवे उस मकानको तुम भोगवना. तो उस मुनिको जैसी आचार्य श्री आज्ञा दे, वैसाही करना कल्पै.

(२) मुनि इच्छा करे कि—मैं हलका पाट, पाटला, तृणादि, शय्या, संस्तारक, गृहस्थोंके वहांसे याचना कर लाऊं तो एक हाथसे उठा सके तथा रहस्तेमें एक विश्रामा, दोय विश्रामा, तीन विश्रामा लेके लाने योग्य हो, ऐसा पाट पाटला शीतोष्ण कालके लीये लावे.

भावार्थ—यह है कि प्रथम तो पाट पाटला ऐसा हलकाही लाना चाहिये कि जहां विश्रामाकी आवश्यक्ता ही न रहै. अगर ऐसा न मिले तो एक दो तीन विश्रामा खाते हुवे भी एक हाथसे लाना चाहिये.

(३) पाट पाटला एक हाथसे वहन कर उठा सके ऐसा एक दो तीन विश्रामा लेके अपने उपाश्रय तक ला सके. ऐसा जाने कि—यह मेरे चातुर्मासमें काम आवेगा भावना पूर्ववत्.

(४) पाट पाटला एक हाथसे ग्रहन कर उठा सके, एक दो तीन च्यार पांच विश्रामा ले के अपने उपाश्रय आ सके, ऐसा पाट पाटला, वृद्ध वयधारक मुनि जो स्थिर वासकीया हो, उन्हों के आधारभूत होगा एसा जाण लावे.

(५) स्थविर महाराज स्थविर भूमि (साठ वर्षकी आयुष्यको) प्राप्त हुये को कल्पै.

[१] दंड—कान परिमाण दंडा, बहार आते लाते समय चलनेमें सहायकारी.

[२] भंड—मर्यादासे अधिक पात्र, वृद्ध वयके कारणसे.

[३] छत्र—शिरकी कमजोरी होनेसे शैत्य, गरमी निवारण निमित्त शिरपर कपडादिसे आच्छादन करनेके लिये कम्बली आदि.

[४] मृत्तिका भाजन—मट्टीका भाजन लघुनीत वडी नीत श्लेष्मादिके लीये.

[५] लट्टी—मकानमें इधर, उधर फिरते समय टेका रखनेके लीये.

[६] भिसिका-पूठ पीछाडी बैठते समय टेका रखनेके लीये.

[७] चेल—वस्त्र, मर्यादासे कुछ अधिक वस्त्र, वृद्ध वयके कारणसे.

[८] चलमली—आहारादि करते समय जीव रक्षा निमित्त पडदा बांधनेका वस्त्रको चलमली कहते है.

[९] चर्मखंड—पावोंकी चमडी कची पड जानेसे चला न जाता हो, उस कारणसे चर्मखंड रखना पडे.

[१०] चर्मकोश—गुह्य स्थानमें विशेष रोग होने पर काममें लीया जाता है.

[११] चर्म अंगुठी—वस्त्रादि सीवे उस समय अंगुली आदिमें रखनेके लीये.

चर्मका उपकरण विशेष कारणसे रखा जाता है. अगर गौचरीपाणी निमित्त गृहस्थोंके वहां जाना पडता है. उस समय आपके साथ ले जानेके सिवाय उपकरण किसी गृहस्थोंके वहां रखे तथा उन्होंको सुप्रत करके भिक्षाको जावे, पीछे आनेपर उस गृहस्थोंकी रजा ले कर, उस उपकरणोंको अपने उपभोगमें लेवे, जिनसे गृहस्थोंकी खातरी रहै कि यह उपकरण मुनि ही लीया है.

(६) जिस मकानमें साधु ठेरे है. उस मकानका नाम लेके गृहस्थोंके वहांसे पाटपाटले लाया हो, फिर दुसरे मकानमें जानेका प्रयोजन हो, तो गृहस्थोंकी आज्ञा विगर वह पाटपाटले दूसरे मकानमें ले जाना नहीं कल्पै.

(७) अगर कारण हो, तो गृहस्थोंकी आज्ञासे ले जा सक्के है. कारण—गृहस्थोंके आपसमें केइ प्रकारके टंटे फिसाद होते है. वास्ते विगर पूछे ले जानेपर घरका धणी कहे कि—हमारे पाटपाटले उस दुसरे मकानमें आप क्यों ले गये ? तथा उन्होंके पाटपाटले हमारे मकानमें क्यों लाये ? इत्यादि.

(८) जहांपर साधु ठेरे हो, वहांपर शय्यातरका पाटपाटले आज्ञासे लीया हो, फिर विहार करनेके कारणसे उन्होंको सुप्रत कर दीया, बादमें किसी लाभालाभके कारणसे वहां रहना पडे, तो दुसरी दफे आज्ञा लीया विगर वह पाटपाटले वापरना नहीं कल्पै.

(९) वापरना हो, तो दुसरी दफे और भी आज्ञा लेना चाहिये.

(१०) साधु साध्वीयोंको आज्ञा लेनेके पहला शय्या, संस्तारक वापरना (भोगवना) नहीं कल्पै. किन्तु पेस्तर मकान या पाटपाटलेवालेकी आज्ञा लेना, फिर उस शय्या संस्तारकको वापरना कल्पै. कदाचित् कोइ ग्रामादिमें शेष दिन रह गया हो, आगे जानेका अवकाश न हो और साधुवोंको मकानादि सुलभतासे मिलता न हो, तो प्रथम मकानमें ठेर जाना फिर बादमें आज्ञा लेना कल्पै. विगर आज्ञा मकानमें ठेर गये. फिर घरका धणी तकरार करे. उस समय एक शिष्य कहे कि-हे गृहस्थ! हम रात्रिमें चलते नहीं है, और दुसरा मकान नहीं हैं, तो हम साधु कहां जावे? उसपर गृहस्थ तकरार करे, अब वृद्ध मुनि अपने शिष्यको कहे-भो शिष्य! एक तो तुम विना आज्ञा गृहस्थोंके मकानमें ठेरे हो, और दुसरा इन्होंसे तकरार करते हो, यह ठीक नहीं है. इनसे गृहस्थकी श्रद्धा वृद्ध मुनिपर बढ जानेसे यह कहते हैं कि-हे मुनि! तुम अच्छे न्यायवन्त हो. यहां ठेरो, मेरी आज्ञा है.

(११) मुनि, गृहस्थोंके घर गौचरी गये, अगर कोइ स्वल्प उपकरण भूलसे वहां पड जावे, पीछेसे कोइ दुसरा साधु गया हो, तो उसे गृहस्थोंकी आज्ञासे लेना चाहिये. फिर वह मुनि मिले तो उसे दे देना चाहिये, अगर न मिले तो उसको न तो आप ले, न अन्य साधुवोंको दे. एकान्त भूमिपर परठ देना चाहिये.

(१२) इसी माफिक विहारभूमि जाते मुनिका उपकरण विषय.

(१३) एवं ग्रामानुग्राम विहार करते समय उपकरण विषय.

भावार्थ—साधुका उपकरण जानके साधुके नामसे गृहस्थकी आज्ञा लेके ग्रहण कीया था, अब साधु न मिलनेसे अगर आप

भोगवे, तो गृहस्थकी और तीर्थंकरोंकी चोरी लगे. गृहस्थोंसे आज्ञा लेनेको जानेसे गृहस्थोंको अप्रतीत हो कि-क्या मुनिको इस वस्तुका लोभ होगा. वास्ते वह मुनि मिले तो उसे दे देना, नहीं तो एकान्त भूमिपर परठ देना. इसमें भी आज्ञा लेनेवालोंमें अधिक योग्यता होना चाहिये.

(१४) एक देशमें पात्र फासुक मिलते हो, दुसरे देशमें विचरनेवाले मुनियोंको पात्रकी जरुरत रहती है, तो उस मुनियोंके लीये अधिक पात्र लेना कल्पै. परन्तु जबतक उस मुनिको नहीं पूछा हो, वहांतक वह पात्र दुसरे साधुवोंको देना नहीं कल्पै. अगर उस मुनिको पूछनेसे कहे कि-मेरेको पात्रकी जरुरत नहीं है. आपकी इच्छा हो, उसे दीजीये, तो योग्य साधुको वह पात्र देना कल्पै.

(१५) अपने सदैव भोजन करते है, उस भोजनके ३२ विभाग करना (कल्पना करना.) उसमें अष्ट विभाग आहार करनेसे पौण उणोदरी, सोल विभाग करनेसे आधी उणोदरी, चौवीश विभाग भोजन करनेसे पाव उणोदरी, एक विभाग कम भोजन करनेसे किंचित् उणोदरी तथा एक चावल (सीत) खानेसे उत्कृष्ट उणोदरी कही जाती है. साधु महात्मावोंको सदैवके लीये उणोदरी तप करना चाहिये. इति.

श्री व्यवहारसूत्र-आठवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(९) नौवां उद्देशा.

मकानका दातार हो, उसे शय्यातर कहते है. उन्होंके घरका आहार पाणी साधुवोंको लेना नहीं कल्पै. यहांपर शय्यातरकाही अधिकार कहते है.

(१) शय्यातरके पाहुणा (महेमान) आया हो. उसको अपने घरकी अन्दर तथा वाडाकी अन्दर भोजन बनानेके लीये सामान दीया और कह दीया कि--आप भोजन करनेपर बढ जाये वह हमको दे देना. उस भोजनकी अन्दरसे साधुको देवे तो साधुको लेना नहीं कल्पै. कारण-यह भोजन शय्यातरका है.

(२) सामान देनेके बाद कह दीया कि--हम तो आपको दे चुके है. अब बढे हुवे भोजनको आपकी इच्छा हो वैसा करना. उस आहारसे मुनिको आहार देवे, तो मुनिको लेना कल्पै. कारण--यह आहार उस पाहुणाकी मालिकीका हो गया है.

(३-४) एवं दो अलापक मकानसे बाहार बैठके भोजन करावे, उस अपेक्षाभी समझना.

(५-६-७-८) एवं :च्यार सूत्र, शय्या तरकी दासी, पेसी कामकारी आदिका मकानकी अन्दरका दो अलापक, और दो अलापक मकानके बाहारका.

भावार्थ--जहां शय्यातरका हक हो, वह भोजन मुनिकों लेना नहीं कल्पै. और शय्यातरका हक निकल गया हो, वह आहार मुनिको लेना कल्पै.

(९) शय्यातरके न्यातीले (स्वजन) एक मकानमें रहते हो, घरकी अन्दर एक चूलेपर :एक ही बरतनमें भोजन बनाके अपनी उपजीविका करते हो. उस आहारसे मुनिको आहार देवे तो मुनिको लेना नहीं कल्पै.

(१०) शय्यातरके न्यातीले एक मकानकी अन्दर पाणी विगेरे सामेल है. एक चूलेपर भिन्न भिन्न भाजनमें आहार तैयार कीया है. उस आहारसे मुनिको आहार देवे तो वह आहार मुनिको लेना नहीं कल्पै. कारण–पाणी दोनोंका सामेल है.

(११–१२) एवं दो सूत्र, घरके बहार चुलापर आहार तैयार करनेका यह चयार सूत्र एक घरका कहा. इसी माफिक (१३–१४ १५–१६) चयार सूत्र अलग अलग घर अर्थात् एक पोलमें अलग अलग घर है, परन्तु एक चूलापर एकही बरतनमें आहार बनावे पाणी विगेरे सब सामेल होनेसे वह आहार साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै.

(१७) शय्यातरकी दुकान किसीके सीर (हिस्सा–पांती) में है. वहांपर तैल आदि क्रयविक्रय होता हो. वेचनेवाला भागीदार है. साधुवोंको तैलका प्रयोजन होनेपर उस दुकान (जोकि शय्यातरके विभागमें है, तो भी) से तैलादि लेना नहीं कल्पै. शय्यातर देता हो, तो भी लेना नहीं तल्पै सीरवाला दे तो भी लेना नहीं कल्पै.

(१९–२०) एवं शय्यातरकी गुलकी शाला (दुकान.)
(२१–२२) एवं क्रियाणाकी दुकानका दो सूत्र.
(२३–२४) एवं कपडाकी दुकानका दो सूत्र.
(२५–२६) एवं सूतकी दुकानका दो सूत्र.
(२७–२८) एवं कपास (रुइ) की दुकानका दो सूत्र.
(२९–३०) एवं पसारीकी दुकानका दो सूत्र.
(३१–३२) एवं हलवाइकी दुकानका दो सूत्र.
(३३–३४) एवं भोजनशालाका दो सूत्र.
(३५–३६) एवं आम्रशालाका दो सूत्र.

अठारासे छत्तीसवां सूत्रतक कोइ विशेष कारण होनेपर दुकानोंपर याचना करनी पडती है. शय्यातरके विभागमें दुकान है, जिसपर भागीदार क्रय विक्रय करता है, यह देवे तोभी मुनिको लेना नहीं कल्पै. कारण–शय्यातरका विभाग है, और शय्यातर देता हो, तोभी मुनिको लेना नहीं कल्पै. कारण शय्यातरकी वस्तु ग्रहन करनेसे आधाकर्मि आदि दोषोंका संभव होता है तथा मकान मोलनेमें भी मुश्केली होती है.

(३७) सत्त सत्तमिय भिक्षुप्रतिमा धारण करनेवाले मुनियोंको ४९ अहोरात्र काल लगता है. और आहार पाणीकी ७-१४ २१-२८-३५-४२-४९-१९६ दात होती है. अर्थात् प्रथम सात दिन एकेक दात, दुजे सात दिन दो दो दात, तीजे सात दिन तीन तीन दात, चौथे सात दिन च्यार च्यार दात, पांचवे सात दिन पांच पांच दात, छट्ठे सात दिन छे छे दात, सातवे सात दिन सात सात दात, दात—एक दफे अखंडित धारासे देवे, उसे दात कहते हैं. औरभी इस प्रतिमाका जैसा सूत्रोंमें कल्पमार्ग बतलाया है, उसको सम्यक् प्रकारसे पालन करनेसे यावत् आज्ञाका आराधक होता है.

(३८) एवं अट्ठ अट्ठमिय भिक्षु प्रतिमाको ६४ दिन काल लगता है. अन्न पाणीकी २८८ दात, यावत् आज्ञाका आराधक होता है.

(३९) एवं नवनवमिय भिक्षु प्रतिमाको ८१ दिन, ४०५ आहार पाणीकी दात, यावत् आज्ञाका आराधक होता है.

(४०) एवं दश दशमिय भिक्षु प्रतिमाको १०० दिन ५५० आहार पाणीकी दात. यावत् आज्ञाका आराधक होता है.

(४१) वज्रऋषभनाराच संहनन जघन्यसे दश पूर्व, उत्कृष्ट

चौद पूर्वधर महर्षियोंकी प्रतिज्ञा–अपेक्षा (प्रतिमा) दो प्रकारकी कहते है. क्षुल्लकमोयक प्रतिमा, महामोयक प्रतिमा. जिसमें क्षुल्लकमोयक प्रतिमा धारण करनेवाले महर्षियोंको शरदकाल-मृगसर माससे आषाढ मास तक जो ग्राम, नगर यावत सन्निवेशके वहार वन, वनखंड जिसमें भी विषम दुर्गम पर्वत, पहाड, गिरिकन्दरा, मेखला, गुफा आदि महान भयंकर, जो कायर पुरुष देखे तो हृदय कम्पायमान हो जावे, ऐसी विषम भूमिकाकी अन्दर भोजन करके जावे, तो छे उपवास (छे दिनतक) और भोजन न कीया हो तो सात उपवाससे पूर्ण करे, और महामोयक प्रतिमा, जो भोजन करके जावे, तो सात दिन उपवास, भोजन न करे तो आठ दिन उपवास करे. विशेष इस प्रतिमाकी विधि गुरुगम्यतामें रही हुइ है. वह गीतार्थ महात्मावोंसे निर्णय करे. क्यों कि—अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं. सूत्रकारोंने भी इसी पाठपर आधार रखा है. अन्तमें फरमाया है कि—जैसी जिनाज्ञा है, वैसी पालन करनेसे आज्ञाका आराधक हो सकता है. स्याद्वाद रहस्य गुरुगमसे ही मिल सकता है.

(४३) दातकी संख्या करनेवाले मुनि पात्रधारी गृहस्थोंके वहां जाते है. एक ही दफे जितना आहार तथा पाणी पात्रमें पड जाता है, उसको शास्त्रकारोंने एक दातीका मान वतलाया है. जैसे बहुतसे जन एक स्थानमें भोजन करते है. वह स्वल्प स्वल्प आहार एकत्र कर, एक लाडु वनाके एक साथमें देवे. उसे भी एक ही दाती कही जाती है.

(४४) इसी माफिक पाणीकी दाती भी समझना.

(४५) मुनि मोक्षमार्गका साधन करनेके लीये अनेक प्रकारके अभिग्रह धारण करते है. यहां तीन प्रकारके अभिग्रह वतलाये है.

[१] काष्ठके भाजनमें लाके देवे ऐसा आहार ग्रहन करना.

[२] शुद्ध हाथ, शुद्ध भोजन चावल आदि मिले तो ग्रहन करना.

[३] भोजनादिसे खरडे हुवे (लिप्त) हार्थोसे आहार देवे तो ग्रहन करना.

(४६) तीन प्रकारके अभिग्रह—

[१] भाजनमें डालता हुवा आहार देवें, तो ग्रहन करुं.

[२] भाजनसे निकालता हुवा देवे तो ग्रहन करुं.

[३] भोजनका स्वाद लेनेके लीये प्रथम ग्रास मुंहमें डालता हो, वैसा आहार ग्रहन करुं.

तथा ऐसा भी कहते है-ग्रहन करता हुवा तथा प्रथमग्रास आस्वादन करता हुवा देवे तो मेरे आहारादि ग्रहन करना. अभिग्रह करनेपर वैसाही आहार मिले तो लेना, नहीं तो अनादरपणे ही परीसहरुप शत्रुओंका पराजय कर मोक्षमार्गका साधन करते रहना. इति.

श्री व्यवहार सूत्र नौवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(१०) दशवां उद्देशा.

(१) भगवान् वीर प्रभुने दोय प्रकारकी प्रतिमा (अभिग्रह) फरमाइ है.

[१] वज्र मध्यम चंद्रप्रतिमा-वज्रका आदि और अन्त विस्तारवाला तथा मध्य भाग पतला होता है.

[२] यवमध्यम चंद्रप्रतिमा-यवका आदि अन्त पतला और मध्य भाग विस्तारवाला होता है:

इसी माफिक मुनि तपश्चर्या करते है. जिसमें यवमध्यचंद्र प्रतिमा धारण करनेवाले मुनि एक मास तक अपने शरीर संरक्षणका त्याग कर देते है. जो देव मनुष्य तिर्यंच संबंधी कोइ भी परीसह उत्पन्न होते है उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करते है. वह परीसह भी दो प्रकारके होते है.

[१] अनुकुल—जो वन्दन, नमस्कार पूजा सत्कार करनेसे राग केसरी खडा होता है. अर्थात् स्तुतिमें हर्ष नहीं.

[२] प्रतिकूल—दंडासे मारे, जोतसे, वेंतसे मारे पीटे, आक्रोश वचन बोले, उस समय द्वेष गजेन्द्र खडा होता है.

इस दोनों प्रकारके परीषहको जीते यवमध्यम प्रतिमा धारी मुनिको शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक दात आहार और एक दात पाणी लेना कल्पै. दूजको दो दात, तीजको तीन दात, यावत् पूर्णिमाको पंद्रह दात आहार और पंद्रह दात पाणी लेना कल्पै. आहारकी विधि जो ग्राम, नगरमें भिक्षाचर भिक्षा लेकर निवृत्त हो गये हो, अर्थात् दो प्रहर (दुपहर) को भिक्षाके लीये जावे. चंचलता, चपलता, आतुरता रहित जो एकेला भोजन करता हो, दुपद, चतुष्पद न वंछे ऐसा नीरस आहार हो, सोभी एक पग दरवाजाकी अन्दर, और एक पग दरवाजाके बाहार, वह भी खरडे हाथोंसे देवे, तो लेना कल्पै. परन्तु दो, तीन, यावत् बहुतसे जन एकत्र हो, भोजन करते हो वहांसे न कल्पै. बालकके लीये, गर्भवतीके लीये, ग्लानके लीये कीया हुवा भी नहीं कल्पै. बच्चावोंको दुध पान करातीको छोडाके देवे तो भी नहीं कल्पै. इत्यादि एषणीय आहार पूर्ववत् लेना कल्पै.

(२) सूत्रव्यवहार—अंग, उपांग, मूल, छेदादि जिस कालमें जितने सूत्र हो, उसके अनुसार प्रवृत्ति करना, उसे सूत्र व्यवहार कहते है.

(३) आज्ञाव्यवहार—कितनी एक वार्तोका सूत्रमें प्रतिपादन भी नहीं है, परन्तु उसका व्यवहार पूर्व महर्षियोंकी आज्ञासे ही चलता है.

(४) धारणाव्यवहार—गुरुमहाराज जो प्रवृत्ति करते थे, आलोचना देते थे, तब शिष्य उस बातकी धारणा कर लेते थे. उसी माफिक प्रवृत्ति करना यह धारणा व्यवहार है.

(५) जीतव्यवहार—जमाना जमानाके बल, संहनन, शक्ति, लोकव्यवहार आदि देख अशठ आचार, शासनको पथ्यकारी हो, भविष्यमें निर्वाहा हो, ऐसी प्रवृत्तिको जीतव्यवहार कहते है.

आगम व्यवहारी हो, उस समय आगम व्यवहारको स्थापन करे, शेष च्यारों व्यवहारको आवश्यक्ता नहीं है. आगम व्यवहारके अभावमें सूत्र व्यवहार स्थापन करे, सूत्र व्यवहारके अभावमें आज्ञा व्यवहार स्थापन करे, आज्ञा व्यवहारके अभावमें धारणा व्यवहार स्थापन करे, धारणा व्यवहारके अभावमें जीत व्यवहार स्थापन करे.

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसे किस कारणसे कहते हो ?

उत्तर—हे गौतम ! जिस जिस समयमें जिस जिस व्यवहारकी आवश्यक्ता होती है, उस उस समय उस उस व्यवहार माफिक प्रवृत्ति करनेवाले जीव आज्ञाका आराधक होता है.

भावार्थ—व्यवहारके प्रवृतानेवाले निःस्पृही महात्मा होते

है. यह द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखके प्रवृत्ति करते है. किसी अपेक्षासे आगमव्यवहारी सूत्रव्यवहारकी प्रवृत्ति, सूत्रव्यवहारी आज्ञाव्यवहारकी प्रवृत्ति, आज्ञाव्यवहारी धारणाव्यवहारकी प्रवृत्ति, धारणाव्यवहारी जीतव्यवहारकी प्रवृत्ति-अर्थात् एक व्यवहारी दुसरे व्यवहारकी अपेक्षा रखते है, उस अपेक्षा संयुक्त व्यवहार प्रवृतानेसे जिनाज्ञाका आराधक हो सक्ता है.

(३) च्यार प्रकारके पुरुष (साधु) कहे जाते है.

[१] उपकार करते है, परन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] उपकार तो नहीं करे, किन्तु अभिमान बहुत करे.

[३] उपकार भी करे और अभिमान भी करे.

[४] उपकार भी नहीं करे और अभिमान भी नहीं करे.

(४) च्यार प्रकारके पुरुष (साधु) होते है.

[१] गच्छका कार्य करे परन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] गच्छका कार्य नहीं करे, खाली अभिमान ही करे.

[३] गच्छका कार्य भी करे, और अभिमान भी करे.

[४] गच्छका कार्य भी नहीं करे, और अभिमान भी नहीं करे.

(५) च्यार प्रकारके पुरुष होते है.

[१] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह करे, किन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह नहीं करे, परन्तु अभिमान करे.

[३] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह करे और अभिमान भी करे.

है. वह द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखके प्रवृत्ति करते है. किसी अपेक्षासे आगमव्यवहारी सूत्रव्यवहारकी प्रवृत्ति, सूत्रव्यवहारी आज्ञाव्यवहारकी प्रवृत्ति, आज्ञाव्यवहारी धारणाव्यवहारकी प्रवृत्ति, धारणाव्यवहारी जीतव्यवहारकी प्रवृत्ति-अर्थात् एक व्यवहारी दुसरे व्यवहारकी अपेक्षा रखते है, उस अपेक्षा संयुक्त व्यवहार प्रवृतानेसे जिनाज्ञाका आराधक हो सक्ता है.

(३) च्यार प्रकारके पुरुष (साधु) कहे जाते है.

[१] उपकार करते है, परन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] उपकार तो नहीं करे, किन्तु अभिमान बहुत करे.

[३] उपकार भी करे और अभिमान भी करे.

[४] उपकार भी नहीं करे और अभिमान भी नहीं करे.

(४) च्यार प्रकारके पुरुष (साधु) होते है.

[१] गच्छका कार्य करे परन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] गच्छका कार्य नहीं करे, खाली अभिमान ही करे.

[३] गच्छका कार्य भी करे, और अभिमान भी करे.

[४] गच्छका कार्य भी नहीं करे, और अभिमान भी नहीं करे.

(५) च्यार प्रकारके पुरुष होते है.

[१] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह करे, किन्तु अभिमान नहीं करे.

[२] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह नहीं करे, परन्तु अभिमान करे.

[३] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह करे और अभिमान भी करे.

[४] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह भी नहीं करे, और अभिमान भी नहीं करे, एवं वस्त्र, पात्रादि.

(६) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] गच्छके छते गुण दीपावे, शोभा करे, परन्तु अभिमान नहीं करे एवं चौभंगी.

(७) च्यार प्रकारके पुरुष होते है.

[१] गच्छकी शुश्रूषा (विनय भक्ति) करते है, किन्तु अभिमान नहीं करते. एवं चौभंगी.

एवं गच्छकी अन्दर जो साधुवोंको अतिचारादि हो, तो उन्होंको आलोचना करवाके विशुद्ध करावे.

(८) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] रुप-साधुका लिंग, रजोहरण, मुखवस्त्रिकादिको छोडे (दुष्कालादि तथा राजादिका कोप होनेसे समयको जानके रुप छोडे) परन्तु जिनेन्द्रका श्रद्धारुप धर्मको नहीं छोडे.

[२] रुपको नहीं छोडे (जमालीवत्) किन्तु धर्मको छोडे.

[३] रुप और धर्म-दोनोंको नहीं छोडे.

[४] रुप और धर्म-दोनोंको छोडे, जैसे कुलिंगी श्रद्धासे भ्रष्ट और संयमरहित.

(९) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] जिनाज्ञारुप धर्मको छोडे, परन्तु गच्छमर्यादाको नहीं छोडे. जैसे गच्छमर्यादा है कि-अन्य संभोगीको वाचना नहीं देना, और जिनाज्ञा है कि-योग्य हो उस सबको वाचना देना. गच्छमर्यादा रखनेवाला सबको वाचना न देवे.

[२] जिनाज्ञा रखे, परन्तु गच्छमर्यादा नहीं रखे.
[३] दोनों रखे.
[४] दोनों नहीं रखे.

भावार्थ—द्रव्यक्षेत्र देखके आचार्यमहाराज मर्यादावादी हो कि—साधु साधुओंको वाचना देवे, साध्वी साध्वीयोंको वाचना दे. और जिनाज्ञा है कि योग्य हो तो सबको भी आगमवाचना दे. परन्तु देशकालसे आचार्यमहाराजकी मर्यादाका पालन, भविष्यमें लाभका कारण जान करना पडता है.

(१०) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—
[१] प्रिय धर्मी—शासनपर पुर्ण प्रेम है, धर्म करनेमें उत्साही है, किन्तु दृढ धर्मी नहीं है, परिषह सहन करने को मन मजबुत रखने में असमर्थ है.
[२] दृढ धर्मी है, परन्तु प्रियधर्मी नहीं है.
[३] दोनों प्रकार है.
[४] दोनों प्रकार असमर्थ है.

(११) च्यार प्रकारके आचार्य होते है—
[१] दीक्षा देनेवाले आचार्य हो, किन्तु उत्थापन नहीं करते है.
[२] उत्थापन करते है, परन्तु दीक्षा देनेवाले नहीं है.
[३] दोनों है.
[४] दोनों नहीं है.

भावार्थ—एक आचार्य विहार करते आये, वह वैरागी शिष्योंको दीक्षा देके वहां निवास करनेवाले साधुवोंको सुप्रत

कर विहार कर गये. उस नव दिक्षित साधुको उत्थापन वडी दीक्षा अन्य आचार्यादि देवे इसी अपेक्षा समझना.

(१२) च्यार प्रकारके आचार्य होते हैं—

[१] उपदेश करते है, परन्तु वाचना नहीं देते है.
[२] वाचना देते है, किन्तु उपदेश नहीं करते है.
[३] दोनों करते है.
[४] दोनों नहीं करते है.

भावार्थ—एक आचार्य उपदेश कर दे कि—अमुक साधुको अमुक आगमकी वाचना देना वह वाचना उपाध्यायजी देवे. कोइ आचार्य ऐसे भी होते है कि—आप खुद अपने शिष्य समुदायको वाचना देवे.

(१३) धर्माचार्य महाराजके च्यार अन्तेवासी शिष्य होते है—

[१] दीक्षा दीया हुवा शिष्य पासमें रहै, परन्तु उत्थापन कीया हुवा शिष्य पासमें नहीं मिले.
[२] उत्थापनवाला मिले, परन्तु दीक्षावाला नहीं मिले.
[३] दोनों पासमें रहै.
[४] दोनों पासमें नहीं मिले.

भावार्थ—आचार्य महाराज अपने हाथसे लघु दीक्षा दी, उसको वडी दीक्षा किसी अन्य आचार्यने दी. वह शिष्य अपने पासमें है. और अपने हाथसे उत्थापन (वडी दीक्षा) दी, वह साधु दुसरे गणविच्छेदक के पास है. तथा लघु दीक्षावाला अन्य साधुवोंके पास है, आपके पास सब वडी दीक्षावाले है.

(१४) आचार्य महाराजके पास च्यार प्रकारके शिष्य रहते है—

[१] उपदेश दीये हुवे पासमें है, किन्तु वाचना दीया वह पासमें नहीं है.

[२] वाचनावाला पासमें है, किन्तु उपदेशवाला पासमें नहीं है.

[३] दोनों पासमें है.

[४] दोनों पासमें नहीं है.

भावार्थ—पुर्ववत्.

एवं च्यार सूत्र धर्माचार्य और धर्म अन्तेवासी के है. लघु दीक्षा, वडीदीक्षा उपदेश और वाचनाकी भावना पुर्ववत् एवं १८ सूत्र.

(१९) स्थविर महाराजकी तीन भूमिका होती है—

[१] ज्ञाति स्थविर.

[२] दीक्षा स्थविर.

[३] सूत्र स्थविर.

जिसमें साठ वर्षकी आयुष्यवाला जातिस्थविर है, वीश वर्ष दीक्षावाला दीक्षा स्थविर है और स्थानांग तथा समवायांग सूत्र—अर्थके जानकार सूत्र स्थविर है.

(२०) शिष्यकी तीन भूमिका है—

[१] जघन्य—दीक्षा देनेके वाद सात दिनके वाद वडी दीक्षा दी जावे.

[२] मध्यम दीक्षा देनेके वाद च्यार मास होनेपर वडी दीक्षा दी जावे.

[३] उत्कृष्ट छे मास होने पर वडी दीक्षा दी जावे.

भावार्थ—लघु दीक्षा देनेके वाद पिंडेषणा नामका अध्य-

यन सूत्रार्थ कंठस्थ करलेनेके बादमें बडी दीक्षा दी जावे, उसका काल बतलाया है.

(२१) साधु साध्वीयोंको क्षुल्लक—छोटा लडका, लडकी या आठ वर्षसे कम उम्मरवालाकों दीक्षा देना, वडीदीक्षा देना, शिक्षा देना, साथमें भोजन करना, सामेल रहना नहीं कल्पै.

भावार्थ—जबतक वह बालक दीक्षाका स्वरुपको भी नहीं जाने, तो फिर उसे दीक्षा दे अपने ज्ञानादिमें व्याघात करनेमें क्या फायदा है? अगर कोइ आगम व्यवहारी हो, वह भविष्यका लाभ जाने तो वह एसेको दीक्षा दे भी सक्ता है।

(२२) साधु साध्वीयोंको आठ वर्षसे अधिक उम्मरवाला वैरागीको दीक्षा देना कल्पै, यावत् उसके सामेल रहना.

(२३) साधु साध्वीयोंको, जो बालक साधु साध्वी जिसकी कक्षामें बाल (रोम) नहीं आया हो, ऐसोंको आचारांग और निशीथसूत्र पढाना नहीं कल्पै.

(२४) साधु साध्वीयोंको जिस साधु साध्वीकी काखमें रोम (बाल) आया हो, विचारवान् हो, उसे आचारांग सूत्र और निशीथसूत्र पढाना कल्पै.

(२५) तीन वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको आचारांग और निशीथ सूत्र पढाना कल्पै. निशीथसूत्रका फरमान है कि जो आगम पढनेके योग्य हो, धीर, गंभीर, आगम रहस्य समझनेमें शक्तिमान हो उसे आगमोंका ज्ञान देना चाहिये.

(२६) च्यार वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको सूयगडांग सूत्रकी वाचना देना कल्पै.

(२७) पांच वर्षोंके दिक्षित साधुवोंको दश कल्प और व्यवहारसूत्रकी वाचना देना कल्पै.

(२८) आठ वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको स्थानांग और समवायांग सूत्रकी याचना देना कल्पै.

(२९) दश वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको पांचवा आगम भगवती सूत्रकी याचना देना कल्पै.

(३०) इग्यारा वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको क्षुल्लक प्रवृत्ति, विमाण महविमाण प्रवृत्ति, अंगचुलीया, वंगचुलीया, व्यवहारचुलीया अध्ययनकी याचना देना कल्पै.

(३१) बारहा वर्षोंके दीक्षित मुनिको अरुणोपात, गरुलोपात, धरणोपात, वैश्रमणोपात, वेलंधरोपात नामका अध्ययनकी याचना देना कल्पै,

(३२) तेरहा वर्षोंके दीक्षित मुनिको उत्थानसूत्र, समुत्थानसूत्र, देवेन्द्रोपात, नागपर्यायसूत्रकी याचना देना कल्पै.

(३३) चौदा वर्षोंके दीक्षित मुनिको स्वपनभावना सूत्रकी याचना देना कल्पै.

(३४) पन्दर वर्षोंके दीक्षित मुनिको चरणभावना सूत्रकी याचना देना कल्पै.

(३५) सोला वर्षोंके दीक्षित मुनिको वेदनीशतक नामका अध्ययनकी याचना देना कल्पै.

(३६) सत्तरा वर्षोंके दीक्षित मुनिको आसीविषभावना नामका अध्ययनकी याचना देना कल्पै.

(३७) अठारा वर्षोंके दीक्षित मुनिको दृष्टिविषभावना नामका अध्ययनकी याचना देना कल्पै.

(३८) एकोनविंश वर्षोंके दीक्षित मुनिको दृष्टिवाद अंगकी याचना देना कल्पै.

(३९) बीश वर्षोंके दीक्षित साधुको सर्व सूत्रोंकी वाचना देना कल्पै. अर्थात् स्वसमय, परसमयके सर्व ज्ञान पठन पाठन करना कल्पै.

(४०) दश प्रकारकी वैयावच्च करनेसे कर्मोंकी निर्जरा और संसारका अन्त होता है. आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, नवशिष्य, ग्लान मुनि, कुल, गण, संघ, स्वधर्मी इस दशोंकी वैयावच्च करता हुवा जीव संसारका अन्त और कर्मोंकी निर्जरा कर अक्षय सुखको प्राप्त कर लेता है.

इति दशवां उद्देशा समाप्त.

इति श्री व्यवहारसूत्रका संक्षिप्त सार समाप्त



॥ श्री रत्नप्रभसूरि सद्गुरुभ्यो नमः ॥

अथ श्री

शीघ्रबोध भाग २२ वां.



(श्रीनिशीथ सूत्र.)

निशीथ—आचारांगादि आगमोंमें मुनियोंका आचार बतलाया है, उस आचारसे स्खलना पाते हुये मुनियोंको नशियत देनेरुप यह निशियसूत्र है. तथा मोक्षमार्गपर चलते हुये मुनियोंको प्रमादादि चौर उन्मार्गपर ले जाता हो, उस मुनियोंको हितशिक्षा दे सन्मार्गपर लानेरुप यह निशियसूत्र है.

शास्त्रकारोंका निर्देश वस्तुतत्व बतलानेका है, और वस्तुतत्वका स्वरुप सम्यक् प्रकारसे समझना उसीका नाम ही सम्यग्ज्ञान है,

धर्मनीतिके साथ लोकनीतिका घनिष्ठ संबंध है. जैसे लोकनीतिका नियम है कि—अमुक अकृत्य कार्य करनेवाला मनुष्य, अमुक दंडका भागी होता है. इससे यह नहीं समझा जाता है कि सब लोग ऐसे अकृत्य कार्य करते होंगे. इसी माफिक धर्मशास्त्रोंमें भी लिखा है कि—अमुक अकृत्य कार्य करनेवालेको अमुक प्रायश्चित्त दिया जाता है. इसीसे यह नहीं समझा जावे कि—सब धर्मज्ञ अमुक अकृत्य कार्य करनेवाले होंगे. हां, धर्मशास्त्र और नीतिका फरमान है कि—अगर कोइभी अकृत्य कार्य करेगा,

वह अवश्य दंडका भागी होगा. यह उद्देश दुराचारसे बचाना और सदाचारमें प्रवृत्ति करानेके लीये ही है. दुराचार सेवन करना मोहनीय कर्मका उदय है, और दुराचारके स्वरुपको समझना यह ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम है, दुराचारको त्याग करना यह चारित्र मोहनीयकर्मका क्षयोपशम है.

जब दुराचारका स्वरुपको ठीक तौरपर जान लेगा, तब ही उस दुराचार प्रति घृणा आवेगी. जब दुराचार प्रति घृणा आवेगी, तब ही अंतःकरणसे त्यागवृत्ति होगी. इसवास्ते पेस्तर नीतिज्ञ होनेकी खास आवश्यक्ता है. कारण—नीति धर्मकी माता है. माताही पुत्रको पालन और वृद्धि कर सक्ती है.

यहां निशिथसूत्रमें मुख्य नीतिके साथ सदाचारका ही प्रतिपादन कीया है. अगर उस सदाचारमें वर्त्तते हुवे कभी मोहनीय कर्मोदयसे स्खलना हो, उसे शुद्ध बनानेको प्रायश्चित्त बतलाया है. प्रायश्चित्तका मतलब यह है कि—अज्ञातपनेसे एकदफे जिस अकृत्य कार्यका सेवन किया है उसकी आलोचना कर दूसरी बार उस कार्यका सेवन न करना चाहिये.

यह निशिथसूत्र राजनीतिके माफिक धर्मकानुनका खजाना है. जबतक साधु साध्वी इस निशिथसूत्ररुप कानुनकोषको ठीक तौरपर नहीं समझे हो, वहांतक उसे अग्रेसरपदका अधिकार नहीं मिल सक्ता है. अग्रेसरकी फर्ज है कि—अपने आश्रित रहे हुवे साधु साध्वीयोंको सन्मार्गमें प्रवृत्ति करावे. कदाच उसमें स्खलना हो तो इस निशिथसूत्रके कानुन अनुसार प्रायश्चित्त दे उसे शुद्ध बनावे. तात्पर्य यह है कि साधु साध्वी जबतक आचारांग और निशिथसूत्र गुरुगमतासे नहीं पढे हो, वहांतक उस मुनियोंको अग्रेसर होके विहार करना, व्याख्यान देना, गोचरी जाना नहीं

कल्पै. वास्ते आचार्यश्रीको भी चाहिये कि अपने शिष्य शिष्यणीयोंको योग्यता पूर्वक पेस्तर आचारांगसूत्र और निशियसूत्रकी वाचना दे. और मुनियोंको भी प्रथम इसका ही अभ्यास करना चाहिये. यह मेरी नम्रता पूर्वक विनंती है.

संकेत—

(१) जहांपर ३ तीनका अंक रखा जायेगा, उसे—यह कार्य स्वयं करे नहीं, अन्य साधुवोंसे करावे नहीं, अन्य कोइ साधु करते हो उसे अच्छा समझे नहीं—उसको सहायता देवे नहीं.

(२) जहांपर केवल मुनिशब्द या साधुशब्द रखा हो वहां साधु और साध्वीयों दोनों समझना चाहिये. जो साधुके साथ घटना होती है, वह साधु शब्दके साथ जोड देना और साध्वीयोंके साथ घटना होती हो, वह साध्वीशब्दके साथ जोड देना.

(३) लघु मासिक, गुरु मासिक, लघुचातुर्मासिक, गुरु चातुर्मासिक तथा मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, चतुर्मासिक, पंच मासिक और छे मासिक—इस प्रायश्चित्तवालोंको क्या क्या प्रायश्चित्त देना, उसके बदलेमें आलोचना सुनके प्रायश्चित्त देनेवाले गीतार्थ—बहुश्रुतजी महाराज पर ही आधार रखा जाता है. कारण—आलोचना करनेवाले किस भावोंसे दोष सेवन कीया है, और किस भावोंसे आलोचना करी है, कितना शारीरिक सामर्थ्य है, यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखके ही शरीर तथा संयमका निर्वाह करके ही प्रायश्चित देते है. इस विषयमें वीसवां उद्देशामें कुछ खुलासा कीया गया है. अस्तु.



(१) अथ श्री निशिथसूत्रका प्रथम उद्देशा.

जो भिख्खु—अष्ट कर्मोरुप शत्रुदलको भेदनेवालोंको भिक्षु कहा जाता है. तथा निरवद्य भिक्षा ग्रहण कर उपजीविका करणेवालोंको भिक्षु कहा जाता है. यहां भिक्षुशब्दसे शास्त्रकारोंने साधु साध्वीयों दोनोंको ग्रहन कीया है. 'अंगादान' अंग—शरीर (पुरुष स्त्री चिन्हरुप शरीर) कुचेष्टा (हस्तकर्मादि) करनेसे चित्तवृत्ति मलीनके कारण कर्मदल एकत्र हो आत्मप्रदेशोंके साथ कर्मबन्ध होता है. उसे 'अंगादान' कहते हैं.

(१) हस्तकर्म. (२) काष्टादिसे अंग संचलन. (३) मर्दन. (४) तैलादिसे मालीस करना, (५) काष्टादि सुगन्धी पदार्थका लेप करना. (६) शीतल पाणी तथा गरम पाणीसे प्रक्षालन करना. (७) त्वचादिका दूर करना. (८) घ्राणेंद्रियद्वारा गंध लेना. (९) अचित्त छिद्रादिसे वीर्यपातका करना. यह सूत्र मोहनीय कर्मकी उदीरणा करनेवाले है. ऐसा अकृत्य कार्य साधुवोंको न करना चाहिये. अगर कोइ करेगा, तो निम्न लिखित प्रायश्चित्तका भागी होगा. मोहनीय कर्मकी उदीरणा करनेवाले मुनियोंको क्या नुकशान होता है, वह दृष्टांतद्वारा बतलाया जाता है.

(१) जैसे सुते हुवे सिंहको अपने हाथोंसे उठाना. (२) सुते हुवे सर्पको हाथोंसे मसलना. (३) जाज्वल्यमान अग्निको अपने हाथोंसे मसलना. (४) तिक्षण भालादि शस्त्रपर हाथ मारना. (५) दुखती हुइ आंखोको हाथसे मसलना. (६) आशीविष सर्प तथा अजगर सर्पका मुंहको फाडना. (७) तीक्षण धारवाली तलवारसे हाथ घसना, इत्यादि पूर्वोक्त कार्य करनेवाला मनुष्यको अपना जीवन देना पडता है. अर्थात् सिंह, सर्प,

अग्नि शस्त्रादिसे कुचेष्टा करनेसे कुचेष्टा करनेवालोंको बडा भारी नुकशान होता है. वास्ते मुनि उक्त कार्य स्वयं करे, अन्यके पास करावे, अन्य करते हुवेको आप अच्छा समझ अनुमोदन करे. अर्थात् अन्य उक्त कार्य करते हुवेको सहायता करे.

(१०) कोइ भी साधु साध्वी सचित्त गन्ध गुलाब, केवडादि पुष्पोंकी सुगन्ध स्वयं लेवे, लीरावे, लेतेको अनुमोदन करे.

(११) ,, सचित्त प्रतिबद्ध सुगन्ध ले, लीरावे, लेतेको अनुमोदे.

(१२) ,, पाणीवाला रहस्ता तथा कीचडवाला रहस्तापर अन्यतीर्थीयोंके पास अन्यतीर्थीयोंके गृहस्थोंके पास काष्ठ पत्थरादि रखावे, तथा उंचा चढनेके लीये रस्ता सीडी आदि रखावे. (३)

(१३) ,, अन्य तीर्थीयोंसे तथा अन्य० के गृहस्थोंसे पाणी निकालनेकी नाली तथा खाइ गटर करावे. (३)

(१४) ,, अन्य तीर्थीयोंसे, अन्य० के गृहस्थोंसे छीका, छीकाके ढक आदिक करावे. (३)

(१५) ,, अन्य० अन्य० के गृहस्थोंसे सूतकी दोरी, उनका कंदोरा नाडी—रसी, तथा चिलमिली (शयन तथा भोजन करते समय जीवरक्षा निमित्त रखी जाती है.) करे. (३)

(१६) ,, अन्य० अन्य० के गृहस्थोंसे सुइ (सूचि) घसावे—तीक्षण करावे. (३)

(१७) ,, एवं कतरणी. (१८) नखछेदणी. (१९) कानसोधणी.

भावार्थ—वारदसे उन्नीसवे सूत्रमें अन्य तीर्थीयों तथा अन्य तीर्थीयोंके गृहस्थोंसे कार्य करानेकी मना है. कारण—उन्होंसे कार्य करानेसे परिचय बढता है. वह असंयति है, अयतनासे कार्य करे. असंयतियोंके सर्व योग सावध है.

(२०) ,, विगर कारण सुइ, (२१) कतरणी, (२२) नख छेदणी, (२३) कानसोधणीकी याचना करे. (३)

भावार्थ—गृहस्थोंके वहां जानेका कोइभी कारन न होने-पर भी सुइ, कतरणीका नामसे गृहस्थोंके वहां जाके सुइ, कत-रणी आदिकी याचना करे.

(२४) ,, अविधिसे सुइ, (२५) कतरणी, (२६) नख-छेदणी. (२७) कानसोधणी याचे. (३)

भावार्थ—सुइ आदि याचना करते समय ऐसा कहना चा-हिये कि—हम सुइ ले जाते है, वह कार्य हो जानेपर वापिस ला देंगे, अगर ऐसा न कहे तो अविधि याचना कहते है. तथा सुइ आदि लेना हो, तो गृहस्थ जमीनपर रख दे, उसे आज्ञासे उठा लेना. परन्तु हाथोंहाथ लेना इसे भी अविधि कहते है, कारण—लेते रखते कहां भी लग जावे, तो साधुवोंका नाम सामेल होता है.

(२८) ,, अपने अकेलेके नामसे सुइ याचके लावे. अ-पना कार्य होनेके बाद दुसरा साधु मागनेपर उसको देवे. (२९) एवं कतरणी. (३०) नखछेदणी. (३१) कानसोधणी.

भावार्थ—गृहस्थोंको ऐसा कहे कि मैं मेरे कपडे सीनेके लीये सुइ आदि ले जाता हुं, और फिर दुसरोंको देनेसे सत्यव-चनका लोप होता है. दुसरे साधु मांगनेपर न देनेसे उस साधुके दिलमें रंज होता है. वास्ते उपयोगवाला साधु किसीका भी नाम खोलके नहीं लावे. अगर लावे तो सर्व साधु समुदायके लीये लावे.

(३२) ,, कार्य होनेसे कोइ भी वस्तु लाना और कार्य हो जानेसे वह वस्तु वापिस भी दी जावे उसे शास्त्रकारोंने ‘ पडि-

हारियं' कहते है. अर्थात् उसे सरचीणी भी कहते है. वस्त्र सीनेके नामसे सुइकी याचना करी, उस सुइसे पात्र सीवे, इसी माफिक.

(३३) वस्त्र छेदनेके नामसे कतरणी लाके पात्र छेदे.

(३४) नख छेदनेके नामसे नखछेदणी लाके कांटा नीकाले.

(३५) कानका मेल निकालनेके नामसे कानसोधणी लाके दांतोका मेल निकाले.

भावार्थ—एक कार्यका नाम बोलके कोइ भी वस्तु नही लाना चाहिये. कारण-अपने तो एक ही कार्य हो, परन्तु उसी वस्तुसे दुसरे साधुवोंको अन्य कार्य हो, अगर वह साधु दुसरे साधुवोंको न देवे, तो भी ठीक नहीं. और देवे तो अपनी प्रतिज्ञा का भंग होता है वास्ते पेस्तर याचना ही ठीकसर करना चाहिये. अर्थात् साधु ऐसा कहे कि हमको इस वस्तुका खप है. अगर गृहस्थ पूछे कि—हे मुनि ! आप इस वस्तुको क्या करोगे ? तब मुनि कहे कि-हमारे जिस कार्यमें जरुरत होगी, उसमें काम लेंगे.

(३६) ,, सुइ वापिस देते वखत अविधिसे देवे.

(३७) कतरणी अविधिसे देवे.

(३८) एवं नखछेदणी अविधिसे देवे.

(३९) कानसोधणी अविधिसे देवे.

भावार्थ—सुइ आदि देते समय गृहस्थोंको हाथोहाथ देवे. तथा इधर उधर फेंकके चला जावे, उसे अविधि कहते है. कारण—गृहस्थोंके हाथोहाथ देनेमें कभी हाथमें लग जावे तो साधुका नाम होता है. इधर उधर फेंक देनेसे कोइ पक्षी आदि भक्षण करनेसे जीवघात होता है.

(४०) ,, तुंबाका पात्र, काष्ठका पात्र, मट्टीका पात्र जो अन्य-तीर्थीयों तथा गृहस्थोंसे घसावे, पुंछावे, विषमका सम करावे,

समको विषम करावे, नये पात्रा तैयार करावे, तथा पात्रों संबंधी स्वल्प भी कार्य गृहस्थोंसे करावे. ३

भावार्थ—गृहस्थोंका योग सावद्य है. अयतनासे करे. मातेतगी रखना पडे, उसकी निष्पत् ऐसा हीलाना पडे. इत्यादि दोषोंका संभव है.

(४१) ,, दांडा (कान परिमाण) लट्ठी (शरीर परिमाण), चीपटी लकडी तथा वांसकी खापटी, कर्दमादि उतारनेके लीये और वांसकी सुइ रजोहरणकी दशी पोनेके लीये—उसको अन्यतीर्थीयों तथा गृहस्थोंके पास समरावे, अच्छी करावे, विषमको सम करावे इत्यादि. भावना पूर्ववत्.

(४२) ,, पात्राको एक थेगला (कारी) लगावे. ३

भावार्थ—विगर फूटे शोभाके निमित्त तथा बहुत दिन चलनेके लोभसे थेगलो (कारी) लगावे. ३

(४३) ,, पात्राके फूट जानेपर भी तीन थेगलेसे अधिक लगावे.

(४४) वह भी विना विधि, अर्थात् अशोभनीय, जो अन्य लोग देख हीलना करे, ऐसा लगावे. ३

(४५) पात्राको अविधिसे बांधे, अर्थात् इधर उधर शिथिल बन्धन लगावे.

(४६) विना कारण एक भी बन्धनसे बांधे. ३

(४७) कारण होनेपर भी तीन बन्धनोंसे अधिक बन्धन लगावे.

(४८) अगर कोइ आवश्यक्ता होनेपर अधिक बन्धनवाला पात्रा भी ग्रहन करनेका अवसर हुवा तो भी उसे देढ माससे अधिक रखे. ३

(४९) ,, वस्त्रको एक थेगला (कारी) लगावे, शोभाके लीये.

(५०) कारन होनेपर तीन थेगलेसे अधिक लगावे. ३

(५१) अविधिसे वस्त्र सीवे. ३

(५२) वस्त्रके कारन विना एक गांठ देवे.

(५३) जीर्ण वस्त्रको चलानेके लीये तीन गांठसे अधिक देवे.

(५४) ममत्वभावसे एक गांठ देके वस्त्रको बांध रखे.

(५५) कारन होनेपर तीन गांठसे अधिक देवे.

(५६) वस्त्रको अविधिसे गांठ देवे.

(५७) मुनि मर्यादासे अधिक वस्त्रकी याचना करे. ३

(५८) अगर किसी कारणसे अधिक वस्त्र ग्रहन कीया है, उसे देढ माससे अधिक रखे. ३

भावार्थ—वस्त्र और पात्र रखते है, वह मुनि अपनी संयमयात्राका निर्वाहके लीये ही रखते है. यहांपर पात्र और वस्त्रके सूत्रों बतलाये है. उनमें खास तात्पर्य प्रमादको तथा ममत्वभावकी वृद्धि न हो और मुनि हमेशां लघुभूत रहके स्वहित साधन करे.

(५९) ,, जिस मकानमें साधु ठेरे हो, उस मकानमें धुवा जमा हुवा हो, कचरा जमा हुवा हो, उसे अन्यतीर्थीयों तथा उन्होंके गृहस्थोंसे लीरावे, साफ करावे. ३

(६०) ,, पूतिकर्म आहार—एषणीय, निर्दोष आहारकी अन्दर एक सीत मात्र भी आधाकर्मी आहारको मिल गइ हो, अथवा सहस्र घरके अन्तरे भी आधाकर्मी आहारका लेप भी शुद्ध आहारमें मिश्रित हो, ऐसा आहार ग्रहन करे. ३

उपर लिखे हुवे ६० बोलोंसे कोइभी बोल, मुनि स्वयं से-

चन करे, अन्य कोइके पास सेवन करावे, अन्य कोइ सेवन करता हो उसे अच्छा समझे, उस मुनिको गुरु मासिक प्रायश्चित्त होता है गुरुमासिक प्रायश्चित्त किसको कहते है, वह इसी निशिथ सूत्रके वीसवां उद्देशामें लिखा जावेगा.

इति श्री निशिथसूत्र–प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(२) श्री निशिथसूत्रका दूसरा उद्देशा.

(१) ' जो कोइ साधु साध्वी ' काष्ठकी दंडीका रजोहरण अर्थात् काष्ठकी दंडीके उपर एक सूतका तथा उनका वस्त्र लगाया जाता है, उसे ओघारीया (निशितीया) कहते है. उस ओघारीया रहित मात्र काष्ठकी दंडीका ही रजोहरण आप स्वयं करे, करावे, अनुमोदे. (२) एवं काष्ठकी दंडीका रजोहरण ग्रहन करे. ३ (३) एवं धारण करे. ३ (४) एवं धारण कर ग्रामानुग्राम विहार करे. ३ (५) दुसरे साधुवोंको ऐसा रजोहरण रखनेकी अनुज्ञा दे. ३

(६) आप रखके उपभोगमें लेवे.

(७) अगर ऐसाही कारण होनेपर काष्ठकी दंडीका रजोहरण रखा भी हो तो देढ (१॥) माससे अधिक रखा हो.

(८) काष्ठकी दंडीका रजोहरणको शोभाके निमित्त धोवे, धूपादि देवे.

भावार्थ—रजोहरण साधुवोंका मुख्य चिन्ह है. और शास्त्रकारोंने रजोहरणको धर्मध्वज कहा है. केवल काष्ठकी दंडी होनेसे अन्य जीवोंको भयका कारण होता है. इधर उधर पडजानेसे

जीयादिको तकलीफ होती है. तथा प्रतिमा प्रतिपन्न श्रावक होता है, यह काष्टकी दंडीका रजोहरण रखता है. उसीका अलग पण भी वस्त्र विहीन रजोहरण मुनि रखनेसे होता है. इसी वास्ते वस्त्रयुक्त रजोहरण मुनियोंको रखनेका कल्प है. कदाच ऐसा कारण हो तो डोढ मास तक वस्त्र रहित भी रख सकते है.

(९) ,, अचित्त प्रतिबद्ध सुगंधको सुंघे. ३

(१०) ,, पाणीके मार्गमें तथा कीचड—कर्दम के मार्गमें काष्ट, पत्थर तथा पाटों और उंचे चढनेके लीये अवलंबन मुनि स्वयं करे ३

(११) एव पाणीकी खाइ, नालों स्वयं करे.

(१२) एवं छीका ढकण करे.

(१३) सूत, उन, सणादिकी रसी-दोरी करे, तथा चिलमिली आदिकी दोरी वटे. ३

(१४) ,, सुइको घसे.

(१५) कतरणी घसे.

(१६) नखछेदणी घसे.

(१७) कानसोधणी—मुनि आप स्वयं घसे, तीक्षण करे. ३

भावार्थ—अंग, तूटे तथा हाथमें लगनेसे रक्त निकले तो अस्वाध्याय हो प्रमाद बढे गृहस्थोंको शंका इत्यादि दोष है.

(१८) ,, स्वल्प ही कठोर वचन, अमनोज्ञ वचनबोले. ३

(१९) ,, स्वल्प ही मृषावाद वचन बोले. ३

(२०) ,, स्वल्प ही अदत्तादान ग्रहन करे. ३

(२१) ,, स्वल्प ही हाथ, पग, कान, आंख, नख, दांत, मुंह—शीतल पाणीसे तथा गरम पाणीसे एकवार धोये या वारवार धोये. ३

(२२) ,, अखंडित चर्म अर्थात् संपूर्ण चर्म मृगछालादि रखे. ३

भावार्थ—विशेष कारण होनेपर साधु चर्मकी याचना करते है, वह भी एक खंडे सारखे.

(२३) ,, संपूर्ण वस्त्र रखे. ३

भावार्थ—संपूर्ण वस्त्रकी प्रतिलेखन ठीक तौरपर नहीं होती है, चौरादिका भय भी रहता है.

(२४) ,, अगर संपूर्ण वस्त्र लेनेका काम भी पड जावे, तो भी उसको काममें आने योग टुकडे कीया विगर रखे. ३

(२५) ,, तुंबा, काष्ठ, मट्टीका पात्रको आप स्वयं घसे, समारे, सुन्दर आकारवाला करे. ३

भावार्थ—प्रमादादिकी वृद्धि और स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होता है.

(२६) एवं दंड, लठ्ठी, खापटी, वंस, सुइ स्वयं घसे, समारे, सुन्दर बनावे. ३

(२७) ,, साधुवोंके पूर्व संसारी न्यातीले थे, उन्होंकी सहायतासे पात्रकी याचना करे. ३

(२८) ,, न्यातीके सिवाय दुसरे लोगोंकी सहायतासें पात्रकी याचना करे.

(२९) कोइ महान् पुरुष (धनाढ्य) तथा राजसत्तावालाकी सहायतासे

(३०) कोइ बलवानकी सहायतासे.

(३१) पात्र दातारको पात्रदानका अधिकाधिक लाभ बतलाके पात्र याचे. ३

भावार्थ—साधु दीनतासे उक्त न्यातीलादिकों कहे कि—हमारे पात्रकी जरुरत हैं. आप साथ चलके मुझे पात्र दीला दो. आप साथमें न चलोगे, तो हमे पात्र कोइ न देगा तथा न्यातीलादि साधुवोंके लीये पात्रयाचनाकी कोशीष कर, साधुको पात्र दीलाये. अर्थात् मुनियोंको पराधीन न होना चाहिये.

(३२) ,, नित्यपिंड (आहार) भोगवे. ३

(३३) ,, अग्रपिंड अर्थात् पहेले उतरी हुइ रोटी आदिको गृहस्थ, गाय कुत्तेको देते हैं—ऐसा आहार भोगवे. ३

(३४) ,, हमेशां भोजन बनाये उसे आधा भाग दानार्थ नीकलते हो, ऐसा आहार तथा अपनी आमदानीसे आधा हिस्सा पुन्यार्थ निकाले, उससे दानशालादि खोले. ऐसा आहार लेवे. ३

(३५) ,, नित्य भाग अर्थात् अमुक भागका आहार दीनादिको देना—ऐसा नियम कीया हो, ऐसा आहार लेये—भोगवे. ३

(३६) ,, पुन्यार्थ नीकाला हुवा आहारसे किंचित् भाग भी भोगवे. ३

भावार्थ—जो गृहस्थ दानार्थ, पुन्यार्थ निकाला भोजन दीन गरीवोंको दीया जाता है. उसे साधु ग्रहन करनेसे उस भिक्षाचर लोगोंको अंतराय होगा. अथवा अन्य भी आधाकर्मी, उद्देशिक आदि दोषका भी संभव होगा.

(३७) ,, नित्य एकही स्थानमें निवास करे. ३

भावार्थ—विगर कारण एक स्थानपर रहनेसे गृहस्थ लोगोंका परिचय बढ जानेपर रागद्वेषकी वृद्धि होती है.

(३८) ,, पहले अथवा पीछे दानेश्वर दातारकी तारीफ (प्रशंसा) करे. ३

भावार्थ—जैसे चारण, भाट, भोजकादि, दातारोंकी तारीफ करते है, उसी माफीक साधुवोंको न करना चाहिये. वस्तुतत्व-स्वरुप अवसरपर कह भी सक्ते है.

(३९) „ शरीरादि कारणसे स्थिरवास रहे हुवे तथा ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे जिस नगरमें गये है. वहांपर अपने संसारी पूर्व परिचित जैसे मातापितादि पीछे सासु सुसरा उन्होंके घरमें पहिले प्रवेश कर पीछे गौचरी जावे. ३

भावार्थ—पहिले उन लोगोंको खबर होनेसे पूर्व स्नेहके मारे सदोष आहारादि बनावे. आधाकर्मी आहारका भी प्रसंग होता है.

(४०) „ अन्य तीर्थीयोंके साथ, गृहस्थोंके साथ, प्रायश्चित्तीयें साधुवोंके साथ तथा मूल गुणोंसे पतित ऐसे पासत्यादिके साथ, गृहस्थोके वहां गौचरी जावे. ३

भावार्थ—अन्य तीर्थीयादिके साथ जानेसे लोगोंको शंका होगी कि—यह सब लोग आहार एकत्र ही लाते होंगे, एकत्र ही करते होंगे. अथवा दुसरेकी लज्जासे दबावसे भी आहारादि देना पडे. इत्यादि.

(४१) एवं स्थंडिल भूमिका तथा विहारभूमि (जिनमन्दिर)

(४२) एवं ग्रामानुग्राम विहार करना. भावना पूर्ववत्.

(४३) „ मुनि समुदाणी भिक्षाकर स्थानपर आके अच्छा सुगन्धि पदार्थका भोजन करे और खराब दुर्गन्धि भोजनको परठे. ३

(४४) एवं अच्छा नीतरा हुवा पाणी पीवे और खराब गुदला हुवा पाणी परठे. ३

(४५) „ अच्छा सरस भोजन प्राप्त हो, या आप भोजन

करनेपर आहार बढ जावे और दो कोशकी अन्दर एक मंडलेके उस भोजन करनेवाले स्वधर्मी साधु हो, उसको विगर पूछे वह आहार परठे. ३

भावार्थ—जबतक साधुवोंको काम आते हो, वहांतक परठना नहीं चाहिये. कारण—सरस आहार परठनेसे अनेक जीवोंकी विराधना होती है.

(४६) ,, मकानके दातारको शय्यातर कहते हैं. उस शय्यातरका आहार ग्रहण करे.

(४७) शय्यातरका आहार विना उपयोगसे लीया हो, खबर पडनेपर शय्यातरका आहार भोगवे. ३

(४८) ,, शय्यातरका घर पूछे विगर गवेषणा कीये विगर गौचरी जावे. ३ कारन—न जाने शय्यातरका घर कौनसा है. पहलेके आहारके सामेल शय्यातरका आहार आ जावे, तो सब आहार परठना पडता है.

(४९) ,, शय्यातरकी निश्रासे अशनादि च्यार प्रकारका आहार ग्रहन करे. ३

भावार्थ—मकानका दातार चलके घर बतावे. दलाली करे, तो भी साधुको आहार लेना नहीं कल्पे. अगर लेवे तो प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(५०) ,, ऋतुबद्ध चौमास पर्युषणा तक भोगवनेके लीये पाट, पाटला, तृणादि संस्तारक लाया हो, उसे पर्युषणाके बाद भोगवे. ३

(५१) अगर जन्तु आदि उत्पन्न हुवा हो तो, दश रात्रिके बाद भोगवे. अर्थात् जन्तुवोंके लीये दशरात्रि अधिक भी रख सके.

(५२) ,, पाट पाटला वर्षादमें पाणीसे भीजता हो, उसे उठाके अन्दर न रखे. ३

(५३) ,, एक मकानके लीये पाट पाटला लाया हो, फिर किसी कारणसे दुसरे मकानमें जाना हो, उस वखत विगर आज्ञा दुसरे मकानमें ले जावे. ३

(५४) ,, जितने कालके लीये पाट पाटला तृण संस्तारक लाया हो, उसे कालमर्यादासे अधिक विना आज्ञा भोगवे. ३

(५५) ,, पाट पाटला के मालिककी आज्ञा विगर दुसरेको देवे. ३

(५६) ,, पाट पाटला शय्या संस्तार विना दीये दुसरे ग्राम विहार करे. ३

(५७) ,, जीवोत्पत्ति न होनेके कारण पाट पाटले पर कोइ भी पदार्थ लगाया हो, उसे विगर उतारे धणीको पीछा देवे. ३

(५८) ,, जीव सहित पाट पाटला गृहस्थोंका वापिस देवे. ३

(५९) ,, गृहस्थोंका पाट पाटला आज्ञासे लाया, उसे कोइ चौर ले गया. उसकी गवेषणा नहीं करे. ३

भावार्थ—वेदरकारी रखनेसे दुसरी दफे पाट पाटला मीलनेमें मुश्केली होगी ?

(६०) जो कोइ साधु साध्वी किंचित् मात्र भी उपधि न प्रतिलेखन करी रखे, रखावे, रखते हुवेको अच्छा समझे.

उपर लिखे ६० बोलोंसे कोइ भी बोल, साधु साध्वी सेवन करे, दुसरोंसे सेवन करावे, अन्य सेवन करते हुवेको अच्छा समझे, सहायता देवे. उस साधु साध्वीयोंको लघु मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि पुर्ववत्.

इति श्री निशिथसूत्रके दुसरे उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(३) श्री निशिथसूत्रका तीसरा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' मुसाफिर खानेमें, बागबगीचेमें, गृहस्थोंके घरमें, परिव्राजकोंके आश्रममें, चाहे यह अन्य तीर्थी हो चाहे गृहस्थ हो, परन्तु वहांपर जोर जोरसे पुकारकर अशनादि च्यार प्रकारके आहारकी याचना करे, कराये, करतेको अच्छा जाने. यह सूत्र एक वचनापेक्षा है.

(२) इसी माफिक बहु वचनापेक्षा.

(३-४) जैसे दो अलापक पुरुषाश्रित हैं, इसी माफिक दो अलापक स्त्री आश्रित भी समझना. यह च्यार अलापक सामान्यपणे कहा, इसी माफिक च्यार अलापक उक्त लोक कुतूहल (कौतुक) के लीये आये हुयेसे अशनादि च्यार प्रकारके आहारकी याचना करे. ३. ५—६—७—८

एवं च्यार अलापक उक्त च्यारों स्थानपर सामने लाने अपेक्षाका है. गृहस्थादि सामने आहारादि लाये, उस समय मुनि कहे कि—सामने लाया हुआ हमको नहीं कल्पे, इसपर गृहस्थ सात आठ कदम वापिस जावे. तब साधु कहे कि—तुम हमारे वास्ते नहीं लाये हो, तो यह अशनादि हम ले सक्ते है. ऐसी मायावृत्ति करनेसे भी प्रायश्चित्तके भागी होते है. एवं १२ सूत्र हुये.

(१३) ,, गृहस्थोंके घरपर भिक्षा निमित्त जाते है, उस समय गृहस्थ कहे कि—हे मुनि! हमारे घरमें मत आइये. ऐसा कहनेपर भी दुसरी दफे उस गृहस्थके वहां भिक्षा निमित्त प्रवेश करे. ३

(१४) ,, जीमनवार देख वहांपर जाके अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

भावार्थ—इस वृत्तिसे लघुता होती है. लोलुपता बढती है.

(१५) ,, गृहस्थोंके वहां भिक्षा निमित्त जाते है. वहां तीन घरसे ज्यादा सामने लाके देते हुवे अशनादिको ग्रहन करे.३

भावार्थ—दृष्टिसे विगर देखी हुइ वस्तु तो मुनि ग्रहण कर ही नहीं सक्ते है, परन्तु कितनेक लोक चोका रखते है, और कोइ देशोंमें ऐसी भी भाषा है कि—यह भातपाणीका घर, यह बैठनेका घर, यह जीमनेका घर—ऐसे संज्ञा वाची घरोंसे तीन घरसे उपरांत सामने लाके देवे, उसे साधु ग्रहन करे. ३

(१६) ,, अपने पावोंको (शोभानिमित्त) प्रमार्जे, अच्छा साफ करे. ३

(१७) अपने पावोंको दवावे, चंपावे.

(१८) ,, तैल, घृत, मक्खन, चरबीसे मालिस करावे. ३

(१९) लोद्र कोकणादि सुगन्धि द्रव्यसे लिप्त करे.

(२०) एवं शीतल पाणी, गरम पाणीसे एकवार, वारवार धोवे. ३

(२१) ,, अलतादिक रंगसे पावोंको रंगे. ३

भावार्थ—विगर कारण शोभा निमित्त उक्त कार्य स्वयं करे, अनेरोंसे करावे, करते हुवेको अच्छा समझे, अथवा सहायता देवे, वह साधु दंडका भागी होता है.

इसी माफिक छे सूत्र (अलापक) काया (शरीर) आश्रित भी समझना, और इसी माफिक छे सूत्र, शरीरमें गडगुम्वड आदि होनेपर भी समझना. ३३

(३४) ,, अपने शरीरमें मेद, फुनसी, गडगुम्वड, जलंधर, हरस, मसा आदि होनेपर तीक्षण अस्त्रसे छेदे, तोडे, काटे. ३

(३५) एवं छेद भेद काटकर अन्दरसे रक्त, राद, चरबी, निकाले. ३

(३६) ,, एवं शीतल पाणी, गरम पाणी कर, विशुद्ध होनेपर भी धोवे. ३

(३७) एवं विशुद्ध होनेपर भी अनेक प्रकार लेपनकी जातिका लेप करे ३. (३८) एवं अनेक प्रकारका मालिस मर्दन करे ३. (३९) एवं अनेक प्रकारके सुगंधि पदार्थ तथा सुगन्धि धूंपादिकी जाती लगाके अपने शरीरको सुवासित बनावे ३.

(४०) एवं अपने शरीरमें किरमीयादिको अंगुलि कर निकाले. ३

यह सोलासे चालीश तक पचीश सूत्रोंका भावार्थ—उक्त कार्य करनेसे प्रमादवृद्धि, अस्वाध्यायवृद्धि शस्त्रादिसे आत्मघात, रोगवृद्धि तथा शुश्रूषावृद्धि अनेक उपाधिये खडी हो जाती हैं. वास्ते प्रायश्चितका स्थान कहा है. उत्सर्ग मार्गवाले मुनियोंको रोगादिको सम्यक् प्रकारसे सहन करना और अपवाद मार्गवाले मुनियोंको लाभालाभका कारण देख गुरु आज्ञाके माफिक वर्ताव करना चाहिये. यहांपर सामान्य सूत्र कहा है.

(४१) ,, अपने दीर्घ-लम्बा नखोंको (शोभा निमित्त) कटावे, समरावे. ३

(४२) ,, अपने गुह्य स्थानके दीर्घवालोंको कटावे, कपावे, समरावे. ३

(४३) ,, अपनी चक्षुके दीर्घ वालोंको कटावे, समरावे.३

(४४) एवं जंघोंका वाल (केश).

(४५) एवं काखका वाल.

(४६) दाढी मुंछोका वाल.

(४७) मस्तकके वाल,
(४८) एवं कानोंके वाल.
(४९) कानकी अन्दरके वाल.

उक्त लंवे वालोंको (शोभा निमित्त) कटावे, समरावे, सुन्दरता वनावे, वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है. मस्तक, दाढी मुंच्छोके लोच समय लोच करना कल्पे.

(५०) ,, अपने दांतोंको एकवार अथवा वारंवार घसे. ३
(५१) शीतल पाणी गरम पाणीसे धोवे. ३
(५२) अलतादिके रंगसे रंगे. ३

भावार्थ—अपनी सुन्दरता-शोभा वढानेके लीये उक्त कार्य करे, करावे, करतेको सहायता देवे.

(५३) ,, अपने होठोंको मसले, घसे. ३
(५४) चांपे, दवावे.
(५५) तैलादिका मालीस करे.
(५६) लोद्रव आदि सुगंधि द्रव्य लगावे.
(५७) शीतल पाणी गरम पाणीसे धोवे. ३

(५८) अलतादि रंगसे रंगे, रंगावे, रंगतेको सहायता देवे भावना पूर्ववत्.

(५९) ,, अपने उपरके होठोंका लंवापणा तथा होठोंपर के दीर्घवालोंको काटे, समारे, सुन्दर वनावे. ३

(६०) एवं नेत्रोंके भोपण काटे, समारे. ३
(६१) एवं अपने नेत्रों (आंखों)को मसले.
(६२) मर्दन करे.
(६३) तैलादिका मालीस करे.

(६४) लोद्रयादि सुगन्धी द्रव्यका लेपन करे.

(६५) शीतल पाणी, गरम पाणीसे धोवे.

(६६) काजलादि रंगसे रंगे, अर्थात् शोभाके लीये सुरमादिका अंजन करे. ३

(६७) „ अपने भँवरोंके बालोंको काटे, समारे. ३

(६८) एवं पछवाडे तथा छातीके बालोंको काटे, समारे सुन्दरता बनावे. ३

(६९) „ अपने आंखोंका मैल, कानोंका मैल, दान्तोंका मैल, नखोंका मैल निकाले, विशुद्ध करे. ३

भावार्थ—अपनी शुश्रूषा निमित्त उक्त कार्य करनेकी मना है कारण—इसीसे प्रमादकी वृद्धि होती है. और स्वाध्यायादि धर्म कृत्यमें विघ्न होता है.

(७०) „ अपने शरीरसे परसेवा, मैल, जमा हुवा पसीना मैलको निकाले, विशुद्ध करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. ३ भावना पूर्ववत्.

(७१) „ ग्रामानुग्राम विहार करते समय शीतोष्ण निवारणार्थ शिरपर छत्र धारण करे. ३

यहांतक शुश्रूषा संबन्धी ५६ बोल हुये है.

(७२) „ सणका दोरा, कपासका दोरा, उनका दोरा, अर्कतूलका दोरा, थोड वनस्पतिके दोरोंसे वशीकरण करे. ३

(७३) „ गृहस्थोंके घरमें, घरके द्वारमें, घरके प्रतिद्वारमें, घरकी अन्दरके द्वारमें, घरको पोलमें, घरके चोकमें, घरके अन्य स्थानोंमें आप लघुनीत (पैसाव) वडोनीत (टटी) परठे, परठावे, परिठतेको अच्छा समझे.

(७४) एवं श्मशानमें मुरदेको जलाया हो, उसकी राखमें मुरदेकी विश्रामकी जगहा, मुरदेकी स्थूभ बनाइ हो, उस जगहा, मुरदेकी पंक्ति (कबरों), मुरदेकी छत्री बनाइ-वहांपर जाके टटी, पैसाव करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(७५) कोलसे बनानेकी जगहा, साजीखारादिके स्थान, गौ, बलहादिके रोग कारणसे डाम देते हो उस स्थानमें, तुसोंका ढेर करते हो उस स्थानमें, धानके खळे बनाते हो उस स्थानमें, टटी पैसाव करे. ३

(७६) सचित्त पाणीका कीचड हो, कर्दम हो, नीलण, फूलण हो ऐसे स्थानमें टटी पैसाव करे. ३

(७७) नवी बनी गोशाला, नवी खोदी हुइ मट्टी, मट्टीकी खान, गृहस्थलोगों अपने काममें ली हो, या न भी ली हो ऐसे स्थानमें टटी पैसाव करे. ३

(७८) उंबरके वृक्षोंका फल पडा हो, एवं वडवृक्ष, पीपलवृक्षोंके नीचे टटी पैसाव करे. ३ इस वृक्षोंका बीज सुक्षम और बहुत होते है.

(७९) इक्षु (साठा) के क्षेत्रमें, शाल्यादि धान्यके क्षेत्रमें, कसुंबादि फूलोंके वनमें, कपासादिके स्थानमें टटी पैसाव करे. ३

(८०) मडक वनस्पति, साक व० मूला व० मालक व० खार व० बहु बीजा व० जीरा व० दमणय व० मरुग वनस्पतिके स्थानोमें टटी पैसाव करे. ३

(८१) अशोकवन, सीतवन, चम्पक वन, आम्रवन, अन्य भी तथा प्रकारका जहांपर बहुतसे पत्र, पुष्प, फल, बीजादि जीवोंकी विराधना होती हो, ऐसे स्थानमें टटी पैसाव करे. ३ तथा उक्त स्थानोंमे टटी पैसाव परठे, परिठावे, परिठतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—प्रगट आहार निहार करनेसे मुनि दुर्लभबोधी पना उपार्जन करता है वास्ते टट्टी पेशावके लीये दुर जाना चाहिये.

(८२) „ अपने निश्राके तथा परनिश्राके मात्रादिका भाजनमें दिनको, रात्रिको, या विकालमें अतिबाधासे पीडित, उस मात्रादिके लघुनीत, बडीनीत कर सूर्य अनुदय अर्थात् जहां पर दिनको सूर्यका प्रकाश नहीं पडते हो, ऐसा आच्छादित स्थानपर परठे, परिठावे, परिठतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—द्रव्यसे जहां सूर्यका प्रकाश पडते हो, और भावसे परिठनेवाले मुनिके हृदय कमलमें ज्ञान (परिठनेकी विधि) सूर्य प्रकाश कीया हो-ऐसे दोनों प्रकारके सूर्योदय न हुवा मुनि परठे तो प्रायश्चितका भागी होता है. कारण—रात्रिमें मात्रादि कर साधु सूर्योदय हो इतना वखत रख नहीं सक्ते है. क्योंकि उस पेसाव आदिमें असंख्य संमूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होती है. इस वास्ते उक्त अर्थ संगतिको प्राप्त करता है.

उक्त ८२ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले साधु साध्वीयोंको लघुमासिक प्रायश्चित्त होता है. विधि देखो बीसवां उद्देशासे.

इति श्री निशिथसूत्र-तीसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(४) श्री निशिथसूत्र—चौथा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वीयों' राजाको अपने वश करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(२) एवं राजाका अर्चन-पूजन करे. ३

(३) एवं अच्छा द्रव्यसे वस्त्र, भूषण, भावसे गुणानुवादादि बोलना. ३

(४) एवं राजाका अर्थी होना. ३

इसी माफिक च्यार सूत्र राजाके रक्षण करनेवाले दिवान-प्रधान आश्रित कहना. ५-८

इसी माफिक च्यार सूत्र नगर रक्षण करनेवाले कोटवालका भी कहना. ९-१२

इसी माफिक च्यार सूत्र निग्रामरक्षक (ठाकुरादि) आश्रित कहना. १३-१६

एवं च्यार सूत्र सर्व रक्षक फोजदारादिक आश्रित कहना. एवं सर्व २० सूत्र हुवे.

भावार्थ—मुनि सदैव निःस्पृह होते है. मुनियाके लीये राजा और रंक सदृश ही होते है. " जहा पुन्नस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ " अगर राजाको अपना करेगा, तो कभी राजाका कहना ही मानना होगा. ऐसा होनेसे अपने नियममें भी स्खलना पहुंचेगा वास्ते मुनियोंको सदैव निःस्पृहतासे ही विचरना चाहिये (यहां ममत्वभावका निषेध है.)

(२१) „ अखंड औषधि (धान्यादि) भक्षण करे. ३

भावार्थ—अखंड धान्य सचित्त होता है. तथा सुंठादि अखंडितमें जीवादि भी कबी कबी मिलते है. वास्ते अखंडित औषधि खानेकी मना है.

(२२) „ आचार्योपाध्यायके विना दीये आहार करे ३.

(२३) „ आचार्योपाध्यायके विना दीये विगइ भोगवे. ३

(२४) „ कोइ गृहस्थ ऐसे भी होते है कि साधुवोंके लीये आहार पाणी स्थापन कर रखते है. ऐसे घरोंकी याच पुछ, गवेषणा कीये विगर साधु नगरमें गौचरी निमित्त प्रवेश करे. ३

(२५) ,, अगर कोइ साध्वीयोंके विशेष कारण होनेपर साधुको साध्वीयोंके उपाश्रय जाना पडे तो अविधि (पहले साध्वीयोंको सावचेत होने योग संकेत करे नहीं) से प्रवेश करे. ३

भावार्थ—एकदम चले जानेसे न जाने साध्वीयों किस अवस्थामें बैठी है.

(२६) ,, साध्वी आनेके रहस्तेपर साधु दंडा, लठ्ठी, रजोहरण, मुखवस्त्रिकादि कोइ भी छोटी बडी वस्तु रखे. ३

भावार्थ—अगर साधु ऐसा जाने कि—यह रखे हुये पदार्थको ओलंगके साध्वी आवेगी, तो उसको कहेंगे—हे साध्वी ! क्या इसी माफिक ही पूजन प्रतिलेखन करते होंगे ? इत्यादि हांसी या अपमान करे. ६

(२७) ,, क्लेशकारी बातें कर नये क्रोधको उत्पन्न करे. ३

(२८) ,, पुराणा क्रोधको खमतखामणा कर उपशांत कर दीया हो, उसे उदीरणा कर क्रोधको प्रज्वलित बनाये. ३

(२९) ,, मुंह फाड फाडके हंसे. ३

(३०) ,, पासत्थे (भ्रष्टाचारी) को अपना साधु देके उन्होंका संघाडा बनाये. अर्थात् उसको साधु देके सहायता करे.३

(३१) एवं उसके साधुको लेवे. ३

(३२--३३) एवं दो अलापक ' उसन्न ' क्रियासे शिथिलका भी समझना.

(३४--३५) एवं दो अलापक ' कुशीलों ' खराब आचारवालोंका समझना.

(३६--३७) एवं दो अलापक ' नितिया ' नित्य एक घरके

भोजन करनेवाले तथा नित्य विना कारण एक स्थानपर निवास करनेवालोंका समझना.

(३८—३९) एवं दो अलापक 'संसत्था' संवेगीके पास संवेगी और पासत्थावोंके पास पासत्था वननेवालोंका समझना.

(४०) ,, कचे पाणीसे 'संसक्त' पाणीसे भींजे हुवे ऐसे हाथोंसे भाजनमेंसे चाटुडी (कुरची) आदिसे आहार पाणी ग्रहन करे. ३ स्निग्ध (पूरा सूका न हो) सचित्त रजसे, सचित्त मट्टीसे, ओसके पाणीसे, नीमकसे, हरतालसे, मणसील (बोडल), पीली मट्टी, गेरुसे, खडीसे, हींगलुसे, अंजनसे, (सचित्त मट्टीका) लोद्रसे, कुकस, तत्कालीन आटासे, कन्दसे, मूलसे, अद्रकसे, पुष्पसे, कोष्ठकादि—एवं २१ पदार्थ सचित्त, जीव सहित हो, उसे हाथ खरडा हो, तथा संघट्टा होते हुवे आहार पाणी ग्रहन करे. ३ वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है. इसी माफिक २१ पदार्थोंसे भाजन खरडा हुवा हो उस भाजनसे आहार पाणी ग्रहन करे. ३ एवं ८१

(८२) ,, ग्रामरक्षक पटेलादिको अपने वश करे, अर्चन करे, अच्छा करे, अर्थी बने. एवं इसी उद्देशाके प्रारंभमें राजाके च्यार सूत्र कहा था. इसी माफिक समझना. एवं देशके रक्षकों का च्यार सूत्र. एवं सीमाके रक्षकोंका च्यार सूत्र. एवं राज्य रक्षकोंका च्यार सूत्र. एवं सर्व रक्षकोंका च्यार सूत्र. कुल २० सूत्र. भावना पूर्ववत्. १०१

(१०२) ,, अन्योन्य आपसमें एक साधु दुसरे साधुका पग दबावे-चांपे. एवं यावत् एक दुसरे साधुके ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे के शिरपर छत्र धारण करे, करावे. जो तीसरा उद्देशामें कहा है, इसी माफिक यहां भी कहना. परन्तु वहां पर

समान सूत्र साधुवोंके लीये है. और यहांपर विशेष सूत्र साधु आपसमें एक दुसरेके पांवादि दावे-चांपे.

भावार्थ—विशेष कारण विना स्वाध्याय ध्यान न करते हुवे दवाने-चंपानेवाला साधु प्रायश्चित्तका भागी होता है. अगर किसी प्रकारका कारण हो ता एक साधु दूसरे साधुकी वैयावच्च करनेसे महा निर्जरा होती है. ९६ सूत्र मिलानेसे १९७ सूत्र हुवे.

(१९८) „ उपधि प्रतिलेखनके अन्तमें लघुनीत, वडी-नीत परिठणेकी भूमिकाकों प्रतिलेखन न करे. ३

भावार्थ—रात्रि समय परिठनेका प्रयोजन होनेपर अगर दिनको न देखी भूमिकापर पैसाव आदि परिठनेसे अनेक त्रस स्थावर प्राणीयोंकी घात होती है.

(१९९) भूमिकाके भिन्न भिन्न तीन स्थान प्रतिलेखन न करे. ३ पहेले रात्रिमें, मध्य रात्रिमें, अन्त रात्रिमें परिठनेके लीये.

(१६०) „ स्वल्प भूमिकापर टटी पैसाव परठे. ३ स्वल्प भूमिका होनेसे जल्दीसे सुक नहीं सके. उसमें जीवोत्पत्ति होती है. वास्ते विशाल भूमिपर परठे.

(१६१) „ अविधिसे परठे. ३

(१६२) „ टटी पैसाव जाकर साफ न करे, न करावे, न करते हुवेको अच्छा समझे. उसे प्रायश्चित्त होता है.

(१६३) टटी पैसाव कर पाणीसे साफ न करके काष्ट, कंकरा, अंगुली तथा शीला आदिसे साफ करे, करावे, करनेको अच्छा समझे. वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है. अर्थात् मलकी शुद्धि जल हीसे होती है. इसी वास्ते ही जैन मुनि पाणीमें चुना

विगैरह डालके रात्रि समय जल रखते है. शायद रात्रिमें टटी पैसाबका काम पड जाये तो उस जलसे शुचि कर सके.*

(१६४) ,, टटी पैसाव जाके पाणीसे शुचि न करे, न करावे, न करते हुवेको अच्छा समझे. वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है.

(१६५) जिस जगहपर टटी पैसाव कीया है, उस टटी पैसावके उपर शुचि करे. ३

(१६६) जिस जगह टटी पैसाव कीया है, उससे अति दूर जाके शुचि करे. ३

(१६७) टटी पैसाव कर शुचिके लीये तीन पसली अर्थात् जरुरतसे अधिक पाणी खरच करे. ३

भावार्थ—टटी पैसावके लीये पेस्तर सुकी जगह हो, वह भी विशाल, निर्जिव देखना चाहिये. जहांपर टटी वैठा हो वहांसे कुछ पावोंसे सरक शुचि करना चाहिये. ताके समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति न हो. अशुचिका छांटा भी न लगे और जल्दी सुक भी जावे. यह विधि बादका कथन है.

(१६८) ,, प्रायश्चित्त संयुक्त साधु कभी शुद्धाचारी मुनिको कहे कि—हे आर्य! अपने दोनों साथहीमें गोचरी चले, साथहीमें अशनादि च्यार प्रकारका आहार लावे. फिर बादमें वह आहार भेट (विभाग कर) अलग अलग भोजन करेंगे. ऐसे वचनोंको शुद्धाचारी मुनि स्वीकार करे, करावे, करतेको अच्छा समझे, वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

---

* ढुंढीये और तेरापन्थी लोग रात्रि समय पाणी नहीं रखते है. तो इस पाठका पालन कैसे कर सक्ते होंगे? और रात्रिमें टटी पैसाव होनेपर क्या करते होंगे?

भावार्थ—सदाचारी जो दुराचारीकी संगत करेगा तो लोगोंमें अप्रतीतिका कारण होगा. इति.

उपर लिखे १६८ बोलोंसे कोइ भी बोल साधु साध्वी सेवन करेंगे तो लघु मासिक प्रायश्चित्तके भागी होंगे. प्रायश्चित्तकी विधि वीसवां उद्देशासे देखे.

इति श्री निशिथसूत्र—चौथा उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(५) श्री निशिथसूत्र—पांचवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' सचित्त वृक्षका मूल-वृक्षका मूल जमीनमें रहता है, कन्द (झडों) जमीनमें पसरती है. स्कन्ध—जमीनके उपर जिसको मूल पेड कहते है. उस मूल पेडसे चोतरफ च्यार हाथ जमीन सचित्त रहती है. कारण—उस जमीनके नीचे कन्द (झडो) पसरी हुइ हैं. यहांपर सचित्त वृक्षका मूल कहा है, यह उसी अपेक्षा है कि पसरी हुइ झडों तथा यह मूल उपरकी सचित्त भूमि उपर कायोत्सर्ग करना, संस्तारक विछाना और बैठना-यह कार्य करे. ३

(२) एवं वहां खडा होके एक वार वृक्षको अवलोकन करे तथा वार वार देखे. ३

(३) एवं यहांपर बैठके अशनादि च्यार आहार करे.

(४) एवं टटी पैसाब करे. ३

(५) एवं स्वाध्याय पाठ करे. ३

(६) एवं शिष्यादिको ज्ञान पढावे. ३

(७) एवं अनुज्ञा देवे. ३

(८) एवं आगमोंकी वाचना देवे. ३
(९) एवं आगमोंकी वाचना लेवे. ३
(१०) एवं पढे हुवे ज्ञानकी आवृत्ति करे. ३

भावार्थ—वहस्थान जीव सहित है. वहां बैठके कोइ भी कार्य नहीं करना चाहिये, अगर ऐसे सचित्त स्थानपर बैठके उक्त कार्य कोइ भी साधु करेगा, तो प्रायश्चित्तका भागी होगा.

(११) „ अपनी चद्दर अन्य तीर्थी तथा उन्होंके गृहस्थोंके पास सीलावे. ३

(१२) एवं अपनी चद्दर दीर्घ-लंबी अर्थात् परिमाणसे अधिक करे. ३

(१३) „ निंवके पत्ते, पोटल वृक्षके पत्ते, बिल वृक्षके पत्ते शीतळ पाणीसे, गरम पाणीसे धोके-प्रक्षालके साफ करके भोजन करे. ३ यह सूत्र कोइ विशेष अरणीयादिके प्रसंगका है.

(१४) „ कारणवशात् सरचीना रजोहरण लेनेका काम पडे.* मुनि गृहस्थोंको कहे कि—तुमारा रजोहरण हम रात्रिमें वापिस दे देंगे. ऐसा करार करनेपर रात्रिमें नहीं देवे. ३

(१५) एवं दिनका करार कर दिनको नहीं देवे. ३

भावार्थ—इसमें भाषाकी स्खलना होती है. मृषावाद लगता है. वास्ते मुनिको पेस्तरसे ऐसा समय करार ही नहीं करना चाहिये.

---

* कोइ तस्कर मुनिका रजोहरण चुराके ले गया, खबर करनेसे चोर कहता है कि—मैं दिनको लज्जाका मारा दे नहीं सक्ता. परन्तु रात्रिके समय आपका रजोहरण दे जाउंगा. ऐसी हालतमें गृहस्थोंसे करार कर मुनि रजोहरण लावे कि—तुमारा रजोहरण रात्रिमें देदुंगा.

(१६-१७) एवं दो सूत्र शय्यातर संबंधी रजोहरणका भी समझना. जैसा रजोहरणका च्यार सूत्र कहा है, इसी माफिक दांडो, लाठी, खापटी, वांसकी सूइका भी च्यार सूत्र समझना. एवं २१.

(२२) „ सरचीना शय्या, संस्तारक, गृहस्थोंको वापिस सुप्रत कर दीया, फिर उसपर बैठे आसन लगाये. ३ अगर बैठना हो तो दुसरी दफे आज्ञा लेना चाहिये. नहीं तो चोरी लगती है.

(२३) एवं शय्यातर संबंधी.

(२४) „ सण, उन, कपासकी लंबी दोरी भठे करे. ३

(२५) „ सचित्त (जीव सहित) काष्ठ, वांस, बेतादिका दांडा करे. ३

(२६) एवं धारण करे (रखे)

(२७) एवं उसे काममें लेवे.

भावार्थ—हरा झाडका जीव सहित दंडादि करने रखने और काममें लेनेकी मना है. इसे जीवविराधना होती है. इसी माफिक चित्रवाला दंडा करे, रखे, वापरे. २८-३०

इसी माफिक विचित्र अर्थात् रंग बेरंगा दंडा करे, रखे, वापरे. वह साधु प्रायश्चित्तका भागी होता है. ३१--३३

(३४) „ ग्राम नगर यावत् सन्निवेशकी नवीन स्थापना हुइ हो, वहांपर जाके साधु अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

भावार्थ—अगर कोइ संग्रामादिके कटकके लीये नया ग्रामादिककी स्थापना करते समय अभिषेक भोजन बनाते है, वहां मुनि जानेसे शुभाशुभका ख्याल तथा लोगोंको शंका होती है

कि—यह कोइ प्रतिपक्षीयोंकि तर्फसे तो न आया होगा? इत्यादि शंकाके स्थानोंको वर्जना चाहिये.

(३५) एवं लोहाके आगर, तंबाका, तरुवेके, सीसाके, चंदीके, सुवर्णके, रत्नोंके, वज्रके आगरकी नवीन स्थापना होती हो वहां जाके साधु अशनादि आहार ग्रहन करे. ३

(३६) ,, मुंहसे वजानेकी वीणा करे. ३
(३७) दांतोंसे वजानेकी वीणा करे. ३
(३८) होठोंसे वजानेकी वीणा करे. ३
(३९) नाकसे वजानेकी वीणा करे. ३
(४०) काखसे वजानेकी ,,
(४१) हाथोंसे वजानेकी ,,
(४२) नखसे वजानेकी ,,
(४३) पत्र वीणा ,,
(४४) पुष्प वीणा ,,
(४५) फल वीणा ,,
(४६) बीज वीणा ,,
(४७) हरी तृष्णादिकी वीणा करे. ३

इसी माफिक मुंह वीणा वजावे, यावत् हरि तृणादिकी वीणा वजावे के बारह सूत्र कहना. एवं ५९.

(६०) ,, इसके सिवाय किसी प्रकारकी वीणा जो अनुदय शब्द विषयकी उदीरणा करनेवाले वाजित्र वजावेगा, वह साधु प्रायश्चित्तका भागी होगा.

भावार्थ—स्वाध्याय ध्यानमें विघ्नकारक, प्रमादकी वृद्धि करनेवाला शब्दादि विषय है. इसीसे मुनियोंको हमेशां दूर ही रहना चाहिये.

(६१) ,, साधु साध्वीयोंके उद्देश (निमित्त) बनाये हुवे मकानमें साधु साध्वी प्रवेश करे. ३

(६२) एवं साधुके निमित्त मकान लींपाया हो, छप्परबंधी कराइ हो, नया दरवाजा कराया हो—उस मकानमें प्रवेश करे. ३

(६३) एवं अन्दरसे कोइ भी वस्तु साधुवोंके लीये बाहार निकाले, काजा, कचरा निकाल साफ करे, उस मकानमें मुनि प्रवेश करे, वहां ठहरे. ३

भावार्थ—जहां साधुवोंके लीये जीवादिका बाद हो ऐसा मकानमें साधु ठहरे, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(६४) ,, जिस साधुवोंके साथ अपना 'संभोग' आहारादि लेना देना नहीं है, और क्षांत्यादि गुण तथा समाचारी मिलती नहीं है, उसको संभोग करनेका कहे. ३

(६५) ,, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण अच्छा मजबुत बहुतकाल चलने योग्य है. उसको फाडतोड टुकडे कर परठे, परठावे. ३

(६६) एवं तुंबाका पात्र, काष्ठका पात्र, मट्टीका पात्र मजबुत रखने योग्य, बहुत काल चलने योग्यको तोडफोड परठे. ३

(६७) एवं दंडा, लट्ठी, खापटी, वांससूचि, चलने योग्यको परठे. ३

भावार्थ—किसी ग्रामादिमें सामान्य वस्तु मिली हो, और बडे नगरमें वह ही वस्तु अच्छी मिलती हो, तब पुद्गलानंदी विचार करे—इसको तोडफोडके परठ दे, और अच्छी दुसरी वस्तु याच ले—इत्यादि परन्तु ऐसा करनेवाले साधुवोंको निर्दय कहा है. वह प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(६८) ,, परिमाणसे अधिक 'रजोहरण' अर्थात् चौवीश अंगुलकी दंडी और आठ अंगुलकी दशीयों एवं वत्रीश अंगुलका रजोहरणसे अधिक रखे, दुसरोंसे रखावे, अन्य रखते हुवेको अच्छा समझे, अथवा सहायता देवे. *

(६९) ,, रजोहरणकी दशीयोंको अति सुक्षम (वारीक) करे. ३ प्रथम तो करणेमें प्रमाद वढता है. और उसकी अन्दर जीवादि फँस जानेसे विराधना भी होती है.

(७०) रजोहरणकी दशीयोंपर एकभी वन्धन लगावे. ३

(७१) एवं ओघारीयामें दंडी और दशीयों वन्धनके लीये तीन वन्धसे ज्यादा वन्धन लगावे. ३

(७२) एवं रजोहरणको अविधिसे वन्धे. नीचा उंचा, शिथिल, सख्त इत्यादि. ३

(७३) एवं रजोहरणको काष्टकी भारीके माफिक विचमें वन्ध करे. जिससे पूर्ण तोरपर काजा नीकाला नहीं जावे. जीवोंकी यतना भी पूर्ण न हो सके इत्यादि.

(७४) ,, रजोहरणको शिरके नीचे (ओशीकाकी जगह) धरे. ३

(७५) ,, वहु मूल्यवाले तथा वर्णादिकर संयुक्त रजोहरण रखे. ३ चौरादिका भय तथा ममत्व भावकी वृद्धि होती है.

(७६) ,, रजोहरणको अति दूर रखे तथा रजोहरण विगर इधर उधर गमनागमन करे. ३

(७७) ,, रजोहरण उपर वैठे. ३ कारण रजोहरणको शास्त्रकारोंने धर्मध्वज कहा है. गृहस्थोंको पूजने योग्य है.

---

* ढुंढीये लोग इस नियमका पालन कैसे करते होंगे ? कारणकि—दो दो हाथके लंबे रजोहरण रखते है. इस वीरवाणीपर कुछ विचार करना चाहिये.

(७८) ,, रजोहरण उपर सुवे, अर्थात् रजोहरणको वेअदबीसे रखे, रखावे, रखतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—मोक्षमार्ग साधनेमें मुनिपद प्रधान माना गया है. मुनिपदकी पहेचान, मुनि के वेषसे होती है. मुनिवेषमें रजोहरण, मुखवस्त्रिका मुख्य है. इसका बहुमान करनेसे मुनिपदका बहुमान होता है. इसकी वेअदबी करनेसे मुनिपदकी वेअदबी होती है, वह जीव दुर्लभबोधी होता है. भवान्तरमें उसको रजोहरण मुखवस्त्रिका मिलना दुर्लभ होगा. वास्ते इसका आदर, सत्कार, विनय, भक्ति करना भव्यात्मावोंका मुख्य कर्तव्य है.

उपर लिखे ७८ बोलोंसे कोइ भी बोल सेवन करनेवाले मुनियोंको लघु मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—पांचवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(६—७) श्री निशिथसूत्र—छट्टा—सातवां उद्देशा.

शास्त्रकारोंने कर्मोकी विचित्र गति बतलाइ है. जिसमें भी मोहनीय कर्मका तो रंग ढंग कुछ अजब तरहका ही बतलाया है. बडे बडे सत्वधारी जो आत्मकल्याणकी श्रेणिपर चढते हुवेको भी मोहनीय कर्म नीचे गिरा देता है. जैसे आर्द्रकुमार, अरणिकमुनि, नंदिषेण, कंडरीकादि.

उंचा चढना और नीचा गिरना—इसमें मुख्य कारण संगतका है. सत्संग करनेसे जीव उच श्रेणीपर चढता है, कुसंगत करनेसे जीव नीचा गिरता है सुसंगत और कुसंगत—दोनोंका स्वरूपको

सम्यक्प्रकारसे जानना यह ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम है. जाननेके बादमें कुसंगतका त्याग करना और सत्संगका परिचय करना यह मोहनीय कर्मका क्षयोपशम है. इस जगह शास्त्रकारोंने कुसंगतके कारणको जानके परित्याग करणेका ही निर्देश कीया हे.

अगर दीर्घकालकी वासनासे वासित मुनि अपनी आत्मरमणता करते हुवे के परिणाम कभी गिर पडे तथा अकृत्य कार्य करे, उसको भी प्रायश्चित्त ले अपनी आत्माको निर्मल बनानेका प्रयत्न इस छठे और सातवे उद्देशामें बतलाया गया है. जिसको देखना हो वह गुरुगमता पूर्वक धारण कीये हुवे ज्ञानवाले महात्मावोंसे सुने. इस दोनों उद्देशोंकी भाषा करणी इस वास्ते ही मुलतवी रख गइ है. इति ६-७

इस दोनों उद्देशोंके बोलोंको सेवन करनेवाले साधु साध्वीयोंको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा.

इति श्री लघुनिशिथ सूत्रका छठा सातवां उद्देशा.

---

(८) श्री निशिथसूत्रका आठवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' मुसाफिरखाना, उद्यान, गृहस्थोंका घर यावत् तापसोंके आश्रम इतने स्थानोंमें मुनि अकेली स्त्री के साथ विहार करे; स्वाध्याय करे अशनादि च्यार प्रकारका आहार करे, टटी पैसाब जावे, और भी कोइ निष्ठुर विषय विकार संबंधी कथा वार्ता करे. ३

(२) एवं उद्यान, उद्यानके घर (बंगला), उद्यानकी शाला, निज्जाण, घर—शालामें अकेला साधु अकेली स्त्रीके साथ पूर्वोक्त कार्य करे. ३

(३) ग्रामादिके कोट, अट्टाली, आठ हाथ परिमाण रस्ता, बुरजों, गढ, दरवाजादि स्थानोंमें अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ उक्त कार्यों करे. ३

(४) पाणीके स्थान तलाव, कुँवे, नदीपर, पाणी लानेके रहस्तेपर, पाणी आनेकी नेहरमें, पाणीका तीरपर, पाणीके उंच स्थानके मकानमें अकेली स्त्रीसे उक्त कार्यो करे. ३

(५) शून्य घर, शून्य शाला, भग्न घर, भग्नशाला, कुडाघर, कोष्ठागार आदि स्थानोंमे अकेली स्त्री साथ उक्त कार्यों करे. ३

(६) तृणघर, तृणशाला, तुसोंके घर, तुसोंकीशाला, भुसाका घर, भुंसाकी शालामें--अकेली स्त्रीके साथ उक्त कार्यों करे. ३

(७) रथशाला, रथघर, युगपात (मैना) की शाला, घरादिमें अकेली स्त्रीके साथ उक्त कार्यों करे. ३

(८) किरयाणाकी शाला, घर, बरतनोंकी शाला-घरमें अकेली स्त्री के साथ उक्त कार्यों करे. ३

(९) बैलोंकी शाला-घर, तथा महा कुटुंबवालोंके विलास मकानादिमें अकेला स्त्री के साथ उक्त कार्यों करे. ३

भावार्थ—किसी स्थानपर भी अकेली स्त्री के साथ मुनि कथा वार्त्ता करेगा, तो लोगोंको अविश्वास होगा, मनोवृत्ति मलिन होगी, इत्यादि अनेक दोषोंकी उत्पत्तिका संभव है. वास्ते शास्त्रकारोंने मना कीया है.

(१०) रात्रिके समय तथा विकाल संध्या (श्याम) समय अनेक स्त्रीयोंकी अन्दर, स्त्रीयोंसे संसक्त, स्त्रीयोंके परिवारसे प्रवृत्त होके अपरिमित कथा कहे. ३

भावार्थ—दिनको भी स्त्रीयोंका परिचय करना मना है, तो

रात्रिका कहेना ही क्या? नीतिकारोंने भी सुशील वहनोंको रात्रि समय अपने घरसे वाहार जाना मना कीया है. ढुंढीये और तेरापन्थी साधु रात्रिमें व्याख्यानके लिये सैंकडो स्रीयोंको आमन्त्रण कर दुराचारको क्यों वढाते है?

(११) „ स्वगच्छ तथा परगच्छकी साध्वीके साथ ग्रामानुग्राम विहार करते कवी आप आगे, कवी साध्वी आगे चले जाने पर आप चितारुप समुद्रमें गिरा हुवा आर्त्तध्यान करता विहार करे तथा उक्त कार्यो करते रहे. ३ यह ११ सूत्रोंमें जैसे मुनियोंके लीये स्रीयोंके परिचयका निषेध वतलाया है, इसी माफिक साध्वीयोंको पुरुषोंका परिचय नहीं करना चाहिये.

(१२) „ साधु साध्वीयोंके संसार संवंधी स्वजन हो चाहे अस्वजन हो, श्रावक हो चाहे अश्रावक हो, परंतु साधुके उपाश्रय आधीरात तथा संपूर्ण रात्रि उस गृहस्थोंको उपाश्रयमें रखे, रहने देवे. ३

(१३) एवं अगर गृहस्थ अपनेही दिलसे वहां रहा हो उसे साधु निषेध न करे, अनेरोंसे निषेध न करावे, निषेध न करते हुवे को अच्छा समझे वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

भावार्थ—रात्रिमें गृहस्थोंके रहनेसे परिचय वढता है, संघट्टा होता है, साधुवोंके मल मूत्र समय कदाच उन लोगोंको दुर्गंध होवे, स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होवे-इत्यादि दोषोंका संभव है. वास्ते गृहस्थोंको अपने पासमें रात्रिभर नहीं रखना. अगर विशाल मकानमें अपनी निश्रायमें एकाद कमरा कीया हो, अपने उपभोगमें आता हो, उस मकानकी यह वात है. शेष मकानमें श्रावक लोग सामायिक, पौषध तथा धर्मजागरणा कर भी सकते हैं.

(१४) अगर कोइ ऐसा भी अवसर आ जावे, अथवा निषेध

करने पर भी गृहस्थ नहीं जाता हो तो उसकी निश्रायसे मकानसे बाहार निकलना तथा प्रवेश करना नहीं कल्पै. अगर ऐसा करे तो मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(१५) ,, राजा—(प्रधान, पुरोहित, हाकिम, कोटवाल, और नगरशेठ संयुक्त) जाति, कुल, उत्तम ऐसा क्षत्रिय जातिका राजा, जिसके राज्याभिषेकके समय अपने गोत्रज्ञोंको भोजन कराने निमित्त तथा किसी प्रकारके महोत्सव निमित्त अशनादि च्यार प्रकारका आहार निपज्ञाया (तैयार कराया), उस अशनादि च्यार प्रकारका आहारसे साधु साध्वी आहारादि ग्रहन करे, कराये, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—द्रव्यसे वहां जानेसे लघुता होवे, लोलुपता बढे, बहुतसे भिक्षुक एकत्र होनेसे वस्त्र, पात्र, शरीरकी विराधना होवे, भावसे अपना आचारमें खलल पहुंचे. शुभाशुभ होनेसे साधुयों पर अभावका कारण होवे इत्यादि अनेक दोषोंका संभव है. वास्ते मुनि ऐसा आहारादि ग्रहन न करे. अगर कोइ आज्ञा उल्लंघन करेगा, वह इस प्रायश्चित्तका भागी होगा.

(१६) एवं राजाकी उत्तरशाला अर्थात् बेठनेकी कचेरी तथा अन्दरका घरकी अन्दरसे अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

(१७) अश्वशाला, हाथीशाला, विचार करनेकी शाला, गुप्त सलाह करनेकी शाला, रहस्यकी वार्ता करनेकी शाला, मथुन कर्म करनेकी शाला, उक्त स्थानोंमे जाते हुवेका अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

(१८) ,, संग्रह कीया हुवा, संग्रह करते हुए पक्वानादि, तथा मेया मिष्टान्नादि और दुध, दहीं, मक्खन, घृत, गुड, खांड, संकर, मिश्री, और भी भोजनकी जाति ग्रहन करे. ३

(१९) ,, खातों पीतों बचा हुवा आहार देतों, भेटतों, बचा हुवा आहार, नाखतों बचा हुवा आहार, अन्य तीर्थीयोंके निमित्त, कृपणोंके निमित्त, गरीब लोगोंके निमित्त—ऐसा आहारादि ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. भावना पूर्ववत् पंद्रहवां सूत्रकी माफिक समझना.

उपर लिखे १९ बोलोसे कोइ भी बोल, साधु साध्वी सेवन करेगा, उसको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा, प्रायश्चित्त विधि देखो बीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—आठवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(९) श्री निशिथसूत्रका नौवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' राजपिंड (अशनादि आहार) ग्रहन करे, ग्रहन करावे ग्रहन करते हुवेको अच्छा समझे.

भावार्थ—सेनापति, प्रधान, पुरोहित, नगरशेठ और सार्थवाह—इस पांच अंग संयुक्तको राजा कहा जाता हैं.

(१) उन्होंके राज्याभिषेक समयका आहार लेनेसे शुभाशुभ होनेमें साधुवोंका निमित्त कारण रहता है.

(२) राजाका बलिष्ठ आहार विकारक होता है, और राजाका आहार बचे, उसमें पंडा लोगोंका विभाग होता है. वह आहार लेनेसे उन लोगोंको अंतरायका कारण होता है. एवं राजपिंड भोगवे. ३

(३) ,, राजाके अन्तेउर (जनानागृह) में प्रवेश करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—साधु हमेशां मोहसे विरक्त होता है. वहां जानेपर रुप, लावण्य, शृंगार तथा मोहक पदार्थ देखनेसे मोहकी वृद्धि होती है. प्रश्न, ज्योतिष, मंत्रादि पूछनेपर साधु न बतानेसे कोपायमान होवे, राजादिको शंका होवे-इत्यादि दोषोंका संभव है.

(४) ,, साधु, राजा के अन्तेउर-गृहद्वार जाके दरवानसे कहे कि—हे आयुष्मन्! मुझे राजाका अन्तेउरमें जाना नहीं कल्पे. तुम हमारा पात्र लेके जाओ, अन्दरसे हमे भिक्षा ला दो. ऐसा वचन बोले. ३

(५) इसी माफिक दरवान बोले कि—हे साधु! तुमको राजाका अंतेउरमें जाना नहीं कल्पे. आपका पात्र मुझे दो, मैं आपको अन्दरसे भिक्षा लादुं. ऐसा वचन साधु सुने, सुनावे, सुनतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—विगर देखे आहार लेना नहीं कल्पै. सामने लाया आहार भी मुनिको लेना नहीं कल्पै.

(६) ,, राजा जो उत्तम जातिवाला है. उनके राज्याभिषेक समय भोजन निष्पन्न हुवा है, जिसमें द्वारपालोंका भाग है, पशु, पक्षीका भाग, नोकरोंका भाग, देवताका भाग, दास दासीयोंका भाग, अश्वोंका भाग, हाथीयोंका भाग, अटवी निवासीयोंका भाग, दुर्भिक्ष-जिसको भिक्षा न मिलती हो, दुश्कालादिके गरीबोंका भाग, ग्लान—बमारोंका भाग, वाद्लादि वरसातसे भिक्षाको न जा सके, पाहुणा आया हुवा उन्होंका भाग, इन्होंके सिवाय भी केइ जीवोंका भागवाला आहार है. उसे ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—उक्त जीवोंको अन्तराय पडे जिससे साधुयोंसे द्वेष करे, अप्रीतिका कारण होवे इत्यादि.

(७) " राजाका राज्याभिषेक हुवे, उसके धान्य-कोठारकी शाला, धन-खज़ानाकी शाला, दुध, दहीं, घृतादि स्थापन करनेकी शाला, राजाके पीने योग्य पाणीकी शाला, राजाके धारण करने योग्य वस्त्र, आभूषणकी शाला, इस छे शालाओंकी याचना न करी हो, पूछा न हो, गवेषणा न करी हो, परन्तु च्यार पांच रोज गृहस्थोंके घर गौचरीके लीये प्रवेश करे. ३

भावार्थ-उक्त छे शालाओंकी याचना कीये विना गौचरी जावे ता कदाच अनजानपणे उसी शालाओंमें चला जावे, तब राजादिको अप्रतीतिका कारण होता है. उस समय विषादिका प्रयोग हुवा हो तो साधुका अविश्वास होता है. इस वास्ते शास्त्रकारोंने प्रथमसे ही मुनियोंको सावचेत कीया है. ताके किसी प्रकारसे दोषका संभव ही न रहे.

(८) ,, राजा यावत् नगरसे बाहार जाता हुवा तथा नगरमें प्रवेश करते हुवेको देखनेको जानेके लीये एक कदम भरनेका मनसे अभिलाषा करे, करावे, करते हुवेको अच्छा समझे.

(९) एवं स्त्रीयों सर्वांग विभूषित, शृंगार कर आती जातीको नेत्रोंसे देखने निमित्त एक कदम भरनेकी अभिलाषा करे. ३

(१०) ,, राजादिक मृगादिका शिकार गया, वहांपर अशनादि च्यार प्रकारका आहार बनाया उस आहारसे आप ग्रहन करे.

(११) ,, राजाके कोइ भेटणा-निजराणा आया है, उस समय राजसभा एकत्र हुइ है, मसलत कर रहे है, वह सभा विर्जन नहीं हुइ, विभाग नहीं पडा. अगर कोइ नवी जुनी होनेवाली है, उस हालतमें साधु आहार पाणीके लीये गौचरी जावे, अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

(१२) जहांपर राजा ठहरे है, उसकी नजदीकमें, आसपासमें साधु ठहर स्वाध्याय करे, अशनादि च्यार आहार करे, लघुनात वडीनीत परठे, औरभी कोइ अनार्य प्रयोग कथा कहे. ३

(१३) „ राजा बाहार यात्रा निमित्त गया हुवाका अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

(१४) एवं यात्रासे आते हुवेका आहार लेवे. ३

(१५-१६) एवं दो सूत्र नदीयात्रा आतों जातोंका.

(१७-१८) एवं दो सूत्र गिरियात्राका.

(१९) एवं क्षत्रिय राजाका महा अभिषेक होते समय गमनागमन करे, करावे. ३

(२०) एवं चंपानगरी, मथुरा, वनारसी श्रावस्ति, साकेतपुर, कपिलपुर, कौशांबी मिथिला, हस्तिनापुर, और राजगृह-इस नगरोंमें अगर राज्याभिषेक चलता हो, उस समय साधु दोय वार तीनवार गमनागमन करे, करावे, करतेकों अच्छा समझे.

भावार्थ—सामान्य साधुवोंको पेसे समय गमनागमन नहीं करना चाहिये. कारण—शुभाशुभका कारण हो तथा राजादिको वादी प्रतिवादीके विषय शक उत्पन्न हुवे. इसलीये मना है.

(२१) „ राज्याभिषेकका समय क्षत्रियोंके लीये बनाया भोजन, राजावोंके लीये, अन्य देशोंके राजावोंके लीये, नोकरोंके लीये, राजवंशीयोंके लीये, बनाया हुवा आहार मुनि ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. कारण—यह भी राजपिंड ही है.

(२२) „ राज्याभिषेक समय, जो नट--स्वयं नाचनेवाले, नटवे-परको नचानेवाले, रसीपर नाचनेवाले,झालीपर कूदनेवाले,

वांसपर खेलनेवाले, मल्ल--मुष्टियुद्ध करनेवाले, भांड--कुचेष्टा करनेवाले, कथा कहनेवाले, पावडे जांड जोड गानेवाले, वांदरेकी माफिक कूदनेवाले, खेल तमासा करनेवाले, छत्र धरनेवाले— इन्होंके लीये अशनादि आहार वनाया हो, उस आहारसे साधु ग्रहन करे. ३ कारण—अन्तरायका कारण होता है.

(२३) ,, राज्याभिषेक समय, जो अश्व पालनेवाले, हस्ती पालनेवाले, महिष पालनेवाले, वृषभ पालनेवाले, एवं सिंह, व्याघ्र, छाली मृग, श्वान, सूवर, भेड, कुकडा, तीतर, वटेवर, लावग, चल्ले, हंस, मयूर, शुकादि पोषण करनेवाले, इन्हीके मर्दन करनेवाले, तथा इसिको फिराने खीलानेवाले, इन्होंके लीये च्यार प्रकारका आहार निष्पन्न कीया हुवा आहार साधु ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है.

(२४) ,, राज्याभिषेक समय, जो सार्थवाहकके लीये, पग चंपी करनेवालोंके लीये, मर्दन करनेवालोंके लीये, तैलादिका मालीस करनेवालोंके लीये, स्नान मज्जन करानेवालोंके लीये, शृंगारसजानेवालोंके लीये, चम्मर, छत्र, वस्त्र, भूषण धारण करानेवालोंके लीये, दीपक, तरवार, धनुष्य, भालादि धारण करनेवालोंके लीये, अशनादि च्यार प्रकारका आहार वनाया, उस आहारसे मुनि आहार ग्रहन करे. भावना पूर्ववत्.

(२५) ,, राज्याभिषेक समय, जो वृद्ध पुरुषोंके लीये, कृत नपुंसकोंके लीये, कंचुकी पुरुषोंके लीये, द्वारपालोंके लीये, दंड धारकोंके लीये वनाया आहार साधु ग्रहन करे. ३

(२६) ,, राज्याभिषेक समयजो कुब्ज दासीयोंके लीये, यावत् पारसदेशकी दासीयोंके लीये वनाया हुवा आहार, मुनि ग्रहन करे. ३ भावना पूर्ववत् अन्तराय होता है.

इस २६ बोलोंसे कोइ भी बोल साधु साध्वीयों सेवन करे, करावे, करतेको अनुमोदन करे, अर्थात् अच्छा समझे. उस साधु साध्वीयोंको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित विधि देखो बीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशियसूत्र—नौवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(१०) श्री निशिथसूत्र—दशवा उद्देशाः

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' अपने आचार्य भगवानको तथा रत्नत्रयादिसे वृद्ध मुनियोंको कठोर (स्नेह रहित) वचन बोले. ३

(२) ,, अपने आचार्य भगवान् तथा रत्नत्रयादिसे वृद्ध मुनियोंको कर्कश (मर्मभेदी) वचन बोले. ३

(३) एवं कठोर (कर्कश) कारी वचन बोले. ३

(४) एवं आचार्य भगवान्की आशातना करे. ३

भावार्थ—आशातना मिथ्यात्वका कारण है.

(५) ,, अनन्तकाय संयुक्त आहार करे. ३

भावार्थ—वस्तु अचित्त है, परन्तु नील, फूल, कन्द, मुलादिसे प्रतिबद्ध है. ऐसा आहार करनेवाला प्रायश्चितका भागी होता है.

(६) ,, आदाकर्मी आहार (साधुके लीये ही बनाया गया हो) को ग्रहन करे. ३

(७) ,, गतकालमें लाभालाभ सुख दुःख हुवा. उसका निमित्त प्रकाशे. ३

(८) एवं वर्त्तमान कालका.

(९) एवं अनागत कालका निमित्त कहे, प्रकाश करे.

भावार्थ—निमित्त प्रकाश करनेसे स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होवे, राग द्वेषकी वृद्धि होवे, अप्रतीतिका कारण-इत्यादि दोषोंका संभव है.

(१०) ,, अन्य किसी आचार्यका शिष्यको भरममें (भ्रममें) डाल देवे, चित्तको व्यग्र कर अपनी तर्फ रखनेकी कोशीश करे. ३

(११) ,, एवं प्रशिष्यको भरम (भ्रम) में डाल, दिशामुग्ध बनाके अपने साथ ले जावे तथा वस्त्र, पात्र, ज्ञानसूत्रादिका लोभ दे, भरमाके ले जावे. ३

(१२) ,, किसी आचार्यके पास कोइ गृहस्थ दीक्षा लेता हो, उसको आचार्यजीका अवगुणवाद बोल (यह तो लघु है, हीनाचारी है, अज्ञान है-इत्यादि) उस दीक्षा लेनेवालाका चित्त अपनी तर्फ आकर्षित करे. ३

(१३) एवं एक आचार्यसे अरुचि कराके दुसरोंके साथ भेजवा दे.

भावार्थ—ऐसा अकृत्य कार्य करनेसे तीसरा महाव्रतका भंग होता है. साधुवोंकी प्रतीति नहीं रहती है. एक ऐसा कार्य करनेसे दुसरा भी देखादेखी तथा द्वेषके मारे करेंगा, तो साधुमर्यादा तथा तीर्थंकरोंके मार्गका भंग होगा.

(१४) ,, साधु साध्वीयोंके आपसमें क्लेश हो गया हो तो उस क्लेशका कारण प्रगट कीये विना, आलोचना कीया विगर, प्रायश्चित लीये विगर, खमतखामणा कीया विगर तीन रात्रिके उपरांत रहे तथा साथमें भोजन करे. ३

भावार्थ—विगर खमतखामणा रहेगा, तो कारण पाके फिर भी उस क्लेशकी उदीरणा होगा.

(१५) „ क्लेश करके अन्य आचार्य पाससे आये हुवेको तीन रात्रिसे अधिक अपने पास रखे. ३

भावार्थ—आये हुवे साधुको मधुर वचनोंसे समझावे कि-हे भद्र! तुमको तो जहां जावेगा, वहां ही संयम पालना है, तो फिर अपने आचार्यको ही क्यों छोडते हो, वापिस जावे, आचार्य महाराजकी वैयावच्च, विनय, भक्ति कर प्रसन्न करो. इत्यादि हित शिक्षा दे, क्लेशसे उपशान्त बनाके वापिस उसी आचार्यके पास भेजना. ऐसा कारणसे तीन रात्रि रख सक्ते है. ज्यादा रखे तो प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(१६) „ लघु प्रायश्चित्तवालेको गुरु प्रायश्चित कहै. ३ (द्वेषके कारणसे).

(१७) एवं गुरु प्रायश्चित्तवालेको लघु प्रायश्चित्त कहै. ३ (रागके कारणसे)

(१८) एवं लघु प्रायश्चित्तवालेको गुरु प्रायश्चित्त देवे. ३

(१९) गुरु प्रायश्चित्तवालेको लघु प्रायश्चित्त देवे. ३ भावना पूर्ववत्.

(२०) „ लघु प्रायश्चित्त सेवन कीया हुवा साधुके साथ आहार पाणी करे. ३

(२१) „ लघु प्रायश्चित्तका स्थान सेवन कीया है, उसे आचार्य सुना है कि—अमुक साधुने लघु प्रायश्चित्त सेवन कीया है. फिर उसके साथ आहार पाणी करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(२२) ,, एवं सुनलेने पर तथा स्वयं जानलेनेपर आलोचना करने योग्य प्रायश्चित्तकी आलोचना नहीं करे. यह हेतु उसके साथ आहारपाणी करे. ३

(२३) संकल्प—अमुक दिन आलोचना कर प्रायश्चित्त लेवेंगा. परन्तु जबतक आलोचना कर प्रायश्चित्त नहीं लीया है, वहांतक उसे दोषित साधुके साथ आहार पाणी करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. जैसे च्यार सूत्र लघु प्रायश्चित्त आश्रित कहा है, इसी माफिक च्यार सूत्र (२४-२५-२६-२७) गुरुप्रायश्चित्त आश्रित कहना. इसी माफिक च्यार सूत्र (२८-२९-३०-३१) लघु और गुरु दोनों सामेलका कहना. ×

(३२) ,, लघु प्रायश्चित्त तथा गुरु प्रायश्चित्त, लघु प्रायश्चित्तका हेतु, गुरु प्रायश्चित्तका हेतु, लघु प्रायश्चित्तका संकल्प, गुरु प्रायश्चित्तका संकल्प. सुनके, हृदयमें धारके फिर भी उक्त प्रायश्चित्त संयुक्त साधुके साथ एक मंडलपर भोजन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—कोइ साधु प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना नहीं करते है. उसके साथ दुसरे साधु आहार पाणी करते हो, तो उसे एक कीस्मकी सहायता मिलती है. दुसरी दफे दोष सेवनमें शंका नहीं रहेती है. दुसरे साधु भी स्वच्छंदी हो प्रायश्चित्त सेवन करनेमें शंका नहीं लावेंगा तथा दोषित साधुवोंके साथ भोजन करनेवालोंमें एकांश व्याप्त होगा, इत्यादि. इसी वास्ते

× एक प्राचीन प्रतिमें गुरु प्रायश्चित और लघु प्रायश्चितसे भी च्यार सूत्र लिखा हुवा है. विकल्पके संबंधसे यह भी च्यार विकल्प हो सक्ते है. तथा लघु प्रा०का हेतु, गुरु प्रा० संकल्प, लघु प्रा० संकल्प, गुरु प्रा० हेतु. लघु गुरु दोनोंका हेतु तथा दोनोंका संकल्प यह भी च्यार सूत्र है.

दोषित साधुवोंको हितबुद्धिसे आलोचना करवाके ही उन्होंके साथ आलाप संलाप करनेकी हो शास्त्रकारोंकी आज्ञा है.

(३३) ,, सूर्योदय होनेके बाद तथा सूर्य अस्त होने के पहला मुनियोंकी भिक्षावृत्ति है. साधु नीरोगी है, और सूर्योदय होनेमें तथा अस्त न होनेमें कुच्छ भी शंका नहीं है. उस समय भिक्षा ग्रहन कर, लायके भोजन करनेको बैठा, तथा भोजन करते वखत स्वयं अपनी मतिसे तथा दुसरे गृहस्थोंके वचन श्रवण करनेसे ख्याल हुवा कि—यह भिक्षा सूर्योदय पहला तथा सूर्य अस्त होनेके बाद में ग्रहन की गइ है. (अति बादल तथा पर्वतादिकी व्याघातसे) ऐसी शंका होनेपर मुंहका भोजन थुंकके साफ करे, पात्राका पात्रमें रखे, हाथका हाथमें रखे. अर्थात् उस सब आहारको एकान्त निर्जीव भूमिपर विधिपूर्वक परठे, तो भगवानकी आज्ञाका अतिक्रम न हुवे, (परिणाम विशुद्ध है). अगर शंका होनेपर भी आप भोगवे तथा अन्य किसी साधुवोंको देवे, तो वह मुनि, रात्रिभोजनके दोषका भागी होता है. उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त देना चाहिये.

(३४) ,, इसी माफिक साधु निरोगी है, परन्तु सूर्योदय होने में तथा अस्त होनेमें शंका है, यह दो सूत्र निरोगीका कहा. इसी माफिक दो सूत्र रोगी साधुवोंका भी समझना. (३५-३६)

भावार्थ—किसी आचार्यादिकी वैयावच्चमें शीघ्रतासे जाना पडे, छोटे गामोंमें दिनभर भिक्षाका योग न बना, दिवसके अन्तमें किसी नगरमें पहुंचे, उस समय बादल बहुत है, तथा पर्वतकी व्याघात होनेसे ऐसा मालुम होता है कि—अबी दिन होगा तथा पहले दिन भिक्षाका योग नहीं बना. दुसरे दिन सूर्योदय होते ही क्षुधा उपशमानेके लीये तथा विशेष पिपासा होनेसे, छास

आदि लेनेका काम पडे, उस अपेक्षा यह विधि बतलाइ है. सामान्यतासे तो साधु दुसरी तीसरी पौरुषीमें ही भिक्षा करते हैं.

(३७) ,, कोइ साधु साध्वीयोंको रात्रि समय तथा वैकाल (प्रतिक्रमणका वखत) समय अगर आहार पाणी संयुक्त उगालो (गुचलको) आवे, उसको निर्जीव भूमिपर परठ देनेसे आज्ञाका भंग नहीं होता है. अगर पीछे भक्षण करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(३८) ,, किसी वीमार साधुको सुनके उसकी गवेषणा न करे. ३

(३९) अमुक गाममें साधु वीमार है, ऐसा सुन आप दुसरे रहस्तेसे चला जावे, जाने कि—मैं उस गाममें जाउंगा तो वीमार साधुकी मुझे वैयावच्च करना पडेगा.

भावार्थ—ऐसा करनेसे निर्दयता होती है. साधुकी वैयावच्च करनेमें महान् लाभ है. साधुकी वैयावच्च साधु न करेंगा, तो दुसरा कौन करेंगा ?

(४०) ,, कोइ साधु वीमार साधुके लीये दवाइ याचनेको गृहस्थोंके वहां गया, परन्तु वह दवाइ न मिली तो उस साधुने आचार्यादि वृद्धोंको कह देना चाहिये कि—मेरे अन्तरायका उदय है कि इस वीमार मुनिके योग्य दवाइ मुझे न मिली. अगर वापिस आयके ऐसा न कहे. वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है. कारण-आचार्यादि तो उस मुनिके विश्वासपर वैठे हैं.

(४१) ,, दवाइ न मिलनेपर साधु पश्चात्ताप न करे. जैसे—अहो ! मेरे कैसा अन्तराय कर्मका उदय हुवा है कि—इतनी याचना करनेपर भी इस वीमार साधुके योग्य दवाइ न मिली इत्यादि.

भावार्थ—जितनी दवाइ मिले, उतनी लाके बीमारको देना न मिलनेपर गवेषणा करना. गवेषणा करनेपर भी न मिले तो पश्चात्ताप करना. कारण बीमार साधुको यह शंका न हो कि—सब साधु प्रमाद करते है. मेरे लीये दवाइ लानेका उद्यम भी नहीं करते है.

(४२) ,, प्रथम वर्षाऋतु-श्रावण कृष्णप्रतिपदामें ग्रामानुग्राम विहार करे. ३

(४३) ,, अपर्युषणको पर्युषण करे. ३

(४४) पर्युषणको पर्युषण न करे.

भावार्थ—आषाढ चौमासी प्रतिक्रमणसे ५० दिन भाद्रपद शुक्लपंचमीको पर्युषण होता है. पर्युषण प्रतिक्रमण करनेसे ७० दिनोंसे कार्तिक चातुर्मासिक प्रतिक्रमण होता है अगर वर्तमान चतुर्मासमें अधिक मास भी हो, तो उसे काल चूलिका मानना चाहिये।

(४५) ,, पर्युषण (सांवत्सरिक) प्रतिक्रमण समय गौके बालो जितने केश (बाल) शिरपर रखे. ३

भावार्थ—मुनियोंका सांवत्सरिक प्रतिक्रमण पहला शिरका लोच करना चाहिये।

(४६) ,, पर्युषण—संवत्सरीके दिन इतर स्वल्प बिन्दु मात्र आहार करे. ३

भावार्थ—संवत्सरीके दिन शक्ति सहित साधुवोंको चौविहार उपवास करना चाहिये.

(४७) ,, अन्य तीर्थीयों तथा अन्य तीर्थीयोंके गृहस्थोंके साथ पर्युषण करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—जैसे जैन मुनियोंके पर्युषण होते है, इसी माफिक अन्य तीर्थी लोग भी अपनी ऋषि पंचमी आदि दिनकों मुकर कीया है. वह अन्यतीर्थी कहे कि—हे मुनि ! तुमारा पर्युषण हमको करावे और हमारा पर्युषण तुम करो. ऐसा करना साधु साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४८) ,, आषाढी चातुर्मासीके बाद साधु साध्वी वस्त्र, पात्र ग्रहन करे. ३

भावार्थ—जो वस्त्रादि लेना हो, वह आषाढ चातुर्मासी प्रतिक्रमण करनेके पेस्तर ही ग्रहन कर लेना. बाद में कार्तिक चातुर्मासी तक वस्त्र नहीं ले सक्ते है.+

उपर लिखे ४८ बोलोंसे कोइ भी बोल सेवन करनेवाले साधु साध्वीको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र-दशवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(११) श्री निशिथसूत्र—इग्यारवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' लोहाका पात्र करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(२) एवं लोहाका पात्राको रखे.

+ समवायांगसूत्र—"समणे भगवं महावीरे सवीसइ राइ मास वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसमेइ" अर्थात् आषाढ चातुर्मासीसे पचास दिन और कार्तिक चातुर्मासिके सीत्तर दिन पहला सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना साधुओंको कल्पे.

(३) एवं लोहाका पात्रमें भोजन करे तथा अन्य काममें लेवे. ३

(४) एवं तांबाका पात्र करे.

(५) धारे-रखे.

(६) भोगवे. ३

(७) एवं तरुवेका पात्र करे.

(८) धारे.

(९) भोगवे. ३ एवं तीन सूत्र सीसाके पात्रोंका १०-११-१२. एवं तीन सूत्र कांसीके पात्रोंका १३-१४-१५. एवं तीन सूत्र रुपाके पात्रोंका १६-१७-१८. एवं तीन सूत्र सुवर्णके पात्रोंका १९-२०-२१. एवं जातिरुप पात्र २४. एवं मणिपात्रोंके तीन सूत्र. २५-२६-२७. एवं तीन सूत्र कनकपात्रोंका २८-२९-३०. दांत पात्रोंके ३३. सींग पात्रोंके ३६. एवं वस्त्र पात्रोंके ३९. एवं चर्म पात्रोंके तीन सूत्र ४२. एवं पत्थर पात्रके तीन सूत्र ४५. एवं अंकररत्नोंके पात्रोंका तीन सूत्र ४८. एवं शंख पात्रोंके तीन सूत्र ५१. एवं वज्ररत्नों के पात्र करे, रखे, उपभोगमें लेवे. ३ इति ५४ सूत्र.

भावार्थ—मुनि पात्र रखते हैं. वह निर्ममत्व भावसे केवल संयमयात्रा निर्वाह करनेके लीये ही रखते है. उक्त पात्रो धातुके, ममत्वभाव वढानेवाले है. चौरादिका भय, संयम तथा आत्मघातके मुख्य कारण हैं. वास्ते उक्त पात्रोंकी मना करी हैं. जैसे ५४ सूत्रों उक्त पात्र निषेधके लीये कहा है, इसी माफिक ५४ सूत्र पात्रोंके बंधन करनेके निषेधका समझना. जैसे पात्रोंका लोहका बन्ध करे, लोहके बन्धनवाला पात्र रखे, लोहाका बन्धन वाला पात्र उपभोगमें लेवे यावत् वज्ररत्नों तकके सूत्र कहना. भावार्थ पूर्ववत्. १०८

(१०९) ,, पात्रा याचने निमित्त दोय कोश उपरांत गमन करे, गमन करावे, गमन करनेको अच्छा समझे. ३

(११०) एवं दोय कोश उपरांतसे सामने दोय कोशकी अन्दर लायके देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३

(१११) ,, श्रीजिनेश्वर देवोंने सूत्रधर्म (द्वादशांगरुप), चारित्रधर्म (पंचमहाव्रतरुप), इस धर्मका अवगुणवाद बोले, निंदा करे, अयश करे, अकीर्ति करे. ३

(११२) ,, अधर्म, मिथ्यात्व, यज्ञ, होम, ऋतुदान, पिंड-दान. इत्यादिकी प्रशंसा-तारीफ करे. ३

भावार्थ—धर्मकी निन्दा और अधर्मकी तारीफ करनेसे जीवोंकी श्रद्धा विपरीत हो जाती है. वह अपनी आत्मा और अनेक पर आत्मावोंको डुबाते हुवे और दुष्कर्म उपार्जन करते हैं.

(११३) ,, जो कोइ साधु साध्वी, जो अन्यतीर्थी तापसादि और गृहस्थ लोगोंके पावोंको मसले, चंपे, पुंजे. यावत् तीसरा उद्देशामें पावोंसे लगाके ग्रामानुग्राम विहार करते हुवेके शिरपर छत्र करनेतक ५६ सूत्र वहांपर साधु आश्रित है, यहांपर अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ आश्रित है. इति १६८ सूत्र हुवे.

(१६९) ,, साधु आप अन्धकारादि भयोत्पत्तिके स्थान जाके भय पामे.

(१७०) अन्य साधुवोंको भयोत्पत्तिके स्थान ले जाय के भयोत्पन्न करावे.

(१७१) स्वयं कुतूहलादि कर विस्मय पामे.

(१७२) अन्य साधुवोंको विस्मय उपजावे.

(१७३) स्वयं संयमधर्मसे विपरीत बने.

(१७४) अन्य साधुवोंको विपरीत बनावे, अर्थात् अपना स्वभाव संयममें रमणता करनेका है, इन्हसे विपरीत बने, हांसी टंटा, फिसादादि करे, करावे, करतेको सहायता देवे.

(१७५) ,, मुंहसे बजानेकी वीणा करे, करावे, करते हु-वेको सहायता देवे.

भावार्थ—भय, कुतूहल विपरीत होना, सब बालचेष्टा है, संयमको बाधाकारी है. वास्ते साधुवोंको पहलेसे ऐसा निमित्त कारणही नहीं रखना चाहिये. यह मोहनीय कर्मका उदय है. इसको बढानेसे बढता जावे, और कम करनेसे कमती हो जावे, वास्ते ऐसे अकृत्य कार्य करनेवालोंको प्रायश्चित्त बतलाया है.

(१७६) ,, दोय राजावोंका विरुद्ध पक्ष चल रहा है. उस समय साधु साध्वीयों वारवार गमनागमन करे. ३

भावार्थ—राजावोंको शंका होती है कि—यह कोइ परपक्ष-वाला साधुवेष धारण कर यहांका समाचार लेनेको आता होगा. तथा शुभाशुभका कारण होनेसे धर्मको—शासनको नुकशान होता है.

(१७७) ,, दिनका भोजन करनेवालोंका अवगुनवाद बोले. जैसे एक सूर्यमें दोय वार भोजन न करना इत्यादि.

(१७८) ,, रात्रिभोजनका गुणानुवाद बोले, जैसे रात्रि-भोजन करना बहुत अच्छा है. इत्यादि.

(१७९) ,, पहले दिन भोजन ग्रहन कर, दुसरे दिन दि-नको भोजन करे. तथा पहली पोरसीमें भिक्षा ग्रहण कर चौथी पोरसीमें भोजन करे. ३

(१८०) पर्व दिनको अशनादि च्यार आहार ग्रहन कर रात्रिमें भोजन करे. ३

(१८१) रात्रिमें अशनादि च्यार आहार ग्रहन कर दिनका भोजन करे. ३

(१८२) एवं रात्रिमें अशनादि च्यार आहार ग्रहन कर रात्रिमें भोजन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—रात्रिमें आहार ग्रहन करनेमें तथा रात्रिमें भोजन करनेमें सुक्ष्म जीवोंको विराधना होती है. तथा प्रथम पोरसीमें लाया आहार, चरम पोरसीमें भोगवनेसे कल्पातिक्रम दोष लगता है.

(१८३) ,, कोइ गाढागाढी कारण विगर अशनादि च्यार प्रकारका आहार, रात्रिमें वासी रखे, रखावे, रखतेको अच्छा समझे.

(१८४) अति कारणसे अशनादि च्यार आहार, रात्रिमें वासी रखा हुवाको दुसरे दिन बिन्दुमात्र स्वयं भोगवे, अन्य साधुको देवे. ३

भावार्थ-कवी गोचरीमें आहार अधिक आगया, तथा गोचरी लानेके बाद साधुवोंको बुखारादि बेमारीके कारणसे आहार बढ गया, वखत कमती हो, परठनेका स्थान दूर है, तथा घनघोर वर्षाद वर्ष रही है. ऐसे कारणसे वह बचा हुवा आहार रह भी जावे तो उसको दुसरे दिन नहीं भोगवना चाहिये, रात्रि समय रखनेका अवसर हो, तो राखलें मसल देना चाहिये. ताके उसमें जीवोत्पत्ति न हो. अगर रात्रिवासी रहा हुवा अशनादि आहारको मुनि खानेकी इच्छा भी करे, उसे यह प्रायश्चित्त बतलाया है.

(१८५) ,, कोइ अनार्यलोक मांस, मदिरादिका भोजन स्वयं अपने लीये तथा आये हुवे पाहुणे (महिमान) के लीये

बनाया हो, इधर उधर लाते, ली जाते हो, जिसका रुप हो अदर्शनीय है. जहांपर ऐसा कार्य हो रहा है, उसीकी तर्फ जानेकी अभिलाषा, पिपासा, इच्छा ही साधुवोंको न करनी चाहिये. अगर करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होगा. कारण-वह जातेमें लोगोंको शंकाका स्थान मिलेगा.

(१८६) „ देवोंको नैवेद्य चढानेके लीये, जो अशनादि आहार तैयार कीया है, उसकी अन्दरसे आहार ग्रहन करे. ३ यह लोकविरुद्ध है. कदाच देवता कोपे तो नुकशान करे.

(१८७) „ जो कोइ साधु साध्वी जिनाज्ञा विराधके अपने छंदे चलनेवाले है, उसकी प्रशंसा करे. ३

(१८८) ऐसे स्वच्छंदे चलनेवालोंको वन्दे. ३ इसीसे स्वच्छंदचारीयोंकी पुष्टि होती है.

(१८९) „ साधुवोंके संसारपक्षके न्यातीले हो, अ न्यातीले हो, श्रावक हो, अन्य गृहस्थ हो, परन्तु दीक्षाके योग्य न हो, जिसमें दीक्षा ग्रहन करनेका भाव भी न हो, ऐसा अपात्रको दीक्षा देवे. ३

भावार्थ—भविष्यमें वडा भारी नुकशानका कारण होता है.

(१९०) „ अगर अज्ञातपनेसे ऐसे अपात्रको दीक्षा दे दी हो, तत्पश्चात् ज्ञात हुवा कि-यह दीक्षाके लीये अयोग्य है; उसको पंचमहाव्रतरुप वडीदीक्षा देवे. ३

(१९१) अगर वडीदीक्षा देनेके बाद ज्ञात हो कि-यह संयमके लीये योग्य नहीं है. ऐसेको ज्ञान, ध्यान देवे, सूत्र-सिद्धांतकी वाचना देवे, उसकी वैयावच्च करे, साथमें एक मंडले-पर भोजन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. भावना पूर्ववत्.

(१९२) ,, वस्त्र सहित साधु, वस्त्र सहित साध्वीयोंकी अन्दर निवास करे. ३

(१९३) एवं वस्त्र सहित, वस्त्र रहित.

(१९४) वस्त्र रहित, वस्त्र सहित.

(१९५) वस्त्र रहित, वस्त्र रहितकी अन्दर निवास करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—साधु, साध्वीयोंको किसी प्रकारसे सामेल रहना नहीं कल्पै. कारण-अधिक परिचय होनेसे अनेक तरहका नुकशान है. और स्थानांगसूत्रकी चतुर्भंगीके अभिप्राय-अगर कोइ विशेष कारण हो-जैसे किसी अनार्य ग्रामकी अन्दर अनार्य आदमीयोंकी बदमासी हो, ऐसे समय साध्वीयों एकतर्फसे आइ हो, दुसरी तर्फसे साधु आये हो, तो उस साध्वीके ब्रह्मचर्य रक्षण निमित्त, धर्मपुत्रके माफिक रह भी सक्ते है. तथा वस्त्रादि चौर हरण कीया हो एसा विशेष कारणसे रह भी सक्ते है.

(१९६) ,, रात्रिमें वासी रखके पीपीलिका उसका चूर्ण, सुंठी चूर्ण, वलवालुणादि पदार्थ भोगवे. ३ तथा प्रथम पोरसीमें लाया चरम पोरसीमें भोगवे. ३

(१९७) ,, जो कोइ साधु साध्वी-वालमरण-जैसे पर्वतसे पडके मरजाना, मरुस्थलकी रेतीमें खुचके मरना, खाड-खाइमें पडके मरना. इस च्यारोंमें फस कर मरना, कीचडमें फस कर मरना, पाणीमें डूबके मरना, पाणीमें प्रवेश करना, कूपादिमें कूदके मरना, अग्निमें प्रवेश कर तथा कूद कर अग्निमें पडके मरना, विष भक्षण कर मरना, शस्त्रसे घात कर मरना, पांच इंद्रियोंके वश हो मरना, मनुष्य मरके मनुष्य होना.

पशु मरके पशु होना अंत:करणमें मायशल्य रखके मरना, फांसी लेके मरना, महाकायावाले मृतक पशुके कलेवरमें प्रवेश हो मरना संयमादि शुभ योगोंसे भ्रष्ट हो, अर्थात् विराधक भावमें मरना, इन्हके सिवाय भी जो बालमरण मरनेवालोंकी प्रशंसा तारीफ करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

उपर लिखे १९७ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले साधु-साध्वीयोंको गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र-इग्यारवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(१२) श्री निशिथसूत्र-बारहवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' 'कलूणं' दीनपणाको धारण करता हुवा त्रस-जीव गौ, भैंसादिको तृणकी रसी (दोरी)से बांधे. एवं मुंज रसीसे बांधे. काष्ठकी चारडी तथा खोडासे बन्धन करे, चर्मकी रसीसे, रज्जुकी रसीसे, सूतकी रसीसे, अन्य भी किसी प्रकारकी रसीसे, त्रस जीवोंको बांधे, बधावे, अन्य कोइ साधु बांधते हो, उसको अच्छा समझे.

(२) एवं उक्त बन्धनोंसे बन्धा हुवा त्रस जीवोंको खोले, खोलावे, खोलतोंको अच्छा समझे.

भावार्थ-कोइ साधु, गृहस्थोंके मकानमें ठेरे हुये है. वह गृहस्थ जैन मुनियोंके आचारसे अज्ञात है. गृहस्थ कहे कि-हे मुनि ! में अमुक कार्यके लीये जाता हुं. मेरे गौ, भैंसादि पशु,

जंगलसे आजावे, तो यह रसी (दोरी) यहां रखता हुं. तुम उस पशुवोंको बांध देना, तथा यह बंधे हुवे गौ, भैंसादि पशुवोंको छोड देना. उस समय मुनि, मकानमें रहनेके कारण ऐसी दीनता लावे कि–अगर इसका कार्यमें नहीं करुंगा, तो मुजे मकानमें ठेरनेको न देंगा, तथा मकानसे निकाल देंगा, तो मैं कहां ठेरुंगा? ऐसी दीनवृत्तिको धारण कर, मुनि, उस गृहस्थका वचन स्वीकार कर, उक्त रसीयोंसे त्रस-प्राणी जीवोंको बांधे तथा छोडे तो प्रायश्चित्तका भागी होता है. तात्पर्य यह है कि—मुनियोंको सदैव निःस्पृहता–निर्भयता रखना चाहिये. मकान न मिले तो जंगलमें वृक्ष नीचे भी ठेर जाना, परन्तु ऐसा पराधीन हो, गृहस्थोंका कार्य न करना चाहिये.*

---

* इस पाठका तेराहपन्थी लोग बिलकुल मिथ्या अर्थ कर जीवदयाकी जड पर कुठार चलाते हैं. वह लोग कहते हैं कि —'कालूगं' अनुकंपा लके मुनि जीवोंको बांधे नहीं, और छोडे नहीं, तथा गृहस्थ लोग मरते हुवे जीवोंको छोडावे, उसको अच्छा समझनेमें मुनिको पाप लगता हैं. तो छोडानेवाले गृहस्थोंको पुन्य कहांसे? वहांतक पहुंच गये हैं कि—हजारों गौसे भरा हुवा मकानमें अग्नि लग जावे तथा कोइ महात्मावोंको दुष्ट जन फांसी लगावे, उसे बचानेमें भी महापाप लगता है. ऐसा तेराहपन्थीयोंका कहना है.

बुद्धिमान् विचार कर सके है कि—भगवान् नेमिनाथ तीर्थंकर, अपने विवाह समय हजारों पशु, पक्षीयोंकी अनुकंपा कर, उन्होंको जीवितदान दीया था. परमात्मा पार्श्वप्रभुने अग्निमें जलता हुवा नागको बचाया. भगवान् शांतिनाथने पूर्वभवमें पारेवाका प्राण बचाया. भगवान् वीरप्रभुए गोशालाको बचाया. और तीर्थंकरोने खुद अपने मुखारविंदसे अनुकंपाको सम्यक्त्वका चौथा लक्षण बतलाया हैं. तो फिर पन्थी लोग किस आधारसे कहते है कि—अनुकंपा नहीं करना. अगर वह लोग मिथ्यात्वके प्रबल उदयसे कह भी देवे, तो आर्य मनुष्य उसे कैसे मान सकेगा? विशेष खुलासा अनुकंपाछत्तीसीसे देखो.

(३) ,, प्रत्याख्यान कर वारंवार भंग करे. ३

(४) ,, प्रत्येक वनस्पति मिश्रित भोजन करे. ३

(५) ,, किसी कारणसे चर्म रखना पडे, तो भी रोमसहित चर्म रखे.

(६) ,, तृणका बना हुवा पीडा (पाट—बाजोट) पलालका बना पीडा, गोंबरसे लींपा हुवा पीडा, काष्टका पीडा, वेतका पीडा, गृहस्थोंके वस्त्रादिसे आच्छादित कीया हुवा पर स्वयं बैठे, अन्यको बैठावे, बैठते हुवेको अच्छा समझे.

भावार्थ—उसमें जीवादि हो तो दृष्टिगोचर नहीं होते हैं. बैठनेसे जीवोंकी विराधना होती है. इत्यादि दोषका संभव है.

(७) ,, साध्वीकी पीछोवडी (चद्दर) अन्यतीर्थों तथा उन्होंके गृहस्थोंसे सीवावे. ३ इसीसे अन्य तीर्थीयोंका परिचय बढता है, पराधीन होना पडता है. उसके योग सावद्य होते हैं. इत्यादि.

(८) ,, सर्व, जितनी पृथ्वीकायका आरंभ स्वयं करे, अन्यके पास आदेश दे करवावे, करते हुवेको अच्छा समझे. एवं अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकायका ९-१०-११-१२

(१३) ,, सचित्त वृक्षपर चढे, चढावे, चढतेको अच्छा समझे.

(१४) ,, गृहस्थोंके भाजनमें अशनादि आहार करे. ३

(१५) ,, गृहस्थोंका वस्त्र पेहरे. ३

भावार्थ—वस्त्र अपनी निश्रायमें याचके नहीं लीया है, गृहस्थोंका वस्त्र है, वापरके वापिस देवे. उस अपेक्षा है. अर्थात् गृहस्थके वस्त्र मांगके ले लीया, फिर वापिस भी दे दीया, ऐसा करना साधुवोंको नहीं कल्पै.

(१६) ,, गृहस्थोंके पलंग, पथरणे आदिपर सुवे—शयन करे. ३

(१७) ,, गृहस्थोंको औषधि बतावे, गृहस्थोंके लीये औषधि करे.

(१८) ,, साधु भिक्षाको आनेके पेस्तर साधु निमित्त हाथ, चाटुडी, कडछी, भाजन कचे पाणीसे धोकर साधुको अशनादि च्यार आहार देवे. ऐसे साधु ग्रहन करे.

(१९) ,, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ, भिक्षा देते समय हाथ, चाटुडी, भाजनादि कचे पाणीसे धो देवे और साधु उसे ग्रहन करे. ३

भावार्थ—जीवोंकी विराधना होती है.

(२०) ,, काष्ठके बनाये हुवे पुतलीयें, अश्व, गजादि. एवं वस्त्रके बनाये. चीढेके बनाये. लेप, लीष्टादिसे दांतके बनाये खीलुने, मणि, चंद्रकांतादिसे बनाये हुवे भूषणादि, पत्थरके बनाये मकानादि, ग्रंथित पुष्पमालादि, वेष्टित—बीठसे बीठ मिलाके पुष्पदडादि. सुवर्णादि धातु भरतसे बनाये पदार्थ, बहुत पदार्थ एकत्र कर चित्र विचित्र पदार्थ, पत्र छेदन कर अनेक मोदक (मादक) पदार्थ, जिसको देखनेसे मोहनीय कर्मकी उदीरणा हो ऐसा पदार्थ देखनेकी अभिलाषा करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—ऐसे पदार्थको देखनेकी अभिलाषा करनेसे स्वाध्याय ध्यानमें व्याघात, प्रमादकी वृद्धि, मोहनीय कर्मकी उदीरणा, यावत् संयमसे पतित होता है.

(२१) ,, काकडीयों उत्पन्न होनेके स्थान, 'काच्छा' केले आदि फलोत्पत्तिके स्थान, उत्पलादि कमलस्थान, पर्वतका

निर्झरणा, उझरणा, वापी, पुष्करिणी. दीर्घ वापी, गुंजागर वापी, सर (तलाव), सरपंक्ति-आदि स्थानोंको नेत्रोंसे देखनेकी अभिलाषा करे. ३ भावना पूर्ववत्.

(२२) „ पर्वतके नदीके पासके काच्छा केलीघर, गुप्तघर, वन-एक जातिका वृक्ष, महान् अटवीका वन, पर्वत-विषम पर्वत.

(२३) ग्राम, नगर, खेड, कर्बिठ, मंडप, द्रोणीमुख, पट्टण, सोना—धांदीका आगर, तापसोंका आश्रम, घोषी निवास करनेका स्थान, यावत् सन्निवेश.

(२४) ग्रामादिमें किसी प्रकारका महोत्सव हो रहा हो.

(२५) ग्रामादिका वध (घात) हो रहा हो.

(२६) ग्रामादिमें सुन्दर मार्ग बन रहा है, उसे देखनेको जानेका मन भी करे. ३

(२७) ग्रामादिमें दाह (अग्नि) लगी हो, उसे देखनेकी अभिलाषा मनसे भी करे. ३

(२८) जहां अश्वक्रीडा, गजक्रीडा, यावत् सुवरक्रीडा होती हो.

(२९) जहांपर चौरादिकी घात होती हो.

(३०) अश्वका युद्ध, गजयुद्ध, यावत् शूकर युद्ध होता हो.

(३१) जहांपर बहुत गौ, अश्व, गजादि रहते हो, ऐसी गौशालादि.

(३२) जहांपर राज्याभिषेकका स्थान है, महोत्सव होता हो, कथा समासका महोत्सव होता हो, मानानुमान-तोल, माप, लंब, चोड जाननेका स्थान, वार्जीत्र, नाटक, नृत्य, वीना बजानेका स्थान, ताल, ढोल, मृदंग आदि गाना बजाना होता हो.

(३३) चौर, वील, पारधीयोंका उपद्रवस्थान, वैर, खार, क्रोधादिसे हुवा उपद्रव युद्ध, महासंग्राम, क्लेशादिके स्थानोंको.

(३४) नाना प्रकारके महोत्सवकी अन्दर वहुतसी स्त्रीयों, पुरुषों, युवक, वृद्ध, मध्यम वयवाले, अनेक प्रकारके वस्त्र, भूषण, चंदनादिसे शरीर अलंकृत वनाके केइ नृत्य, केइ गान, केइ हास्य, विनोद, रमत, खेल, तमासा करते हुवे, विविध प्रकारका अशनादि भोगवते हुवेको देखने जानेका मनसे अभिलाष करे, करावे. करतेको अच्छा समझे.

(३५) ,, इस लोक संवंधी रुप (मनुष्य-स्त्रीका), परलोक संवंधी रुप, (देव-देवी, पशु आदि) देखे हुवे, न देखे हुवे, सुने हुवे, न सुने हुवे, ऐसे रुपोंकी अन्दर रंजित, मूर्च्छित, गृद्ध हो देखनेकी मनसे भी अभिलाषा करे. ३

भावार्थ—उपर लिखे सव किसमके रुप, मोहनीय कर्मकी उदीरणा करानेवाले है. जैसे एक दफे देखनेसे हरसमय वह ही हृदयमें निवास कर ज्ञान, ध्यानमें विघ्न करनेवाले वन जाते है. वास्ते मुनियोंको किसी प्रकारका पदार्थ देखनेकी अभिलाषा तक भी नहीं करना चाहिये.

(३६) ,, प्रथम पोरसीमें अशनादि च्यार प्रकारका आहार लाके उसे चरम पोरसी तक रखे. ३

(३७) ,, जिस ग्राम, नगरमें आहार ग्रहन कीया है, उसको दो कोशसे अधिक ले जावे. ३

(३८) ,, किसी शरीरके कारणसे गोवर लाना पडता हो, पहले दिन लाके दुसरे दिन शरीरपर वांधे.

(३९) दिनको लाके रात्रिमें वांधे.

(४०) रात्रिमें लाके दिनको बांधे.

(४१) रात्रिमें लाके रात्रिमें बांधे.

भावार्थ—ज्यादा वखत रखनेसे जीवादिकी उत्पत्ति होती है, तथा कल्पदोष भी लगता है. इसी माफिक च्यार भांगा लेपणकी जातिकाभी समझना. भावार्थ—गड गुंबड होनेपर पोटीस विगेरे तथा शरीरके लेपन करनेमें आवे, तो उपर मुजब च्यार भांगाका दोषको छोडके निरवद्य औषध करना साधुका कल्प है. ४५

(४६) ,, अपनी उपधि (वस्त्र, पात्र, पुस्तकादि) अन्यतीर्थीयोंको तथा गृहस्थोंको देवे, यह अपने शिर उठाके स्थानांतर पहुंचा देवे.

(४७) उसे उपधि उठानेके बदलेमें उसको अशनादि च्यार प्रकारका आहार देवे, दीलावे, देतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—अपनी उपधि गृहस्थ तथा अन्यतीर्थीयोंको देनेमें संयमका व्याघात, गृहस्थोंकी खुशामत करना पडे, उपकरण फूटे तूटे, सचित्त पाणी आदिका संघटा होनेसे जीवोंकी हिंसा होवे, उसके पगार तथा आहारपाणीका बंदोबस्त करना पडे. इत्यादि दोष है.

(४८) ,, गंगा नदी, यमुना नदी, सीता नदी, ऐरावती नदी और मही नदी—यह पांचों महानदीयों, जिसका पाणी कितना है (समुद्र समान). ऐसी महा नदीयों एक मासमें दोय वार, तीन वार उतरे, उतरावे, अन्य उतरते हुवेको अच्छा समझे.

भावार्थ—वारवार उतरनेसे जीवोंकी विराधना होवे तथा किसी समय अनजानते ही विशेष पाणीका पूर आजानेसे आपघात, संयमघात हो, इत्यादि दोष लगते है.

उपर लेखे ४८ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले साधु, साध्वीयोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्रके बारहवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(१३) श्री निशिथसूत्र—तेरहवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' अन्तरा रहित सचित्त पृथ्वीकायपर बैठ—सुवे खडा रहै, स्वाध्याय ध्यान करे. ३

(२) सचित्त पृथ्वीकी रज उडी हुइ पर बैठ, यावत् स्वाध्याय करे. ३

(३) एवं सचित्त पाणीसे स्निग्ध पृथ्वीपर बैठ, यावत् स्वाध्याय करे. ३

(४) एवं सचित्त—तत्काल खानसे निकली हुइ शिला, तथा शिलाको तोडे हुवे छोटे छोटे पत्थरपर बैठे, तथा कीचडसे, कचरासे जीवादिकी उत्पत्ति हुइ हो, काष्टके पाट—पाटलादिमें जीवोत्पत्ति हुइ हो, इंडा, प्राणी (बेइंद्रियादि) बीज, हरिकाय, ओसका पाणी, मकडीजाला, निलण—फूलण, पाणी, कच्ची मट्टी, मांकड, जीवोंका झाला संयुक्त हो, उसपर बैठे, उठे, सुवे, यावत् स्वाध्याय करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(५) ,, घरकी देहलीपर, घरके उंबरे (दरवाजाका मध्य भाग) उखलपर, स्नान करनेके पाटेपर, बैठे, सुवे, शय्या करे, यावत् वहां बैठके स्वाध्याय—ध्यान करे. ३

(६) एवं टाटी, भींत, शिला, छोटे छोटे पत्थरे विगेरेसे आच्छादित भूमिपर शयन करे, यावत् स्वाध्याय ध्यान करे. ३

(७) ,, एक तर्फ आदि भींतपर दोनों तर्फ आदि आदि भींतपर पाट-पाटला रखके बैठे, मोटी ईटोंकी राशिपर तथा और भी जिस जगा चलाचल (अस्थिर) हो, उस स्थानपर बैठ यावत् स्वाध्याय करे. ३

भावार्थ—जीवोंकी विराधना होवे, आप स्वयं गिर पडे, आत्मघात, संयमघात होवे, उपकरणादि पडनेसे तूटे फूटे—इत्यादि दोष लगता है.

(८) ,, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ लोगोंको संसारिक शिल्पकला, चित्रकला, वस्त्रकला, गणितकलादि (७२) श्लाघाकरणरुप लोडकला, श्लोकबंधकी कला, चोपड, शेत्रंज, कांकरी रमनेकी कला, ज्योतिषकला, वैधककला, सलाह देना, गृहस्थके कार्यमें पटु बनाना, क्लेश, युद्ध संग्रामादिकी कला बतलाना, शिखवाना, स्वयं करे, अन्यसे करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—मुनि आप संसारमें अनेक कलावोंका अभ्यास कीया हुवा है, फिर दीक्षा लेनेपर गृहस्थोंपर स्नेह करते हुवे, उक्त कलावों गृहस्थोंको शीखावे, अर्थात् उस कलावोंसे गृहस्थलोग सावध वेपार कर अनेक क्लेशके हेतु उत्पन्न करेंगे. वास्ते मुनिको तो गृहस्थोंको एक धर्मकला, कि जिससे इसलोक परलोकमें सुखपूर्वक आत्मकल्याण करे, ऐसा ही बतलानी चाहिये.

(९) ,, अन्यतीर्थीयोंको तथा गृहस्थोंको कठिन शब्द बोले. ३

(१०) एवं स्नेह रहित कर्कश वचन बोले. ३

(११) कठोर और कर्कश वचन बोले. ३

(१२) ,, आशातना करे.

(१३) कौतुक कर्म (दोरा राखडी).

(१४) भूतिकर्म, रक्षादिकी पोटली कर देना.

(१५) ,, प्रश्न, हानि-लाभका प्रश्न पूछे.

(१६) अन्यतीर्थी गृहस्थ पूछनेपर ऐसे प्रश्नोंका उत्तर, अर्थात् हानि लाभ बतावे.

(१७) एवं प्रश्न, विद्या, मंत्र, भूत, प्रेतादि निकालनेका प्रश्न पूछे.

(१८) उक्त प्रश्न पूछनेपर आप बतलावे तथा शीखावे.

(१९) भूतकाल संबन्धी.

(२०) भविष्यकाल संबन्धी.

(२१) वर्त्तमानकाल संबन्धी निमित्त भाषण करे. ३

(२२) लक्षण—हस्तरेखा, पगरेखा, तिल, मसा, लक्षण आदिका शुभाशुभ बतावे.

(२३) स्वप्नके फल प्ररुपे.

(२४) अष्टापद—एक जातकी रमत, जैसे शेत्रंजी आदिका खेलना शीखावे.

(२५) रोहणी देवीको साधन करनेकी विद्या शिखावे.

(२६) हरिणगमैषी देवको साधन करनेका मंत्र शिखावे.

(२७) अनेक प्रकारकी रससिद्धि, जडीबुट्टी, रसायन बतावे.

(२८) लेपजाति—जिससे वशीकरण होता हो.

(२९) दिग्मूढ हुवा अन्यतीर्थी, गृहस्थोंको रहस्ता बतलावे, अर्थात् क्लेशादि कर कितनेक आदमी आगे चले गये हो, और

कितनेक आदमी उन्होंको मारनेके लीये आ रहे हो, उस समय मुनिको रहस्ता पूछे, तथा

(३०) कोइ शिकारी दिग्मूढ हुवे रहस्ता पूछे, उसे मुनि रहस्ता बताये, तथा दुसरे भी अन्यतीर्थी गृहस्थोंको रहस्ता बताये. कारण—वह आगे जाता हुवा दिग्मूढतासे रहस्ता भूल जावे, दूसरे रहस्ते चला जावे, कष्ट पडनेपर मुनिपर कोप करे इत्यादि.

(३१) धातु निधान, अन्यतीर्थी—गृहस्थोंको बतलाये. आप गृहस्थपणेमें निधान जमीनमें रखा, वह दीक्षा लेते समय किसीको कहना भूल गया था, फिर दीक्षा लेनेके बाद स्मृति होनेपर अपने रागीयोंको बतलाये तथा दीक्षा लेनेके बादमें कहांपर ही निधान देखा हुवा बताये. कारण—वह निधान अनर्थका ही हेतु होता है, मोक्षमार्गमें विघ्नभूत है.

भावार्थ—यह सब सूत्र अन्यतीर्थीयों, गृहस्थोंके लीये कहा है. मुनि, गृहस्थावास अनर्थका हेतु, संसारभ्रमणका कारण जाण त्याग कीया था, फिर उक्त क्रिया गृहस्थलोगोंको बतलानेसे अपना नियमका भंग, गृहस्थ परिचय, ध्यानमें व्याघात इत्यादि अनेक नुकशान होता है. वास्ते इस बलाय बलायसे अलग ही रहना अच्छा है.

(३२) „ अपना शरीर (मुंह) पात्रेमें देखे.

(३३) काचमें देखे.

(३४) तलवारमें देखे.

(३५) मणिमें देखे.

(३६) पाणीमें देखे.

(३७) तैलमें देखे.

(३८) ढीलागुलमें देखे.

(३९) चरबीमें देखे.

भावार्थ—उक्त पदार्थोंमें मुनि अपना शरीर मुंह) को देखे, देखावे, देखतोंको अच्छा समझे. देखनेसे शुश्रूषा बढती है. सुन्दरता देख हर्ष, मलिनता देख शोकसे रागद्वेष उत्पन्न होते हैं. मुनि इस शरीरको नाशवन्त ही समझे. इसकी सहायतासे मोक्ष-मार्ग साधनेका ही ध्यान रखे.

(४०) ,, शरीरका आरोग्यताके लीये वमन (उलटी) करे. ३

(४१) एवं विरेचन (जुलाव) लेवे. ३

(४२) वमन, विरेचन दोनों करे. ३

(४३) आरोग्य शरीर होनेपर भी दवाइयों ले कर शरीरका बल-वीर्यकी वृद्धि करे. ३

भावार्थ—शरीर है, सो संयमका साधन है. उसका निर्वाहके लीये तथा बेमारी आनेपर विशेष कारण हो तो उक्त कार्य कर सके. परन्तु आरोग्य शरीर होनेपर भी प्रमादकी वृद्धि कर अपने ज्ञान—ध्यानमें व्याघात करे, करावे, करतेको अच्छा समझे, वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(४४) ,, पासत्था साधु, साध्वीयों (शिथिलाचारी) संयमको एक पास रखके केवल रजोहरण, मुखवस्त्रिका धारण कर रखी हो, ऐसे साधुवोंको वन्दन-नमस्कार करे. ३

(४५) एवं पासत्थावोंकी प्रशंसा-तारीफ श्लाघा करे. ३

(४६) एवं उसन्न-मूलगुण पंचमहाव्रत, उत्तरगुण पिंडविशुद्धि आदिके दोषित साधुवोंको वन्दन करे. ३

(४७) एवं प्रशंसा करे. ३ एवं दो सूत्र कुशीलीया-भ्रष्टाचारी साधुयोंका.

(४८-४९) एवं दो सूत्र नित्य एक घरका पिंड (आहार) तथा शक्तियान होनेपर भी एक स्थान निवास करनेवालोंका.

(५०-५१) एवं दो सूत्र संसक्ता-पासत्या मिलनेसे आप पासत्थ हो, संवेगी मिलनेसे आप संवेगी हो, ऐसे साधुयोंका.

(५२-५३) एवं दो सूत्र कथगा-स्वाध्याय ध्यान छोडके दिनभर स्त्रीकथा, राजकथा, देशकथा तथा भक्तकथा करनेवालोंका.

(५४-५५) एवं दो सूत्र पासणिया-ग्राम, नगर, बाग, बगीचे, घर, बाजार इत्यादि पदार्थ देखते फिरे, ऐसे साधुयोंका.

(५६-५७) एवं दो सूत्र ममत्वोपाधि धारण करनेवालोंका. जैसे यह मेरा-यह मेरा करे ऐसे साधुयोंका.

(५८-५९) एवं दो सूत्र संप्रसारिक-जहां जावे. वहां मम-त्वभावसे प्रसारा करते रहे, गृहस्थोंके कार्यमें अनुमति देता रहे.

(६०-६१) ऐसे साधुयोंको वंदन करे, प्रशंसा करे. ३

भावार्थ—यह सब कार्य जिनाज्ञा विरुद्ध है. मोक्षमार्गमें विघ्न करनेवाला है, असंयमवर्धक है. इस अकृत्य कार्योंको धारण करनेवाले बालजीव, मुनिवेषको लज्जित करनेवाला है. ऐसेका वन्दन-नमस्कार तथा तारीफ करनेसे शिथिलाचारकी पुष्टि होती है. उस भ्रष्टाचारी साधुयोंको एक किसमकी सहायता मिलती है. वास्ते उक्त साधुयोंको वन्दन नमस्कार करनेवाला भी प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(६२) „ धात्रीकर्म आहार—गृहस्थोंके बालबच्चोंको खेलाके आहार ग्रहन करे. ३

(६३) ,, दूतीकर्म आहार—उधर इधरका समाचार कहे के आहार ग्रहन करे. ३

(६४) ,, निमित्त आहार—ज्योतिष प्रकाश करके आहार. ३

(६५) ,, अपने जाति, कुलका अभिमान करके आहार. ३

(६६) ,, रंक भिखारीकी माफिक दीनता करके ,, ३

(६७) ,, वैद्यक-औषधिप्रमुख बतलायके आहार लेवे. ३

(६८-७१) ,, क्रोध, मान, माया, लोभ करके आहार लेवे. ३

(७२) ,, पहला पीछे दातारका गुण कीर्त्तन कर आहार लेवे. ३

(७३) ,, विद्यादेवी साधन करनेकी विद्या बताके ,, ३

(७४) ,, मंत्रदेव साधन करनेका प्रयोग बताके ,, ३

(७५) ,, चूर्ण—अनेक औषधि सामेल कर रसायण बताके ,, ३

(७६) ,, योग—वशीकरणादि प्रयोग बतलायके ,, ३

भावार्थ—उक्त १५ प्रकारके कार्य कर, गृहस्थोंकी खुशामत कर आहार लेना निःस्पृही मुनिको नहीं कल्पै.

उपर लिखे, ७६ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवालोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—तेरहवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.



(१४) श्री निशिथसूत्र—चौदवां उद्देशाः

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी ' को गृहस्थलोगपात्र-मूल्यलाके देवे ',तथा अन्य किसीसे मूल्य दिलाये. देतेको सहायता कर मूल्यका पात्र साधु साध्वीयोंको देवे, उस अकल्पनीय पात्रको साधु साध्वी ग्रहन करे, शिष्यादिसे ग्रहन कराये, अन्य कोइ ग्रहन करते हुये साधुको अच्छा समझे.

(२) एवं साधु साध्वीके निमित्त पात्र उधारा लाके देवे, उसे ग्रहन करे. ३

(३) एवं उलटा पलटा करदेवे. ३

(४) एवं निर्बलसे सबल जबरजस्तीसे दिलाये, दो भागीदारोंका पात्रमें एकका दिल नहीं होनेपर भी दुसरा देवे तथा सामने लायके देवे, उसे ग्रहन करे. ३

(५) „ किसी देशमें पात्रोंकी प्राप्ति नहीं होती हो, और दुसरे देशोंमे निरवद्य पात्र मिलते हो, वहांसे साधु, गणि (आचार्य) का उद्देश, अर्थात् आचार्यके नामसे, अपने प्रमाणसे अधिक पात्र ग्रहन कीया हो, वह पात्र आचार्यको आमंत्रण न करे, आचार्यको पुछे विगर अपनी इच्छानुसार दुसरे साधुको देवे, दिलावे. ३

भावार्थ—सत्य भाषाका भंग, अविश्वासका कारण, साथमें क्लेशका कारण भी होता है.

(६) „ लघु शिष्य शिष्यणी, स्थविर-वयोवृद्ध साधु साध्वी, जिसका हाथ, पग, कान, नाक, होठ आदि अवयव छेदा हुवा नहीं है, बेमार नहीं है, अर्थात् वह शक्तिमान् है, उसको परिमाणसे अधिक पात्र देवे, दिलावे, देतोंको अच्छा समझे.

(७) कथंचित् हाथ, पग, कान, नाक, होठ छेदाया हुवा है, किसी प्रकारकी अति वेमारी हो, उसको परिमाणसे अधिक पात्र नहीं देवे, नहीं दिलावे, नहीं देते हुवेको अच्छा समझे.

भावार्थ—आरोग्य अवस्थामें अधिक पात्र देनेसे लोलूपता वढे, उपाधि वढे, 'उपाधिकी पोट समाधिसे न्यारी,' अगर रोगादि कारण हो, तो उसे अधिक पात्र देनाही चाहिये. वेमार रोगवालाको सहायता देना, मुनियोंका अवश्य कर्त्तव्य है.

(८) ,, अयोग्य, अस्थिर, रखने योग्य न हो, स्वल्प समय चलने कावील न हो, जिसे यतना पूर्वक गौचरी नहीं लासके, ऐसा पात्रको धारण करे. ३

(९) अच्छा मजवूत हो, स्थिर हो, गौचरी लाने योग्य हो, मुनिको धारण करने योग्य हो, ऐसा पात्रको धारण न करे. ३

भावार्थ—अयोग्य, अस्थिर पात्र सुन्दर है तथा मजवूत पात्र देखनेमें अच्छा नहीं दीसता है. परन्तु मुनियोंको अच्छा खराबका ख्याल नहीं रखना चाहिये.

(१०) ,, अच्छा वर्णवाला सुन्दर पात्र मिलने पर वैराग्यका ढोंग देखानेके लीये उसे विवर्ण करे. ३

(११) विवर्णपात्र मिलनेपर मोहनीय प्रकृतिको खुश करनेको सुवर्णवाला करे. ३

भावार्थ—जैसा मिले, वैसेसे ही गुजरान कर लेना चाहिये.

(१२) ,, नवा पात्रा ग्रहन करके तैल, घृत, मक्खन, चरवी कर मसले लेप करे. ३

(१३) ,, नवा पात्रा ग्रहन कर उसके लोद्रव द्रव्य, कोकण

द्रव्य और भी सुगन्धी सुवर्णवाला द्रव्य एकवार वारवार लगावे, लेप करे. ३

(१४) ,, नवा पात्राको ग्रहन कर, शीतल पाणी, गरम पाणीसे एकवार वारवार धोवे. ३

एवं तीन सूत्र, बहुत दिन पात्रा चलेगा, उस लीये तैलादि, लोद्रयादि पाणीसे धोवेका समझना. १५-१६-१७

(१८) ,, सुगन्धि पात्र प्राप्त कर, उसे दुर्गन्धि करे. ३

(१९) दुर्गन्धि पात्र प्राप्त कर उसे सुगन्धि करे. ३

(२०) सुगन्धि पात्र ग्रहन कर तैल, घृत, मक्खन, चरबीसे लेप करे.

(२१) एवं लोद्रयादि द्रव्यसे.

(२२) शीतल पाणी. उष्ण पाणीसे धोवे.

एवं तीन सूत्र दुर्गन्धि पात्र संबंधि समझना. २३-२४-२५

एवं छे सूत्र सुगन्धि, दुर्गन्धि पात्र बहुत दिन चलनेके लीये भी समझना. २६-२७-२८-२९-३०-३१ भावना पूर्ववत्.

(३२) ,, पात्रोंको आतापमें रखना हो, तो अंतरा रहित पृथ्वीपर आतापमें रखे. ३

(३३) पृथ्वी (रज) पर आतापमें रखे. ३

(३४) संसक्त पृथ्वीपर आतापमें रखे.

(३५) जहांपर कीडी, मंकोडा, मट्टी, पाणी, नीलण, फूलण, जीवोंका झाला हो, ऐसी पृथ्वीपर पात्रा आतापमें रखे. ३. कारण-ऐसे स्थानोंमें जीवोंकी विराधना होती है.

(३६) ,, घरके उंबरापर दरवाजेके मध्यभागपर, उखल, खुटा आदिपर पात्रोंको आताप लगानेको रखे. ३

(३७) कुट्टीपर, भींतपर, शिलापर, खुले अवकाशमें पात्रोंको आताप लगानेको रखे. ३

(३८) आदि भींतके खंदपर, छत्रीके शिखरपर, मांचापर, मालापर, प्रासादपर, हवेलीपर और भी किसी प्रकारकी उंची जगाहपर, विषमस्थानपर, मुश्कीलसे रखा जावे, मुश्कीलसे उठाया जावे, लेते रखते पडजानेका संभव हो, एसे स्थानोंमें पात्रोंको आताप लगानेको रखे. ३

भावार्थ—पात्रा रखते उतारते आप स्वयं पीसलके पडे, तो आत्मघात, संयमघात तथा पात्रा तूटे फूटे तो आरंभ वढे, उसको अच्छे करनेमें वखत खरच करना पडे इत्यादि दोषका संभव है.

(३९) ,, गृहस्थके वह पात्रामें पृथ्वीकाय (लूणादि) भरा हुवा है उसको निकालके मुनिको पात्र देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३

(४०) एवं अप्काय.

(४१) एवं तेउकाय. (राख उपर अंगार रख ताप करते हैं.)

(४२) वनस्पति.

(४३) एवं कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल, वीज निकाल पात्रा देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३ जीव विराधना होती है.

(४४) ,, पात्रामें औषधि (गहुं, जव, जवारादि) पडी हो, उसे निकालके पात्र देवे, वह पात्र मुनि ग्रहन करे. ३

(४५) एवं त्रस पाणी जीव निकाले. ३

(४६) ,, पात्रको अनेक प्रकारकी साधुके निमित्त कोरणी कर देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(४७) ,, मुनिके गृहस्थावासके न्यातीले अन्यातीले, श्रावक

अभ्यायक मुनिके लीये ग्राममें तथा ग्रामांतरमें मुनिके नामसे पात्राकी याचना करे, वह पात्र मुनि ग्रहन करे, ३

(४८) एवं परिषदकी अन्दर उठके कहेकि—हे भद्रश्रोतायों ! मुनिको पात्राकी जरुरत है, किसीके हो तो देना. इत्यादि याचना कीया हुवा पात्र ग्रहन करे. ३

(४९) „ मुनि पात्र याचना करनेपर गृहस्थ कहे—हे मुनि ! आप ऋतुबद्ध (मास कल्प) यहांपर ठेरे. हम आपको पात्रा देवेंगे ऐसा कहने पर वहांपर मुनि मासकल्प रहे. ३

(५०) एवं चातुर्मासका कहनेपर, मुनि पात्रोंके निमित्त चातुर्मास करे. ३

भावार्थ—गृहस्थलोग मूल्य मंगावे, तथा काष्टादि कटवाके नया पात्र बनावे. इत्यादि.

इस उद्देशामें पात्रोंका विषय है. मुनिको संयमयात्रा निर्वाह करनेके लीये दृढ (मजबूत) संहननवाले मुनियोंको एक पात्र रखनेका हुकम है. मध्यम संहननवाले तीन[१] पात्र रखके मोक्षमार्गका साधन कर शके. परन्तु उसके रंगनेमें सुवर्ण, सुगन्धि करनेमें अपना अमूल्य समय खरच करना न चाहिये. लाभालाभका कारण तथा स्निग्ध रहनेके भयसे रंगना पडता हो, वह भी यतनासे करसक्ते है.

इपर लिखे ५० बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले मुनियोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र–चौदवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

१ मोत्रप्रदिक, कमंडल (तीरपणी) पडिगादि भी रखसक्ते है.

(१५) श्री निशिथसूत्र—पंदरहवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' अन्य साधु साध्वी प्रत्ये निष्ठुर वचन बोले.

(२) एवं स्नेह रहित कर्कश वचन बोले.

(३) कठोर, कर्कश वचन बोले, बोलावे, बोलतेको अच्छा समझे.

(४) एवं आशातना करे. ३

भावार्थ—ऐसा बोलनेसे धर्म स्नेहका नाश और क्लेशकी वृद्धि होती है. मुनियोंका वचन प्रियकारी, मधुर होना चाहिये.

(५) „ सचित्त आम्रफल भक्षण करे, ३

(६) एवं सचित्त आम्रफलको चूसे. ३

(७) एवं आम्रफलकी गुटली, आम्रफलके टुकडे (कातली) आम्रफलकी एक शाखा, (डाली) छतु आदिको चूसे. ३

(८) आम्रफलकी पेसी मध्यभागको चूसे. ३

(९) सचित्त आम्र प्रतिबद्ध अर्थात् आम्रफलकी फांकों काटी हुइ, परन्तु अबीतक सचित्त प्रतिबद्ध है, उसकों खावे. ३

(१०) एवं उक्त जीव सहितकों चूसे. ३

(११) सचित्त जीव प्रतिबद्ध आम्रफल डाला, शाखादि भक्षण करे. ३

(१२) एवं उसे चूसे. ३

भावार्थ—जीव सहित आम्रफलादि भक्षण करनेसे जीव विराधना होती है, हृदय निर्दय हो जाता है. अपने ग्रहन किया हुवा नियमका भंग होते है.

(१३) „ अपने पाव, अन्यतीर्थी, अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे

मसलावे, दबावे, चंपावे. ३ एवं यावत् तीसरा उद्देशामें ५६ सूत्र स्वअपेक्षाका कहा है, इसी माफिक यहां साधु, अन्य तीर्थी, अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे करावे, करानेका आदेश देवे, कराते हुवेको अच्छा समझे. यावत् ग्रामानुग्राम विहार करते समय अपने शिरपर छत्र धारण करावे. ३

भावार्थ—अन्यतीर्थी लोगोंसे कुछ भी काम नहीं कराना चाहिये. यह कार्य पश्चात् शीतल पाणी विगेरेका आरंभ करे, करावे इत्यादि. ६८

(६९) ,, आराम, मुसाफिरखाना, उद्यान, स्त्रीपुरुषको आराम करनेका स्थान, गृहस्थोंका गृह तथा तापसोंके आश्रमकी अन्दर लघुनीत (पैसाब) वडोनीत (टटी) परिठे.

(७०) ,, एवं उद्यानके बंगला (गृह) उद्यानकी शाला, निज्ञान, गृहशाला इस स्थानोंमें टटी, पैसाब परठे. ३

(७१) कोट, कोटके फिरणी रहस्ता, दरवाजा, बुरजोंपर टटी पैसाब परठे. ३

(७२) नदी, तलाव, कुवाका पाणी आनेका मार्ग, पाणी नीकलनेका पन्थ, पाणीका तीर, पाणीका स्थान (आगार) पर टटी, पैसाब परठे, परठावे. ३

(७३) शुन्य गृह, शुन्य शाला, भग्नगृह, भग्नशाला, कुडगार, भूमिमें गृह, भूमिकी शाला, कोठारका गृह शाला. इस स्थानोंमें टटी, पैसाब परठे. ३

(७४) तृण गृह, तृण शाला, तुस गृह-शाला, भूसाका गृह-शाला. इन स्थानोंमें टटी, पैसाब करे ३, परठे. ३

(७५) ,, रथ रखनेका गृह-शाला, युगपान-सेधिका, मैना रखनेका गृह—शालामें टटी, पैसाब परठे. ३

(७६) करियाणागृह—शाला, दुकान, धातुके वरतन रखनेका गृह—शाला.

(७७) वृषभ बांधनेका गृह, शाला तथा वहुतसे लोक निवास करते हो ऐसा गृह, शालामें टटी, पैसाव परठे, अर्थात् उपर लिखे स्थानोमें टटी, पैसाव करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—गृहस्थोंको दुगंछा, धर्मकी हीलना, यावत् दुर्लभ-वोधीपणा उपार्जन करता है. मुनियोंको टटी, पैसाव करनेको जंगलमें खुव दूर जाना चाहिये. जहांपर कोइ गृहस्थ लोगोंका गमनागमन न हो, इसीसे शरीर भी निरोगी रहता है.

(७८) ,, अपने लाइ हुइ भिक्षासे अशनादि च्यार आहार, अन्यतीर्थी और गृहस्थोंको देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

(७९) एवं वस्त्र, पात्र, कंवल, रजोहरण देवे. ३ भावनापूर्ववत्.

(८०) ,, पासत्थे साधुवोंको अशनादि च्यार आहार.

(८१) वस्त्र, पात्र, कंवल, रजोहरण देवे. ३

(८२-८३) पासत्थासे अशनादि च्यार आहार और वस्त्र, पात्रा, कंवल, रजोहरण ग्रहन करे. ३

एवं उसन्नोंका च्यार सूत्र ८४-८५-८६-८७.

एवं कुशीलीयोंका च्यार सूत्र ८८-८९-९०-९१.

एवं नितीयोंका च्यार सूत्र ९२-९३-९४-९५.

एवं संसक्तोंका च्यार सूत्र ९६-९७-९८-९९.

एवं कथगोंका च्यार सूत्र १००-१०१-१०२-१०३,

एवं ममत्ववालोंका च्यार सूत्र १०४-१०५-१०६-१०७.

एवं पासणियोंका च्यार सूत्र १०८-१०९-११०-१११. भावना पूर्ववत् समझना.

उक्त शिथिलाचारीयोंसे परिचय करनेसे देखादेख अपनी प्रवृत्ति शिथिल होगी. लोकशंका, शासनहीलना, पासत्थावोंका पोषण इत्यादि दोषोंका सभव है.

(११२) „ जानकार गृहस्थ साधुवोंके पूर्व सज्जनादि, वस्त्रकी आमंत्रणा करे, उस समय मुनि उस वस्त्रकी जांच पूछ, गवेषणा न करे. ३

(११३) जो वस्त्र, गृहस्थ लोक नित्य पहेरते हो, स्नान, मज्जनके समय पहेरते हो, रात्रि समय स्त्री परिचय समय पहेरते हो तथा उत्सव समय, राजद्वार जाते समय (बहुमूल्य) पहेरते हो, ऐसे वस्त्र ग्रहन करे.

भावार्थ—सज्जनादि पूर्व स्नेह कारण बहु मूल्य दोषित वस्त्र देता हो, तो मुनिको पेस्तर जांच पूछ करना चाहिये. तथा नित्यादि वस्त्र लेनेसे, वह वस्त्र अशुचि तथा विषय वर्धक होता है.

(११४) „ साधु, साध्वी अपने शरीरकी विभूषा करनेके लीये अपने पावोंको एकवार मसले, दावे, चंपे, वारवार मसले, दावे, चंपे, एवं विभूषा निमित्त उक्त कार्य अन्य साधुवोंसे करावे, अन्य साधु उक्त कार्य करतेको अच्छा समझे, तारीफ करे, सहायता करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. एवं यावत् तीसरे उद्देशामें ५६ सूत्रों कहा है, वह विभूषा निमित्त यावत् ग्रामानुग्राम विहार करते अपने शिरछत्र धरावे. ३ एवं १६९

(१७०) „ अपने शरीरकी विभूषा निमित्त वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण और भी किसी प्रकारका उपकरण धारण करे, धारण करावे, करतेको अच्छा समझे.

(१७१) एवं वस्त्रादि धोवे, साफ करे, उज्वल करे. घटा मटा उस्तरी दे, गडीबन्ध साफ करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(१७२) एवं वस्त्रादिको सुगंधि पदार्थ लगावे, धूप देकर सुगन्धि बनावे. ३

भावार्थ—विभूषा कर्मबन्धका हेतु है. विषय उत्पन्न करनेका मूल कारण है. संयमसें भ्रष्ट करनेमें अग्रेसर है. इत्यादि दोषोंका संभव है.

उपर लिखे १७२ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले मुनियोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो बीसवा उद्देशासे.

इति श्री निशिथसूत्र—पंदरवा उदेशाका संक्षिप्त सार.



(१६) श्री निशिथसूत्र—सोलवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' गृहस्थ शय्या—जहांपर दंपती क्रीडाकर्म करते हो, ऐसे स्थानमें प्रवेश करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—वहां जानेसे अनेक विषय विकारकी लेहरों उत्पन्न होती है. पूर्व कीये हुवे विलास स्मृतिमें आते है इत्यादि दोषका संभव है.

(२) " गृहस्थोंके कचापाणी पडा हो, ऐसे स्थानमें प्रवेश करे. ३

(३) एवं अग्निके स्थानमें प्रवेश करे.

भावार्थ—जहां जैसा पदार्थ, वहां वैसी भावना रहेती है. वास्ते एसे स्थानोंमें नही ठेरे अगर गौचरी आदिसे जाना हो तों कार्य होनेसे शीघ्रतासे लोट जावे.

(४) ,, इक्षु (सेलडीके सांठा) को चूसे. यावत् पंदरहवे उद्देशामें आम्रफलके आठ सूत्र कहा है, इसी माफिक यहां भी समझना. भावना पूर्ववत्. ११

(१२),, अटवी, अरण्य, विषमस्थान जानेवालोंका तथा अटवीमें प्रवेश करते हुवेका अशनादि च्यार प्रकारका आहार लेवे. ३

भावार्थ—कोइ कामवृत्ति करनेवाला अपना निर्वाह हो, इतना आहार लाया है, उसे दीनतासे मुनि याचनेपर अगर आहार मुनिको दे देवेंगा, तो फिर उसे अपने लीये दुसरा आरंभ करना होगा, फलादि सचित्त भक्षण करना पडेगा या बडे कष्टसे अटवी उल्लंघन करेंगा. इत्यादि दोषोंका संभव है.

(१३) ,, उत्तम गुणोंके धारक, पंचमहाव्रत पालक, जितेंद्रिय, गीतार्थ, जैन प्रभावक, क्षांत्यादि गुण संयुक्त मुनियोंको पासत्थे, भ्रष्टाचारी आदि कहे, निंदा करे. ३

(१४) शिथिलाचारी, पासत्थायोंको उत्तम साधु कहे. ३

(१५) गीतार्थ, संवेगी, महापुरुषोंसे विभूषित गच्छको पासत्थोंका गच्छ कहे. ३

(१६) पासत्थोंके गच्छको गीतार्थोंका गच्छ कहे. ३

भावार्थ—द्वेषके वश हो अच्छाको बुरा, रागके वश हो बुराको अच्छा कहे. यह दृष्टि विपर्यास है. इससे मिथ्यात्वकी पुष्टि, शिथिलाचारीयोंकी पुष्टि, उत्तम गीतार्थोंको अपमान, शासनकी हीलना—इत्यादि अनेक दोषोंका संभव होता है.

(१७) ,, कोइ साधु एक गच्छसे क्लेश कर वहांसे विगर खमतखामणा कर, निकल दुसरे गच्छमें आवे, दुसरे गच्छवाले उस क्लेशी साधुको अपनेपास अपने गच्छमें रखे, उसे अशनादि च्यार आहार देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—क्लेशवृत्तिवाले साधुवोंके लीये कुछ भी रोकावट न होगा, तो एक गच्छमें क्लेशकर, तीसरे गच्छमें जावेगा, एक गच्छका क्लेशी साधुको दुसरे गच्छवाले रखलेंगे तो उस गच्छका साधुको भी दुसरे गच्छवाले रखलेंगे इससे क्लेशकी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी, शासनकी हीलना, आत्मकल्याणका नाश, क्षांत्यादि गुणोंका उच्छेद आदि अनेक हानि होगी.

(१८) एवं क्लेशी साधुवोंका आहार ग्रहन करे.

(१९-२०) वस्त्रादि देवे, लेवे.

(२१--२२) शिक्षा देवे, लेवे.

(२३--२४) सूत्र सिद्धांतकी वाचना देवे, लेवे.

भावार्थ—ऐसे क्लेशी साधुवोंका परिचयतक करनेसे, चेपी रोग लगता है. वास्ते दूरही रहना चाहिये. एक साधुसे दूर रहेगा, तो दूसदकों भी क्षोभ रहेंगा.

(२५) ,, साधुवोंके विहार करने योग्य जनपद--देश मोजुद होते हुवे भी वहुत दिन उलंघने योग्य अरण्यको उलंघ अनार्य देश (लाट देशादि) में विहार करे. ३

भावार्थ—अपना शारीरिक सामर्थ्य देखा विगर करनेसे रहस्तेमें आदाकर्मी आदि दोष तथा संयमसे पतित होनेका संभव है.

(२६) जिस रहस्तेमें चौर, धाडायती, अनार्य, धूर्तादि हो, ऐसे रहस्ते जावे. ३

भावार्थ—वस्त्र, पात्र, छीन लेवे, मार पीट करे द्वेष बढे, यावत् पतित करे. अगर स्वयं शक्तिमान्, विद्यादि चमत्कार, स्थिर संहननवाला, उपकार लाभालाभका कारण जानता हो, वह जा भी सके है.

(२७) „ दुगंछणिक कुल.

(१) स्वल्प काल सुवा सुतकवाला घर.

(२) दीर्घ काल शुद्रादि इन्होंके घरसे अशनादि च्यार प्रकारको आहार ग्रहन करे. ३

(२८) एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण ग्रहन करे. ३

(२९) एवं शय्या (मकान) संस्तारक ग्रहन करे. ३

भावार्थ—उत्तम जातिके मनुष्य, जिस कुलसे परेज रखते हो, जिसके हाथका पाणी तक भी नहीं पीते हो, ऐसे कुलका आहार पाणी लेना, साधुके वास्ते मना है.

(३०) „ दुगंछणिक कुलमें जाके स्वाध्याय करे. ३
(३१) एवं शिष्यको वाचना देवे.
(३२) सदुपदेश देवे.
(३३) स्वाध्याय करनेकी आज्ञा देवे.
(३४) दुगंछणिक कुल (घर) में सूत्रकी वाचना लेवे.
(३५) स्वाध्याय (अर्थ) लेवे.
(३६) स्वाध्यायकी आवृत्ति करे.

भावार्थ—चांडालादि तथा सुवासुतकवालोंके घरमें सदैव अस्वाध्यायही रहेती है. वहांपर सूत्र सिद्धांतका पठन पाठन करना मना है. तथा दुगंछ अर्थात् लोकव्यवहारमें निंदनीय कार्य करनेवाला, जिसकी लोक दुगंछा करते है, पास न बैठे, न बै-

ठावे, ऐसा पासत्था, हीणाचारी, आचार, दर्शनसे भ्रष्ट तथा अप्रतीतिवालाको ज्ञान ध्यान देना तथा उससे ग्रहन करना मना है. यहां प्रथम लोक व्यवहार शुद्ध रखना बतलाया है. साथमें योगायोग, और लाभालाभ, द्रव्य, क्षेत्रका भी विचार करनेका है.

(३७) ,, अशनादि च्यार आहार लाके पृथ्वी उपर रखे. ३

(३८) एवं संस्तारक पर रखे. ३

(३९) अधर खुंटीपर रखे, छीकापर रखे, छातपर रखे. ३

भावार्थ—ऐसे स्थानपर रखनेसे पीपीलिका आदि जीवोंकी विराधना होवे. कीडीयों आवे, काग, कुत्ता अपहरण करे, स्निग्धता--चीकट लगनेसे जीवोत्पत्ति होवे--इत्यादि दोषका संभव है.

(४०) ,, असनादि च्यार आहार, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थोंके साथमें बैठके भोगवे. ३

(४१) चोतरफ अन्य तीर्थी गृहस्थ, चक्रकी माफिक और आप स्वयं उसके मध्य भागमें बैठके आहार करे. ३

भावार्थ—साधुको गुप्तपणे आहार करना चाहिये, जीनसे कोइकि अभिलाषही नहोवे.

(४२) ,, आचार्योपाध्यायजीके शय्या, संस्तारकके पावोंसे संघट्टा कर विगर खमायों जावे. ३

(४३) ,, शास्त्र परिमाणसे तथा आचार्योपाध्यायकी आज्ञासे अधिक उपकरण रखे. ३

(४४) ,, आन्तरा रहित पृथ्वीकायपर टटी, पैसाव परठे.

(४५) जहांपर पृथ्वीरज हो, वहांपर.

(४६) पाणीसे स्निग्ध जगाहपर.

(४७) सचित्त शिला, छोटे छोटे पत्थरेपर, तथा त्रस जीव, स्थावर जीव, नीलण, फूलण, कची पृथ्वी, झालादिपर टटी, पैसाव परठे, परठावे.

(४८) घरका उंबरा, स्थूभ, उखले, ओटले.

(४९) खन्धा, भींत, शेल, लेलू, उर्ध्वस्थानादि.

(५०) इंटो, स्तंभ, काष्टके ढगपर, गोबरपर.

(५१) खाड, खाइ, स्थुभ, मांचा, माला, प्रासाद, हवेली आदि जो उर्ध्व हो, उसपर जाके टटी, पैसाव परठे, परिठावे, परिठावतेको अच्छा समझे. भावना पूर्ववत्. जीवोत्पत्ति, लोकापवाद तथा शासनहीलना इत्यादि दोषोंका संभव है.

उपर लिखे ५१ बोलोंसे एक भी बोलको सेवन करनेवाले मुनियोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्रके सोलवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(१७) श्री निशिथसूत्र–सत्तरवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' कुतूहल निमित्त त्रस प्राणीयोंको-जीवोंको तृणपाश (बन्धन) मुंजकी रसी, वेतकी रसी, सूतकी रसी, चर्मकी रसीसे बांधे, बंधावे, बांधतेको अच्छा जाने.

(२) एवं उक्त बंधनसे बन्धे हुवेको छोडे. ३ भावना पूर्ववत्. एसी कुतूहल करनेसे परजीवोंको तकलीफ, अपने प्रमाद, ज्ञान, ध्यानमें विघ्न होता है.

(३) ,, कुतूहल निमित्त तृणमाला, पुष्पमाला, पत्रमाला, फलमाला, हरिकायमाला, बीजमाला करे. ३

(४) धारे, धरावे, धरतेको अच्छा समझे.

(५) भोगवे.

(६) पेहरे.

(७ कुतूहल निमित्त लोहा, तांबा, तरुवा, सीसा, चांदी, सुवर्णके खीलुने चित्र करे. ३

(८) धारण करे. ३

(९) उपभोगमें लेवे. ३

(१०) एवं हार (अठारसरी) अदहार (नौसरी) तीनसरी सुवर्ण तारसे हार करे. ३

(११) धारण करे. ३

(१२) भोगवे. ३

(१३) चर्मके आभरण यावत् विचित्र प्रकारके आभरण करे. ३

(१४) धारण करे. ३

(१५) उपभोगमें लेवे. ३

भावार्थ—कुतूहल निमित्त कोइ भी कार्य करना कर्मबन्धका हेतु है. प्रमादकी वृद्धि, ज्ञान, ध्यान, स्वाध्यायमें व्याघात होता है.

(१६) ,, एक साधु दुसरा साधुका पाव अन्यतीर्थी तथ गृहस्थोंसे चंपावे, दवावे, यावत् तीसरे उदेशाके ५६ बोल यहां-पर कहना. एवं एक साधु, साध्वीयोंके पाव, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थोंसे दवावे, चंपावे, मसलावे. एवं ५६ सूत्र. एवं एक साध्वी साधुके पाव अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे दवावे, चंपावे, मसलावे. एवं

५६ सूत्र. एवं साध्वी साध्वीयोंके पाव अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे दवावे, चंपावे, मसलावे. यावत् तीसरे उदेशा माफिक ५६-५६ बोल कहेना, च्यार अलापकके २२४ सूत्र कहना. कुल २३९.

भावार्थ—साधु या साध्वी, कोइ भी कोशीश कर अन्यतीर्थी तथा उन्होंके गृहस्थोंसे साधु, साध्वीयोंका कोइ भी कार्य नहीं कराना चाहिये. कारण—उन्होंका सर्व योग सावद्य है. अयतनासे करनेसे जीवविराधना हो, शासनकी लघुता, अधिक परिचय, उन्होके प्रत्ये पीछा भी कार्य करना पडे, इसमें भी राग, द्वेषकी प्रवृत्ति बढे इत्यादि अनेक दोषोंका संभव है. वास्ते साधुवोंको निःस्पृहतासे मोक्षमार्गका साधन करना चाहिये.

(२४०) „ अपने सदश समाचारी, आचार व्यवहार अपने सरीखा है, ऐसा कोइ ग्रामान्तरसे साधु आये हो, अपने डेरे है, उस मकानमें साधु, उतरने योग्यस्थान होनेपरभी उस पाहुणे साधुको स्थान न देवे. ३

(२४१) एवं साध्वीयों, ग्रामांतरसे आइ हुइ साध्वीयोंको स्थान न देवे, ३

भावार्थ—इससे वत्सलताकी हानि होती है, लोकोंकी धर्मसे श्रद्धा शिथिल पडती है, द्वेषभावकी वृद्धि होती है. धर्मस्नेहका लोप होता है.

(२४२) „ उंचे स्थानपर पडी हुइ वस्तु, तकडीफसे उतारके देवे, ऐसा अशनादि वस्तु साधु लेवे. ३

(२४३) भूमिगृह, कोठारादि नीचे स्थानमें पडी हुइ वस्तु देवे. उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(२४४) कोठी, कोठारादि अन्य स्थानमें वस्तु रख, लेपादि कीया हो, उसको खोलके वस्तु देवे, उसे मुनि लेवे. ३

भावार्थ—कची वस्तु लेते, रखते पीसके पडजानेसे आत्मघात, संयमघात, जीवादिका उपमर्दन होता है. पीच्छा लेप करनेमे आरंभ होता है.

(२४५) ,, पृथ्वीकायपर रखा हुवा अशनादि च्यार आहार उठाके मुनिको देवे, वह आहार मुनिग्रहन करे, ३

(२४६) एवं अप्कायपर.

(२४७) एवं तेउकायपर.

(२४८) वनस्पतिकाय पर रखा हुवा आहार देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

भावार्थ—ऐसा आहार लेनेसे जीवोंकी विराधना होती है. आज्ञाका भंग व्यवहार अशुद्ध है.

(२४९) ,, अति उष्ण, गरमागरम आहार पाणी देते समय गृहस्थ, हाथसे, मुंहसे, सुपडेसे, ताडके पंखेसे, पत्रसे, शाखाके, शाखाके खंडसे हवा, लगाके जिससे वायुकायकी विराधना होती है, ऐसा आहार मुनि ग्रहन करे. ६

(२५०) ,, अति उष्ण—गरमागरम आहार पाणी मुनि ग्रहन करे.

भावार्थ—उसमे अग्निकायके जीव प्रदेश होते है. जीससे जीव हिंसा का पाप लगता है.

(२५१) ,, उसामणका पाणी, बरतन धोया हुवा पाणी, चावल धोया हुवा पाणी, बोर धोया हुवा पाणी, तिल० तुस० जव० भूसा० लोहादि गरम कर बुजाया हुवा पाणी, कांजीका पाणी, आम्र धोया हुवा पाणी, शुद्धोदक जो उक्त पदार्थों धोयोंको ज्यादा वखत नहीं हुवा है, जिसका रस नहीं बदला है, जिस

जीवोंको अचीतक शस्त्र, नहीं प्रणम्या है, जीव प्रदेशोंकी सत्ता नष्ट नहीं हुइ है, अर्थात् वह पाणी अचित्त नहीं हुवा है, ऐसा पाणी साधु ग्रहन करे. ३ *

(२५२) ,, कोइ साधु अपने शरीरको देख, दुनीयाको कहे कि— मेरेमें आचार्यका सर्व लक्षण है. अर्थात् मुझे आचार्यपद दो—ऐसा कहे. ३

भावार्थ—आत्मश्लाघा करनेसे अपनी कींमत कराना है.

(२५३) ,, रागदृष्टि कर गाये, वाजित्र बजाये, नटोंकी माफिक नाचे. कूदे, अश्वकी माफिक हणहणाट करे, हस्तीकी माफिक गुलगुलाट करे, सिंहकी माफिक सिंहनाद करे, कराये ३

भावार्थ—मुनियोंको ऐसा उन्माद कार्य न करना, किन्तु शांतवृत्तिसे मोक्षमार्गका आराधन करना चाहिये.

(२५४) ,, भेरीका शब्द, पटहका शब्द, मुंहका शब्द, मादलका शब्द, नदीघोषका शब्द, झलरीका शब्द, वलरीका शब्द, डमरु, मदुया, शंख, पेटा, गोलरी, और भी श्रोत्रेंद्रियको आकर्षित करनेकी अभिलाषा मात्र भी करे. ३

(२५५) ,, वीणाका शब्द, त्रिपंचीका शब्द, कुणाका, वापची वीणा, तारकी वीणा, तुंबीकी वीणा, सतारका शब्द, ढंकाका शब्द, और भी वीणा-तार आदिका शब्द, श्रोत्रेंद्रियको उन्मत्त बनानेवाले शब्द सुननेकी अभिलाषा मात्र करे. ३

(२५६) ,, ताल शब्द, कांसीतालके शब्द, हस्ततालादि,

* एक जातिका धोवण में दुसरी जातीका धोवण मीला देनेसे भगर विस्पर्श होतों त्रसजीवों कि उत्पती हो जाती है इंडक माइयोंको इसपर ख्याल करना चाहिये.

औरभी किसी प्रकारके तालको यावत् श्रवण करनेंकी अभिलाषा मात्र भी करे.

(२५७) ,, शंख शब्द, वांस वेणु, खरमुखी आदिके शब्द सुननेकी अभिलाषा करे. ३

(३५८) ,, केरा (गाहुवोंका) खाइ यावत् तलाव आदिका वहांपर जौरसे निकलाता हुवा शब्द.

(२५९) "काच्छा गहन, अटवी, पर्वतादि विषम स्थानसे अनेक प्रकारके होते हुवे शब्द."

(२६०) "ग्राम, नगर, यावत् सन्निवेशके कोलाहल शब्द."

(२६१) ग्राममें अग्नि, यावत् सन्निवेशमें अग्नि आदिसे महान् शब्द.

(२६२) ग्रामका वद-नाश, यावत् सन्निवेशका वदका शब्द.

(२६३) अश्वादिका क्रीडा स्थानमें होता हुवा शब्द.

(२६४) चौरादिकी घातके स्थानमें होता हुवा शब्द.

(२६५) अश्व, गजादिके युद्धस्थानमें "

(२६६) राज्याभिषेकके स्थानमें, कथगोंके स्थान, पटहादिके स्थान, होते हुवे शब्द.

(२६७) "बालकोंके विनोद विलासके शब्द."

उपर लिखे सब स्थानोंमें श्रोत्रेंद्रियसे श्रवण कर, राग द्वेष उत्पन्न करनेवाले शब्द, मुनि सुने, अन्यको सुनावे, अन्य कोइ सुनताहो उसे अच्छा समझे.

भावार्थ—ऐसे शब्द श्रवण करनेसे राग द्वेषकी वृद्धि, प्रमा-

दकी प्रबलता, विषयविकारको उत्तेजन, स्वाध्याय-ध्यानकी व्याघात, इत्यादि अनेक दोषों उत्पन्न होते है

(२६८) जो कोइ साधु साध्वी, अनेक प्रकारके इस लोक संबंधी मनुष्य-मनुष्यणीका शब्द, परलोक संबंधी देवी, देवता, तिर्यंच, तिर्यंचणीके शब्द, देखे हुवे शब्द, विगर देखे हुवे शब्द, सुने हुवे शब्द, न सुने हुवे शब्द, यावत् ऐसे शब्द सुन उसके उपर राग, द्वेष, मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त हो, श्रोत्रेंद्रियका पोषण करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

उपर लिखे २६८ बोलोंसे एक भी बोल कोइ साधु साध्वी सेवन करेगा, उसे लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र-सत्तरवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(१८) श्री निशिथसूत्र-अठारवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' विगर कारण नौका (नावा) में बैठे, बैठावे, बैठतेको अच्छा समझे.

भावार्थ-समुद्रकी स्हेल करनेको तथा कुतुहलके लीये नौकामें बैठे, उसे प्रायश्चित्त होता है.

(२) ,, साधु साध्वीयोंके निमित्त नौका मूल्य खरीद कर रखे, उस नौकापर चढे. ३

(३) एवं नौका उधारी लेवे, उसपर बैठे. ३

(४) सलटो पलटो करी हुइ नौकापर बैठे. ३

(५) निर्बलसे कोइ सबल जबरदस्तीसे ले, उस नौकापर

वैठे. ३ एवं दो मनुष्योंके विभागमें हैं, एककादिल न होनेवाली नौकापर चढे. ३ साधुके निमित्त सामने लाइ हुइ नौकापर चढे.३

(७) जलमें रही हुइ नौकाको खेंचके साधुके लीये स्थलमें लावे, उस नौकापर चढे. ३

(८) एवं स्थलमें रही नौकाको जलकी अंदर साधुके निमित्त लावे, उस नौकापर चढे. ३

(९) जिस नौकाकी अन्दर पाणी भरागया हो, उस पाणीको साधु उलचे (वाहार फेंके) ३

(१०) कादवमें खुंची हुइ नौकाको कर्दमसे निकाले. ३

(११) किसी स्थानपर पडी हुइ नौकाको अपने लीये मगवाके उसपर चढे. ३

(१२) उर्ध्वगामिनी नौका पाणीके सामने जानेवाली, अधोगामिनी नौका, पाणीके पूरमें जानेवाली नौकापर चढे. ३

(१३) नौकाकी एक योजनकी गतिके टाइममें आदा योजन जानेवाली नौकापर वैठे.

(१४) रसी पकड नौकाको आप स्वयं चलावे.

(१५) न चलती हुइ नौकाको दंडाकर, वेत्तकर, रसीकर आप स्वयं चलावे. ३

(१६) नौकामें आते हुवे पाणीको पात्रासे, कमंडलसे उलच वाहार फेंके. ३

(१७) नौकाके छिद्रसे आते हुवे पाणीको हाथ, पग और कोइ भी प्रकारका उपकरण करके रोके. ३

भावार्थ—प्रथम तो जहांतक रहस्ता हो, वहांतक नौकामें

साधुयोंको बैठनाही नहीं चाहिये. अगर बैठना हो तो जल्दीसे पार हो, ऐसी नौकामें बैठे, नदीका दुसरा तट दृष्टीगोचर होता हो, ऐसी नौकामें बैठे. बैठती वखत मुनि सागारी अनशन कर नौकामें बैठे. जैसे नौकामें बैठनेके पहला भी गृहस्थोंकी दाक्षिण्यतासे गृहस्थोंका काम न करे, इसी माफिक ही नौकामें बैठनेके बाद भी गृहस्थका कार्य न करे. जैसे मुनिकी दृष्टि नौकायासी जीवोंपर है, वैसीही पाणीके जीवोंपर है. मुनि सबजीवोंका हित चाहाते है. यहांपर गृहस्थका कार्य, साधु दाक्षिणतासे न करे यह अपेक्षा है. कारण मुनि उस समय अनशन किया हुवा अपना जीनाभी नही इच्छता है.

(१८) ,, साधु नौकामें, दातार नौकामें.

(१९) साधु नौकामें दातार पाणीमें.

(२०) साधु पाणीमें, दातार नौकामें.

(२१) साधु पाणीमें, दातार पाणीमें.

(२२) साधु तथा दातार दोनों नौकामें.

(२३) साधु नौकामें दातार कर्दममें.

(२४) साधु कर्दममें, दातार नौकामें.

(२५) साधु तथा दातार दोनों कर्दममें. नौका और जलके साथ चतुर्भगी—२६-२७-२८

(२९) नौका और स्थलके साथ चतुर्भंगी समझना. ३० ३१ ३२ ३३ जल और कर्दमसे चतुर्भंगी. ३४ ३५ ३६ ३७ जल और स्थलके साथ चतुर्भंगी. ३८ ३९ ४० ४१ कर्दम और स्थलके साथ चतुर्भगी. ४२ ४३ ४४ ४५. उक्त १८ वा सूत्रसे ४५ वा सूत्र तक दातार आहार पाणी देवे तो साधुयोंको लेना नहीं कल्पै.

यद्यपि स्थलमें साधु और स्थलमें दातार होतो कल्पै; परंतु नौकामें बैठते समय साधु स्थलमें आहार पाणी चुकाके वस्त्र, पात्रकी एकही पेट (गांठ) कर लेते है. वास्ते उस समय आहार पाणी लेना नहीं कल्पै. भावना पूर्ववत्. यहां पन्थीलोग कीतनीक कुयुक्तियों लगाते है वह सब मिथ्या है. साधु परम दयावन्त होते है. सब जीवोंपर अनुकंपा है.

(४६) ,, मूल्य लाया हुवा वस्त्र ग्रहन करे. ३

(४७) एवं उधारा लाया हुवा वस्त्र.

(४८) सलट पलट कीया हुवा वस्त्र.

(४९) निर्बलसे सबल जबरदस्तीसे दिलावे, दो विभागमें एकका दिल न होनेपर भी दुसरा देवे, और सामने लाके देवे ऐसा वस्त्र ग्रहन करे. ३

भावार्थ—मूल्यादिका वस्त्र लेना मुनिको नहीं कल्पै.

(५०) ,, आचार्यादिके लीये अधिक वस्त्र ग्रहन कीया हो वह आचार्यको विगर आमंत्रण करके अपने मनमाने साधुको देवे. ३

(५१) ,, लघु साधु साध्वी, स्थविर (वृद्ध) साधु साध्वी जिसका हाथ, पग, कान, नाक आदि शरीरका अवयव छेदा हुवा नहीं, बेमार भी नहीं है, अर्थात् सामर्थ्य होनेपर भी उसको प्रमाणसे[1] अधिक वस्त्र देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

(५२) एवं जिसके हाथ, पांव, नाक, कानादि छेदा हुवा हो, उसे अधिक वस्त्र न देवे, न दिलावे, न देतेको अच्छा समझे.

---

१ तीन वस्त्रका परिमाण है. एक वस्त्र २४ हाथका होता है. साध्वींके च्यार (४) वस्त्रका परिमाण है.

भावार्थ—कुंमारमुनिके रक्तादिसे वस्त्र अशुचि हो, वास्ते अधिक देना बतलाया है.

(५३) ,, वस्त्र जीर्ण है, धारण करने योग्य नहीं है, स्वल्पकाल चलने योग्य है, ऐसा वस्त्र ग्रहन करे. ३

(५४) नया वस्त्र, धारण करने योग्य, दीर्घकाल चलने योग्य है, ऐसा वस्त्र न धारे. ३ भावना पात्र उद्देशाकी माफिक.

(५५) ,, वर्णवन्त वस्त्र ग्रहन कर, विवर्ण करे. ३

(५६) विवर्णका सुवर्ण करे. ३

(५७) नया वस्त्र ग्रहन कर उसे तेल, घृत, मक्खन, चरबी लगाये. ३

(५८) एवं लोद्रव, कोकण. अबीरादि द्रव्य लगाये. ३

(५९) शीतल पाणी, गरम पाणीसे एकवार, वारवार धोवे. ३

(६०-६१-६२) नया वस्त्र ग्रहन कर बहुत दिन चलेगा इस अभिप्रायसे तैलादि, लोद्रवादि, द्रव्य लगाये, शीतल पाणी गरम पाणीसे धोवे. ३

(६३) नया सुगंधि वस्त्र प्राप्त कर उसे दुर्गन्धी करे.

(६४) दुर्गन्धि वस्त्र प्राप्त कर. उसे सुगन्धि करे.

(६५) सुगंधि वस्त्र ग्रहन कर; उसे तैलादि.

(६६) लोद्रवादि लगाये.

(६७) शीतल पाणी, गरम पाणीसे धोवे. एवं तीन सूत्र दुर्गंधि वस्त्र प्राप्त कर.

(६८-६९-७०) एवं है सूत्र बहुत दिनापेक्षा भी कहना.

(७६) सूत्र हुवे.

(७७) ,, अन्तरारहित पृथ्वी (सचित्त) ऐसे स्थानमें वस्त्रको आताप देवे. ३

(७८) एवं सचित्त रजपर वस्त्रको आताप देवे.

(७९) कचे पाणीसे स्निग्ध पृथ्वीपर वस्त्रको आताप देवे.३

(८०) सचित्त शिला, कांकरा, कोलडीये जीवोंकाझाला, काष्टसंगृहीत जीव, इंडा, बीजादि जीव स्थान भूमिपर वस्त्रको आताप देवे. ३

(८१) घरके उंबरेपर, देहलीपर.

(८२) भितपर छोटे खडीयापर यावत् आच्छादित भूमिपर वस्त्रको आताप देवे. ३

(८३) मांचा, माला, प्रासाद, शिखर, हवेली, निसरणी, आदि उर्ध्वस्थानपर वस्त्रको आताप देवे.

भावार्थ—ऐसे स्थानोंपर वस्त्रको आताप देनेमें देते लेते स्वयं आप गिर पडे, वस्त्र वायुके मारा गिर पडे, उसे आत्मघात, संयमघात, परजीवघात–इत्यादि दोषोंका संभव है.

(८४) ,, वस्त्रकीअन्दर पूर्व पृथ्वीकाय बन्धी हुइथी, उसको निकाल कर देवे. ३ उस वस्त्रको ग्रहन करे. ३

(८५) एवं अप्काय कचा जलसे भींजा हुवा तथा पाणीके संघटेसे.

(८६) एवं तेउकाय संघटेसे.

(८७) एवं वनस्पतिकायसे.

(८८) एवं औषधि, धान्य, बीजादि.

(८९) एवं त्रस प्राणी–जीवोंसहित तथा गमनागमन करवायके.

भावार्थ—साधुको कपडे निमित्त पृथ्व्यादि किसी जीवोंको तकलीफ होती हो, ऐसा वस्त्र लेना साधुवोंको नहीं कल्पै.

(९०) ,, साधुवोंके पूर्व गृहस्थावास संबंधी न्यातीले हो, अन्यन्यातीले हो, श्रावक हो, अश्रावक हो, वह लोग ग्राममें तथा ग्रामान्तरमें साधुके नामसे याचना—जैसे महाराजको वस्त्र चाहिये, महाराजको वस्त्र चाहिये, आपके यहां हो तो दीजीये—इत्यादि याचना कर देवे, वैसा वस्त्र साधु लेवे. ३

भावार्थ—साधुको वस्त्रकी जरुरत हो तो आप स्वयं याचना करे, परन्तु गृहस्थोंका याचा हुवा नहीं लेवे.

(९१) ,, न्यातीलादि परिषदकी अन्दरसे उठके साधुके निमित्त वस्त्रकी याचना करे, वह वस्त्र साधु ग्रहन करे. ३

भावार्थ—किसी कपडेवालोंका देनेका भाव नहीं हो, परन्तु एक अच्छा आदमीकी याचनासे उसे शरमींदा होके भी देना पडता है. वास्ते साधुको स्वयंही याचना करनी चाहिये.

(९२) ,, साधु वस्त्रकी निश्राय ऋतुबद्ध (मासकल्प) ठेरे. ३

(९३) एवं वस्त्रके लीये चातुर्मास करे. ३

भावार्थ—मुनि, वस्त्रकी याचना करनेपर गृहस्थ कहे कि—हे मुनि! तुम अवी यहांपर मासकल्प ठेरें, तथा चातुर्मास करें, हम आपको वस्त्र देंगे, और वस्त्र देशान्तरसे मंगवा देंगे, ऐसा वचन सुन, मुनि मासकल्प तथा चातुर्मास ठेरे. अगर ठेरना होतो अपने कल्प तथा परउपकारके लीये ठेरना चाहिये. परन्तु कपडेकी खुशामदीके मातेत होके नहीं ठेरे, ऐसा निःस्पृही वीतरागका धर्म है.

उपर लिखे ९३ बोलोंसे कोइ साधु साध्वी एक बोल भी सेवन करे, करावे करतेको अच्छा समझेगा, उसको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—अठारवा उदेशाका संक्षिप्त सार.



(१९) श्री निशिथसूत्र उन्नीसवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' बहु मूल्य वस्तु-वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण तथा औषधि आदि, कोइ गृहस्थ बहु मूल्यवाला वस्तुका मूल्य स्वयं लावे, अन्यके पास मूल्य मंगवाके तथा अन्य साधुके निमित्त मूल्य लाते हुवेको अच्छा समझे. वह वस्तु बहु मूल्यवाली मुनि ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—बहु मूल्यवाली वस्तु ग्रहन करनेसे ममत्वभाव बढे, चौरादिका भय रहे, इत्यादि.

(२) एवं बहु मूल्यवाली वस्तु उधारी लाके देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(३) सलटा पलटाके देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(४) निर्बलसे जबरदस्ती सबल दिलावे, उसे ग्रहन करे. ३

(५) दो भागीदारोंकी वस्तु, एकका दिल देनेका न होनेपर भी दुसरा देवे, उसे मुनि ग्रहन करे.

(६) बहु मूल्य वस्तु सामने लाके देवे, उसे ग्रहन करे. ३ भावना पूर्ववत्.

(७) ,, अगर कोइ बेमार साधुके लीये बहु मूल्य औष-

धिकी खास आवश्यकता होनेपर तीन दात्त (मात्रा) से अधिक ग्रहन करे. ३

(८) ,, बहु मूल्य वस्तु कोइ विशेष कारनसे (औषधादि) ग्रहन कर ग्रामानुग्राम विहार करे. ३

भावार्थ—चौरादिका भय, ममत्वभाव बढे तस्करादि मार पीट करे, गम जानेसे आर्त्तध्यान खडा होता है. इत्यादि.

(९) ,, बहु मूल्य वस्तुका रुप परावर्त्तन कर गृहस्थ देवे, जैसे कस्तूरी अंबरादिकी गोलीयों बना दे गाल दे, ऐसेको ग्रहन करे. ३

भावार्थ—जहांतक बने वहांतक मुनियोंको स्वल्प मूल्यका वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, औषधिसे काम लेना चाहिये. उपलक्षणसे पुस्तक, पाना आदि स्वल्प मूल्यवालेसे ही काम चलाना चाहिये.

(१०) ,, स्याम, प्रातःकाल, मध्यान्ह, और आधिरात्रि, यह च्यारों टाइममें एक मुहूर्त्त (४८ मिनीट) अस्वाध्यायका काल है. इस च्यारों कालमें स्वाध्याय (सूत्रोंका पठन, पाठन) करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—इस च्यारों टाइममें तिर्यग्लोक निवासी देव फिरते हैं. देवतायोंकी भाषा मागधी है. अगर उस भाषामें तुटी हो तो देव कोपायमान हो, कबी नुकशान करे.

(११) ,, दिनकी प्रथम पोरसी, चरम पोरसी, रात्रिकी प्रथम पोरसी, चरम पोरसी, इसमे अस्वाध्यायका काल निकालके शेष च्यारों पोरसीमें साधु साध्वीयों स्वाध्याय न करे, न करावे, न करतेको अच्छा समझे.

(१२) ,, अस्वाध्यायके समय किसी विशेषकारणसे तीन पृच्छना (प्रश्न) से अधिक पूछे. ३

भावार्थ—अधिक पूछना हो तो स्वाध्यायके कालमें पूछना चाहिये.

(१३) एवं दृष्टिवाद--अंगकी सात पृच्छना (प्रश्न) से अधिक पूछे. ३

(१४) ,, च्यार महान् महोत्सवकी अन्दर स्वाध्याय करे. ३ यथा—इंद्र महोत्सव, चैत शुक्ल १५ का, स्कन्ध महोत्सव, आषाढ शुक्ल १५ का. यक्ष महोत्सव, भाद्रपद शुक्ल १५का, भूतमहोत्सव कार्तिक शुक्ल १५ का. इस च्यार दिनोंमें मूल सूत्रोंका पठन पाठन करना साधुवोंको नहीं कल्पै. *

(१५) ,, च्यार महा प्रतिपदा—वैशाख कृष्ण १, श्रावण कृष्ण १, आश्विन कृष्ण १, मागशर कृष्ण १. इस च्यार दिनोंमें मूल सूत्रोंका पठन पाठन करना नहीं कल्पै.

(१६) ,, स्वाध्याय पोरसीमें स्वाध्याय न करे. ३

(१७) स्वाध्यायका च्यार काल है. उसमें स्वाध्याय न करे.३

भावार्थ—स्वाध्याय—' सव्व दुक्खविमुक्खाणं ' मुनिको स्वाध्याय ध्यानमें ही मग्न रहना चाहिये. चित्तवृति निर्मल रहै. प्रमादका नाश कर्मोंका क्षय और सद्गतिकि प्राप्तीका मौख्य कारण स्वाध्यायही है.

---

* श्री स्थानांगजी सूत्र—चतुर्थ स्थाने—आश्विन शुक्ल १५ को यक्ष महोत्सव कहा हैं. उस अपेक्षा कार्तिककृष्ण प्रतिपदा महा पडिवा होती हैं. इस वास्ते दोनों आगमोंको बहुमान देते हुवे दोनों पूर्णिमा, दोनों प्रतिपदाको अस्वाध्याय रखना चाहिये तत्त्व केवलीगम्य.

(१८) ,, जहांपर अस्वाध्याययोग्य पदार्थ टटी, पैसाब, हाड, मांस, रौद्र, पंचेंद्रियका कलेवरादि ३४ अस्वाध्यायसे कोइ भी अस्वाध्याय हो, वहांपर स्वाध्याय करे, करावे, भावना पूर्ववत्.

(१९) ,, अपने अस्वाध्याय टटी, पैसाब, रौद्रादि शरीर-अशुचि हो, साध्वी ऋतुधर्ममें हो, गड, गुम्बडके रसी चीकती हो-इत्यादि अपने अस्वाध्याय होते स्वाध्याय करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(२०) ,, हठेले समोसरणकी वाचना न दी हो, और उपरके समोसरणकी वाचना देवे, अर्थात् जिसको आचारांगसूत्र न पढाया हो, उसे सूयगडांगसूत्रको वाचना देवे. ३ सूयगडांगजी सूत्रकी वाचना दो, उसे स्थानांगसूत्रको वाचना देवे. ३ एवं यावत् क्रमसर सूत्रकी वाचना देना कहा है, उसको उत्क्रमशः वाचना देवे, देनेकी दुसरेको आज्ञा देवे, अन्य कोइ उत्क्रमशः आगम वाचना देते हुवेको अच्छा समझे. वह आचार्योपाध्याय खुद प्रायश्चित्तके भागी होते हैं.

भावार्थ—जैन सिद्धांतको संकलना शैली इसी माफिक है कि-वह आगम क्रमशः वाचनासे ही सम्यक् प्रकारसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है.

(२१) ,, नौ ब्रह्मचर्यका अध्ययन (आचारांगसूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध) की वाचना न दे के उपरके सूत्रोंकी वाचना देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—जीवादि पदार्थ तथा मुनिमार्ग, उच्च कोटिका वैराग्यसे संपूरण भरा हुवा ब्रह्मचर्यका नौ अध्ययन है, वास्ते मोक्षमार्गमें स्थिर स्थोभ करानेके लीये मुनियोंको प्रथम आचा-

रांगसूत्र ही पढना चाहिये; अगर ऐसा न पढावे, उन्होंके लीये यह प्रायश्चित्त बतलाया हुवा है.

(२२) ,, 'अप्राप्त' वाचना लेनेको योग्य नहीं हुवा है. द्रव्यसे बालभावसे मुक्त न हुवा हो, अर्थात् काखमें रोम (बाल) न आया हो, भावसे आगम रहस्य समझनेकी योग्यता न हो, धैर्य, गांभीर्य, न हो, विचारशक्ति न हो, ऐसे अप्राप्तको आगमोंकी वाचना देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

(२३) ,, 'प्राप्त' को आगमोंको वाचना न देवे, न दिलावे, न देतेको अच्छा समझे. द्रव्यसे बालभावसे मुक्त हुवा हो, काखमें रोम आगये हो, भावसे सूत्रार्थ लेनेकी, ग्रहन करनेकी, तत्त्व विचार करनेकी, रहस्य समझनेकी योग्यता हो, धैर्य, गांभीर्य, दीर्घदर्शिता हो, ऐसे प्राप्तको आगमोंकी वाचना न देवे. ३

भावार्थ—अयोग्यको आगमज्ञान देना, वह बडा भारी नुकशानका कारण होता है. वास्ते ज्ञानदाता आचार्योपाध्यायजी महाराजको प्रथमसे पात्र कुपात्रकी परीक्षा करके ही जिनवाणी रूप अमृत देना चाहिये. तां के भविष्यमें स्वपरात्माका कल्याण करे.

(२४) अति बाल्यावस्थावाला मुनिको आगम वाचना देवे. ३

(२५) बाल्यावस्थासे मुक्त हुवाको आगम वाचना न देवे.३ भावना २२-२३ सूत्रसे देखो.

(२६) ,, एक आचार्यके पास विनयधर्मसंयुक्त दोय शिष्यों पढते है. उसमें एकको अच्छा चित्त लगाके ज्ञान-ध्यान शिखावे, सूत्रार्थकी वाचना देवे [रागके कारणसे], दुसरेको न शि-

खावे, न सूत्रार्थकी वाचना देवे [द्वेषके कारणसे] तो वह आचार्य प्रायश्चितका भागी होता है. भावना पूर्ववत्.

(२७) ,, आचार्योपाध्यायकेवाचना दीये विगर अपनेही मनसे सूत्रार्थ, वांचे, वंचावे, वांचतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—जैन सिद्धांत अति गंभीर शैलीवाले, अनेक रहस्यसे भरे हुवे, कितनेक शब्द तो खास गुरु गमताकी अपेक्षा रखनेवाले है, वास्ते गुरुगमतासे ही सूत्र वांचनेकी आज्ञा है. गुरुगमता विगर सूत्र वांचनेसे अनेक प्रकारकी शंकाओं उत्पन्न होती है. यावत् धर्मश्रद्धासे पतित हो जाते है.

(२८) ,, अन्यतीर्थी, और अन्य तीर्थीयोंके गृहस्थोंको सूत्रार्थकी वाचना देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—उन्ह लोगोंकी प्रथमसेही मिथ्यात्वकी वासना हृदयमें जमी हुइ है. उसको सम्यक् ज्ञानही मिथ्या हो परिणमता है. कारण—वाचना देनेवाले पर तो उसका विश्वासही नहीं. विनय, भक्तिहीनको वाचना न देवे. कारण नन्दीसूत्रमे कहा है कि सम्यसूत्र भी मिथ्यात्वीयोंको मिथ्यारूपमे परिणमते है.

(२९) ,, अन्यतीर्थी, अन्यतीर्थीयोंके गृहस्थोंसे सूत्रार्थकी वाचना ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—अन्यतीर्थी ब्राह्मणादि जैनसिद्धान्तोंके रहस्यका जानकार न होनेसे वह यथावत् नहीं समझा सके, न यथार्थ अर्थ भी कर शके. वास्ते ऐसे अज्ञातोंसे वाचना लेना मना है. इतनाही नही किन्तु उन्होंका परिचय करनाही बीलकुल मना है. आजकाल कीतनेक निर्नायक तरूण साध्वीयों स्वच्छन्दतासे अज्ञ ब्राह्मणों पासे पढति है. जीसका नतीजा प्रत्यक्षमें अनुभव कर रहे है.

(३०) ,, पासत्थावोंको सूत्रार्थकी वाचना देवे. ३

(३१) उन्होसे वाचना लेवे. ३

(३२--३३) एवं उसन्नावोंको वाचना देवे, लेवे.

(३४--३५) एवं कुशीलीयोंके दो सूत्र.

(३६-३७) एवं दो सूत्र, नित्यपिंड भोगवनेवालोंका तथा नित्य एक स्थान निवास करनेवालोंका, उसे वाचना देवे—लेवे.

(३८- ३९) एवं संसक्ताको वाचना देवे तथा लेवे.

भावार्थ—पासत्थावोंको वाचना देनेसे उन्होंके साथ परिचय बढे, उन्होंका कुछ असर, अपने शिष्य समुदायमें भी हो तथा लोक व्यवहार अशुद्ध होनेसे शंका होगाकि- इस दोनों मंडलका आचार--व्यवहार सदृश होगा. तथा पासत्थावोंसे वाचना लेनेमें वहही दोष है. और उसका विनय, भक्ति, वन्दन, नमस्कार भी करना पडे. इत्यादि, वास्ते ऐसा हीनाचारी पासत्थावोंके पास, न तो वाचना लेना, और न ऐसेको वाचना देना.

उपर लिखे ३९ वोलोसे एक भी वोल कोइ साधु साध्वी सेवन करेगा, उसको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—उन्नीसवा उद्देशाका संक्षिप्तसार.



(२०) श्री निशिथसूत्र—वीसवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' एक मासिक प्रायश्चित्त स्थानक (पहला उद्देशासे पांचवा उद्देशातकके वोल) सेवन कर माया

रहित-सरलतासे आलोचना करे, उसे एक मासिक प्रायश्चित्त दीया जाता है. और

(२) मायासंयुक्त आलोचना करनेपर उसे दोय मासिक प्रायश्चित्त देते है. कारण-एक मास मूळ दोष सेवन कीया उसका. और एक मास जो आलोचना करते माया-कपट सेवन कीया, उसकी आलोचना, एवं दो मास.

(३) इसी माफिक दोय मास दोषस्थानक सेवन कर मायारहित आलोचना करनेसे दोय मासका प्रायश्चित्त.

(४) मायासंयुक्त करनेसे तीन मासका प्रायश्चित्त भावना पूर्ववत्.

(५) तीन मासवालोंको मायारहितसे तीन मास.

(६) मायासंयुक्तको च्यार मास.

(७) च्यार मासवालोंको मायारहितसे च्यार मास.

(८) मायासंयुक्तको पांच मास.

(९) पांच मास-मायारहितको पांच मास.

(१०) मायारहितको छे मास. छे माससे अधिक प्रायश्चित्त नहीं है. कारण-आजके साधु साध्वी, वीरप्रभुके शासनमें विचरते है, और वीरप्रभु उत्कृष्टसे उत्कृष्ट छे मासकी तपश्चर्या करी है. अगर छे माससे अधिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कीया हो, उसको फिरसे दुसरी दफे दीक्षा ग्रहनका प्रायश्चित्त होता है.

(११) ,, बहुतवार मासिक प्रायश्चित्त स्थानको सेवन करे. जैसे पृथ्वीकी विराधना हुइ, साथमें अप्कायकी विराधना एक-वार तथा वारवार भी विराधना हुइ, यह एक साथमें आलोच-

ना करी, उसे बहुतवार मासिक कहते हैं. अगर मायारहित निष्कपट भावसे आलोचना करी हो, तो उसे मासिक प्रायश्चित्त देवे.

(१२) मायासंयुक्त आलोचना करनेसे दोमासिक प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१३) एवं बहुतसे दोमासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे मायारहितवालोंको दोमासिक आलोचना.

(१४) मायासहितको तीन मासिक आलोचना. यावत् बहुतसे पांच मासिक, मायारहित आलोंचनासे पांच मास, मायासहित आलोचना करनेसे छे मासका प्रायश्चित्त होता है. सूत्र २० हुवे. भावना प्रथम सूत्रकी माफिक समझना.

(२१) ,, मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, च्यार मासिक, पांच मासिक, और भी किसी प्रकारके प्रायश्चित्त स्थानोंको सेवन कर मायारहित आलोचना करनेसे मूल सेवा हो. उतनाही प्रायश्चित्त होता है. जैसे एक मासिक यावत् पांच मासिक.

(२२) अगर माया—कपटसे संयुक्त आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त होता है. यावत् मायारहित हो, चाहे मायासहित हो, परन्तु छे माससे अधिक प्रायश्चित्त नहीं है. अधिक प्रायश्चित्त हो, तो पहलेकी दीक्षा छेदके नवी दीक्षाका प्रायश्चित्त होता है. एवं दो सूत्र बहुवचनापेक्षा भी समझना. २३–२४ सूत्र हुवे.

(२५) ,, च्यार मासिक, साधिक चातुर्मासिक, पंच मासिक, साधिक पंच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर मायारहित आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्त देवे.

(२६) मायासंयुक्त आलोचना करनेसे पांच मास, साधिक

पांच मास, छे मास, छे मास, इससे उपर मायासहित, चाहे मायारहित हो, प्रायश्चित्त नहीं है. भावना पूर्ववत्, एवं दो सूत्र बहुवचनापेक्षा. २७-२८ सूत्र हुवे.

(२९) ,, चतुर्मासिक, साधिक चतुर्मासिक, पंच मासिक, साधिक पंचमासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना करे, मायारहित तथा मायासहित. उस साधुको उपरवत् प्रायश्चित्त देके किसी बेमार तथा वृद्ध मुनियोंकी वैयावच्च करने निमित्त स्थापन करे. अगर प्रायश्चित्त सेवन कीया, उसे संघ जानता हो तो संघके सन्मुख प्रायश्चित्त देना चाहिये, जिससे संघको प्रतीत रहे, साधुवोंको क्षोभ रहे, दुसरी दफे कोइ भी साधु, ऐसा अकृत्य कार्य न करे, इत्यादि. अगर दोष सेवनको कोइ भी न जाने, तो उसे अन्दर ही आलोचना देना. उसका दोष जो प्रगट करते जितना प्रायश्चित्त, दोष सेवन करनेवालोंको आता है, उतना ही गुप्त दोषको प्रगट करनेवालोंको होता है. कारण एसा करनेसे शासनहीलना मुनियोंपर अभाव दोष सेवनमें निःशंकता आदि दोषका संभव है आलोचना करनेवालोंका च्यार भांगाः—

(१) आचार्यमहाराजका शिष्य, एकसे अधिक दोष सेवन कर आलोचना करते समय क्रमसर पहले दोषकी पहले आलोचना करे.

(२) एवं पहेले सेवन कीया दोषकी विस्मृति होनेसे पीछे आलोचना करे.

(३) पीछे सेवन कीया दोषकी पहले आलोचना करे.

(४) पीछे सेवन कीया दोषकी पीछे आलोचना करे,

आलोचनाके परिणामापेक्षा और भी चौभंगी कहते है—

(१) आलोचना करनेके पहला शिष्यका परिणाम था कि

—अपने कल्याणके लीये विशुद्ध भावसे आलोचना करना, और आचार्य पास आके विशुद्ध भावसे ही आलोचना करी.

(२) आलोचना विशुद्ध भावसे करनेका विचार कीयाथा, फिर अधिक प्रायश्चित्त आनेसे, मान, पूजाकी हानिके ख्यालसे मायासंयुक्त आलोचना करे.

(३) पहले मायासंयुक्त आलोचना करनेका विचार कीया था, परन्तु मायाका फल संसारवृद्धिका हेतु जान निष्कपट भावसे आलोचना करे.

(४) भवाभिनन्दी-पहला विचार भी अशुद्ध और पीछेसे आलोचना भी कपटसंयुक्त करे कारण कर्मोंकी विचित्र गती है. यह आठ भांगा सर्व स्थान समझना. भव्यात्मा मुनि, अपने कीये हुवे कर्म (पापस्थान)को सम्यक् प्रकारसे समझके निर्मल चित्तसे आलोचना कर आचार्यादि शास्त्रापेक्षा प्रायश्चित्त देवे, उसे अपने आत्माकी शाखसे तपश्चर्या कर प्रायश्चित्तको पूर्ण करे.

(३०) एवं बहुवचनापेक्षा भी समझना.

(३१) ,, चतुर्मासिक साधिक चतुर्मासिक, पंच मासिक साधिक पंचमासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर पूर्वोक्त आठ भांगोंसे आलोचना करे, उस मुनिको यथावत् प्रायश्चित्त तपमें स्थापन करे. उस तपमें वर्त्तते हुवेको अन्य दोष लग जावे, तो उसकी आलोचना दे उसी चल्लु तपमें वृद्धि कर देना अगर तप करते समय वह साधु असमर्थ हो तो अन्य साधु. उन्होंके वैयावच्च में सहायता निमित्त रखे, उसे तप पूर्ण कराना आचार्यका कर्तव्य है.

(३२) एवं बहुवचनापेक्षा भी समझना

भाधार्थ—चल्लु तपमें दोषोंकी आलोचना कर तप लेवे ता स्वल्प तपश्चर्या करनेसे प्रायश्चित्त उतर जावे, और पारणा करके तप करनेसे बहुत तप करना पडे. इस हेतुसे साथ हीमें लगेतार तप करवाय देना अच्छा है. तपकी विधि अनेक सूत्रमें है.

(३३) जो मुनि, मायारहित तथा मायासहित आलोचना करी, उसको आचार्यने छ मासिक तप प्रायश्चित्त दीया है, उसी तपका अन्दर वर्त्तते मुनि, और दोय मासिक प्रायश्चित्त आये, ऐसा दोषस्थानको सेवन कीया, और उस स्थानकी आलोचना अगर मायारहितकी हो, तो उस तपके साथ वीश रात्रिका तप सामेल कर देना. कारण—पहला तप करते उस मुनिका शरीर क्षीण हो गया है. अगर मायासंयुक्त आलोचना करी हो तो दो मास और वीश रात्रि पहलेके (छेमासीक तप) तपके साथ मिला देना चाहिये. परन्तु उस तपसी साधुको पीछेकी आलोचनाका हेतु, कारण, अर्थ ठीक संतोषकारी वचनोंसे समझा देना चाहिये हे मुनि ! जो इस तपके साथ तप करेंगे, तो दो मासकी जगाहा वीश रात्रिमें प्रायश्चित्त उतर जावेगा, अगर यहां न करेंगे, तो तपस्याका पारणा करके भी तेरेको छे मासका (मायासंयुक्त तो तीन मासका) तप करना होगा. इस वखत तप अधिक करेंगे तो यह हमारा साधु, तुमारी वैयावच्च विगेरहसे सहायता करेगा, इत्यादि. वह साधु इस बातको स्वीकार कर उस तपको चाहे आदिमें, चाहे मध्यमें, चाहे अन्तमें कर देवे. जितना ज्यादा परिश्रम हो, उसे मुनि कर्मनिर्जराका हेतु समझे.

(३४) एवं पंच मासिक प्रायश्चित्त विशुद्ध करते बीचमें दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना करे, उसकी विधि ३३ वां सूत्र माफिक समझना.

(३५) एवं चातुर्मासिक.

(३६) एवं तीन मासिक.

(३७) एवं दोय मासिक.

(३८) एक मासिक. भावना पूर्ववत् समझना.

(३९) जो मुनि छे मासी यावत् एक मासी तप करते हुवे अन्तरामें दो मासी प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर मायासंयुक्त आलोचना करी, जिससे दोय मास, वीश अहोरात्रिका प्रायश्चित्त, आचार्यने दीया, उस तपको पहलेके तपके अन्तमें प्रारंभ कीया है. उस तपमें वर्त्तते हुवे मुनिको और भी दोय मासिक प्रायश्चित्त स्थानका दोष लगजावे, उसे आचार्य पास आलोचना मायारहित करना चाहिये. तब आचार्य उसे वीश दिनका तप, उसे पूर्व तपश्चर्याके साथ बढा देवे. और उसका कारण, हेतु, अर्थ आदि पूर्वोक्त माफिक समझावे. मूल तपके सिवाय तीन मास दश दिनका तप हुवा.

(४०) ,, तीन मास दश रात्रिका तप करते अंतरे और भी दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना करनेसे वीश रात्रिका तप प्रायश्चित्त देनेसे च्यार मासका तप करे. भावना पूर्ववत्.

(४१) ,, च्यार मासका तप करते अन्तरेमें दोमासी प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे पूर्ववत् वीश रात्रिका प्रायश्चित्त पूर्व तपमें मिला देवे, तब च्यार मास वीश रात्रि होती है.

(४२) ,, च्यार मास वीश रात्रिका तप करते अंतरे दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे और वीश रात्रि तप उसके साथ मिला देनेसे पांच मास दश रात्रि होती है.

(४३) ,, पांच मास दश रात्रिका तप करते अंतरे दो मासिक प्रायश्चित्त सेवन करनेसे वीश रात्रिका तप उसके साथ मिला देनेसे पूर्ण छे मास होता है, इसके आगे तप प्रायश्चित्त नहीं है. फिर छेद या नवी दीक्षा ही दी जाती है. भावना पूर्ववत्.

(४४) ,, छे मासो प्रायश्चित्त तप करते हुवे मुनि, अन्तरे एक मासिक प्रायश्चित्त स्थानको सेवे, उसकी आलोचना करने- पर आचार्य उसे पूर्वतपके साथ पन्दर दिनोंका तप अधिक करावे.

(४५) एवं पांच मासिक तप करते.

(४६) एवं च्यार मासिक तप करते.

(४७) तीन मासिक तप करते.

(४८) दो मासिक तप करते,

(४९) एवं एक मासिक तप करते अन्तरे एक मासिक प्रा- यश्चित्त स्थान सेवन कीया हो, तो आदा मास तपके साथ मिला देना, भावना पूर्ववत्.

(५०) ,, छे मासिक यावत् एक मासिक तप करते अ- न्तरे एक मासिक और प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया संयुक्त आलोचना करे, उसे साधुको आचार्यने दोड (१॥) मासिक तप दीया है, यह साधु पूर्व तपको पूर्ण कर, उसके अन्तमें दोड (१॥) मासिक तप कर रहा है. उसमें और मासिक प्रायश्चित्त स्थानसे बी माया रहित आलोचना करे, उसे पन्दर दिनको आलोचना दे के पूर्व दोड मासके साथ मिला देना. एवं दो मासका तप करे.

(५१) ,, दो मासिक तप करते और मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना करनेसे, पन्दरादिनको आलोचना दे पूर्व दो मासके साथ मिलाके अढाइ मासका तप करे.

(५२) ,, अढाइ मासवालाको मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेसे पन्दरा दिनका तप देके पूर्वके साथ मिलाके तीन मास कर दे.

(५३) ,, एवं तीन मासवालाके साढा तीन मास.

(५४) साढा तीन मासवालाके च्यार मास.

(५५) च्यार मासवालाके साढा च्यार मास.

(५६) साढे च्यार मासवालाके पांच मास.

(५७) पांच मास वालाके साढा पांच मास.

(५८) साढा पांच मास वालाके छे मास. भावना पूर्ववत् समझना.

(५९) ,, दो मासिक प्रायश्चित्त तप करते अन्तरे एक मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे पन्दरादिनकी आलोचना दे के पूर्व दो मासके साथ मिला देनेसे अढाइ मास.

(६०) अढाइ मासका तप करते अन्तरे दो मास प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे वीश रात्रिका तप दे के पूर्व अढाइ मास साथ मिलानेसे तीन मास और पांच दिन होता है.

(६१) तीन मास पांच दिनका तप करते अंतरे एक मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेसे पन्दरा दिनोंका तप, उस तीन मास पांच रात्रिके साथ मिलानेसे तीन मास वीश अहोरात्रि होती है.

(६२) तीन मास वीश अहोरात्रिका तप करते अन्तरेमें दो मासिक प्रा० स्थान सेवन करने वालेको वीश अहोरात्रिकी आलोचना देके पूर्वका तपके साथ मिला देनेसे ३-२०-२० च्यार मास दश दिन होते है.

(६३) च्यार मास दश दिनका तप करते अन्तरेमें एक मासिक प्रा० स्थान सेवन करने वालेको पन्दरा दिनकी आलोचना पूर्व तपके साथ मिला देनेसे ४-१०-१५ च्यार मास पंचवीश अहोरात्री होती है.

(६४) च्यार मास पंचवीश अहोरात्रिका तप करते अन्तरमें दो मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेवालेको वीश रात्रिकी आलोचना, पूर्वतपके साथ मिला देनेसे पंच मास और पंदरा अहोरात्रि होती है.

(६५) पांच मास पंदरा रात्रिका तप करते अन्तरामें एक मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेवालेको पन्दरा अहोरात्रिकी आलोचना, पूर्वतपके साथ सामेल कर देनेसे छे मासिक तप होता है. इसके आगे किसी प्रकारका प्रायश्चित्त नहीं है. अगर तप करते प्रायश्चित्तका स्थान सेवन करते है, उसकी आलोचना देनेवाले आचार्यादि, उस दुर्बल शरीरवाला तपस्वी मुनिको मधुरतासे उस आलोचनाका कारण, हेतु, अर्थ बतलाये कि तुमारा प्रायश्चित्त स्थान तो एक मासिक, दो मासिकका है, परन्तु पेस्तरसे तुमारी तपश्चर्या चल रही है. जिसके जरिये तुमारा शरीरकी स्थिति निर्बल है. लगेतार तप करनेमें जोर भी ज्यादा पडता है. इस वास्ते इस हेतु-कारणसे यह आलोच ना दी जाती है. कृत पापका तप करना महा निर्जराका हेतु है. अगर तुमारा उत्थानादि मंद हो तो मेरा साधु तुमारी वैयावच्च करेंगा तु शान्तिसे तप कर अपना प्रायश्चित्त पूर्ण करो. इत्यादि. २०

आलोचना सुननेकी तथा प्रायश्चित्त देनेकी विधि अन्य स्थानोंसे यहांपर लिखी जाती है.

आलोचना सुननेवाले.

(१) अतिशय ज्ञानी (केवली आदि) जो भूत, भविष्य, वर्तमान—त्रिकालदर्शी हो, उन्होंके पास निष्कपट भावसे आलोचना करते समय अगर कोइ प्रायश्चित्त स्थान, विस्मृतिसे आलोचना करना रह गया हो, उसे वह ज्ञानी कह देवे कि—हे भद्र! अमुक दोषकी तुमने आलोचना नहीं करी है. अगर कोइ माया—कपट कर किसी स्थानकी आलोचना नहीं करी हो, तो उसे वह ज्ञानी आलोचना न देवे, और किसी छद्मस्थ आचार्यके पास आलोचना करनेका कह देवे.

(२) छद्मस्थ आचार्य आलोचना सुननेवाले कितने गुणोंके धारक होते है? यथा—

(१) पंचाचारको अखंड पालनेवाला हो, सत्तरा प्रकारसे संयम, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्मके धारक, गीतार्थ, वहुश्रुत, दीर्घदर्शी-इत्यादि कारण-आप निर्दोष हो, वहही दुसरोंको निर्दोष वना सके, उसकाही प्रभाव दुसरे पर पड सके.

(२) धारणावन्त—द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके जानकार, गुरुकुल वासको सेवन कर अनेक प्रकारसे धारणा करी हो, स्याद्वादका रहस्य, गुरुगमतासे धारण कीया हो.

(३) पांच व्यवहारका जानकार हो—आगमव्यवहार, सूत्र व्यवहार, आज्ञा व्यवहार, धारणा व्यवहार, जीत व्यवहार (देखो व्यवहार सूत्र उद्देशा १० वां) किस समय किस व्यवहारसे काम लीया जावे, या-प्रवृत्ति की जावे उसका जानकार अवश्य होना चाहिये.

(४) कितनेक ऐसे जीव भी हाते है कि—लज्जाके मारे शुद्ध आलोचना नहीं कर सके; परन्तु आलोचना सुनने वालोंमें

यह भी गुण अवश्य होना चाहिये कि—मधुरता पूर्वक आलोचक साधुकी लज्जा दूर करनेको स्थानांग-आदि सूत्रोंका पाठ सुनाके हृदय निर्मल बना देवे. जैसे—हे भद्र! इस लोककी लज्जा परभवमें विराधक कर देती है, रुपा और लक्ष्मणा साध्वीका दृष्टान्त सुनावे.

(५) शुद्ध करने योग्य होवे, आप स्वयं भद्रक भाव—अपक्षपातसे शुद्ध आलोचना करवाके, अर्थात् आलोचना करनेवालोंका गुण बतावे, आठ कारणोंसे जीव शुद्ध आलोचना करे—इत्यादि.

(६) मर्म प्रकाश नहीं करे. धैर्य, गांभीर्य, हृदयमें हो, किसी प्रकारकी आलोचना कोइभी करी हो, परन्तु कारण होने परभी किसीका मर्म नहीं प्रकाशे.

(७) निर्वाह करने योग्य हो. आलोचना अधिक आती है, और शरीरका सामर्थ्य, इतना तप करनेका न हो, उसके लीये भी निर्वाह करनेको स्वाध्याय, ध्यान, वन्दन, वैयावच्च-आदि अनेक प्रकारसे प्रायश्चित्तका खंड खंड कर उसको शुद्ध कर सके.

(८) आलोचना न करनेका दोष, अनर्थ, भविष्यमें विराधकपणा, संसारवृद्धिका हेतु, तथा आठ कारणोंसे जीव आलोचना न करनेसे उत्पन्न होता दुःख यावत् संसार भ्रमण करे. ऐसा बतलावे.

(९-१०) प्रिय धर्मी और दृढ धर्मी हो, धर्म शासनपर पूर्ण राग, हाड हाड किमीजी, रग रग, नशों और रोमरोममें शासन व्याप्त हो, अर्थात् यह दोषित साधु आलोचना न करेगा, तो दुसरा भी दोष लगनेसे पीछा न हटेगा. ऐसी खराब प्रवृत्ति होनेसे भविष्यमें शासनको बडा भारी धोका पहुंचेगा. इत्यादि हिताहितका विचारवाला हो.

(श्री स्थानांगजी सूत्र—दशवे स्थाने

उपर लिखे दश गुणोंको धारण करनेवाले आलोचना सुनने योग्य होते है. वह प्रथम आलोचना सुने, दुसरी वखत और कहे—हे वत्स ! मैं पहला ठीक तरहसे नहीं सुनी, [1]अब दुसरी दफे सुनावे. तब दुसरी दफे सुने. जब कुछ संशय हो तो, कहेकि-हे भद्र ! मुझे कुछ प्रमाद आ रहाथा, वास्ते तीसरी दफे और सुनावें, तीन दफे सुननेसे एक सदृश हो, तो उसे निष्कपट शुद्ध आलोचना समझे. अगर तीन दफेमें कुछ फारफेर हो, तो उसे माया संयुक्त आलोचना समझना. (व्यवहारसूत्र.)

मुनि अपने चारित्रमें दोष किसवास्ते लगाते हैं ? चारित्र मोहनीयकर्मका प्रबल उदय होनेसे जीव अपने व्रतमें दोष लगाते है. यथा—

(१) 'कन्दर्पसे'—मोहनीय कर्मके उदयसे उन्माददशा प्राप्त हो, हास्यविनोद, विषय विकार—आदि अनेक कारणोंसे दोष लगाते है.

(२) 'प्रमाद' मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा—इस पांच कारणोंसे प्रेरित मुनि दोष लगाते है. जैसे पूंजन, प्रतिलेखन, पिंड विशुद्धिमें प्रमाद करे.

(३) 'अज्ञात' अज्ञानतासे तथा अनुपयोगसे, हलन, चलनादि अयतना करनेसे--

(४) 'आतुरता' हरेक कार्य आतुरतासे करनेमें संयमव्रतोंकों बाधा पहुचती है,

(५) 'आपत्तदशा' शरीरव्याधि, तथा अरण्यादिमें आपदा आनेसे दोष लगावे.

---

१ शिष्यकी परिक्षा निमित्तदोष लगता है देखो उत्पातीकसूत्र.

(६) 'शंका' यह पूंजन प्रतिलेखन करी होगा या नही करी होगा इत्यादि कार्यमे शंका होना.

(७) 'सहसात्कारे' बलात्कारसे, किसी कार्य करनेकी इच्छा न होनेपर भी वह कार्य करनाही पडे.

(८) 'भय' सात प्रकारका भयके मारे अधीरपनासे—

(९) 'द्वेषदशा' क्रोध मोहनीय उदय, अमनोज्ञ कार्यमें द्वेषभाव उत्पन्न होनेसे दोष लगता है.

(१०) शिष्यादिकी परीक्षा (आलोचना) श्रवण करनेके निमित्त दुसरी तीसरी वार कहना पडता है, कि मैंने पूर्ण नहीं सुनाया, और सुनावें. (स्थानांगसूत्र.)

दोष लग जानेपर भी मुनियोंको शुद्ध भावसे आलोचना करना बडाही कठिन है. आलोचना करते करते भी दोष लगा देते है. यथा—

(१) कम्पता कम्पता आलोचना करे. अर्थात् आचार्यादिका भय लावेकि—मुझे लोग क्या कहेंगे ? अर्थात् अस्थिर चित्तसे आलोचना करे.

(२) आलोचना करनेके पहला गुरुसे पूछे कि—हे स्वामिन् ! अगर कोइ साधु, अमुक दोष सेवे, उसका क्या प्रायश्चित्त होता है ? शिष्यका अभिप्राय यह कि—अगर स्वल्प प्रायश्चित्त होगा, तो आलोचना कर लेंगे, नहिं तो नहीं करेंगे.

(३) किसीने देखा हो, ऐसे दोषकी आलोचना करे, और न देखा हो, उसकी आलोचना नहीं करे. (कौन देखा है ?)

(४) बडे बडे दोषोंकी आलोचना करे, परन्तु सुक्ष्म दोषोंकी आलोचना न करे.

(५) सूक्ष्म दोषोंकी आलोचना करे, परन्तु स्थूल दोषोंकी आलोचना न करे.

(६) बडे जोर जोरसे शब्द करते आलोचना करे. जिससे बहुत लोक सुने, एकत्र हो जावे.

(७) बिलकुल धीमे स्वरसे बोले. जिसमें आलोचना सुननेवालोंकी भी पुरा शब्द सुनाया जाय नहीं.

(८) एक प्रायश्चित्त स्थान, बहुतसे गीतार्थोंके पास आलोचना करे. इरादा यहकि—कोनसा गीतार्थ, कितना कितना प्रायश्चित्त देता है.

(९) प्रायश्चित्त देनेमें अज्ञात (आचारांग, निशियका अज्ञात) के समीप आलोचना करे. कारण वह क्या प्रायश्चित्त दे सके ?

(१०) स्वयं आलोचना करनेवाला खुद ही उस प्रायश्चित्त को सेवन कीया हो, उसके पास आलोचना करे. कारण—खुद प्रायश्चित्त कर दोषित है, वह दुसरोंको क्या शुद्ध कर सकेंगा ? उन्हसे सच बात कबी कही न जायगी.

(स्थानांगसूत्र.)

आलोचना कोन करता है ? जिसके चारित्र मोहनीय कर्मको क्षयोपशम हुवा हो, भवान्तरमें आराधक पदकी अभिलाषा रखता हो, वह भव्यात्मा आलोचना कर अपनी आत्माको पवित्र बना सके. यथा—

(१) जातिवान्.

(२) कुलवान्. इस वास्ते शास्त्रकारोंने दीक्षा देते समय ही प्रथम जाति, कुल, उत्तम होनेकी आवश्यकता बतलाइ है.

जाति-कुल उत्तम होगा, यह मुनि आत्मकल्याणके लीये आलोचना करता कबी पीछा न हटेंगा.

(३) विनयवान्—आलोचना करनेमें विनयकी खास आवश्यकता है. क्योंकि-आत्मकल्याणमें विनय मुख्य साधन है.

(४) ज्ञानवान्—आलोचना करनेसे शायद इस लोकमें मान-पूजा, प्रतिष्ठामें कबी हानि भी हो, तो ज्ञानवंत, उसे अपना सुहृदयमें कबी स्थान न देंगा. कारण-ऐसी मिथ्या मान-पूजा, इस जीवने अनन्तीवार कराइ है. तदपि आराधकपद नहीं मिला है. आराधकपद, निर्मल चित्तसे आलोचना करनेसे ही मिल सके, इत्यादि.

(५) दर्शनवान्—जिसकी अटल श्रद्धा, वीतरागके धर्मपर है, वह ही शुद्ध भावसे आलोचना करेंगा. उसकी ही आलोचना प्रमाण गिनी जाती है, कि-जिसका दर्शन निर्मल है.

(६) चारित्रवान्—जिसको पूर्णतासे चारित्र पालनेकी अभिरुचि है, वह ही लगे हुवे दोषोंकी आलोचना करेंगा.

(७) अमायी—जिसका हृदय निष्कपटी, सरल, स्वभाव होगा, वह ही मायारहित आलोचना करेंगा.

(८) जितेंद्रिय—जो इन्द्रियविषयको अपने आधीन बना लीया हो, वह ही कर्मोके सन्मुख मोरचा लगाने, तपरुप अस्त्र लेके खडा होगा, अर्थात् आलोचना ले, तप वह ही कर सकेंगा, कि जिन्होंने इन्द्रियोंको जीती हो.

(९) उपशमभावी—जिन्होंका कषाय उपशान्त हो रहा है. न उसे क्रोध सताता है, न मानहानिमें मान सताता है, न माया न लोभ सताता है, वह ही शुद्ध भावसे आलोचना करेंगा.

(१० प्रायश्चित्त ग्रहन कर, पश्चात्ताप न करे, वह आलोचना करनेके योग्य होते है.

(स्थानांगसूत्र.)

प्रायश्चित्त कितने प्रकारके है ? प्रायश्चित्त दश प्रकारके है. कारण—एक ही दोषको सेवन करनेवालोंको अभिप्राय अलग अलग होते है, तदनुसार उसे प्रायश्चित्त भी भिन्न भिन्न होना चाहिये. यथा—

(१) आलोचना—एक ऐसा अशक्त परिहार दोष होता है कि-जिसको गुरु सन्मुख आलोचना करनेसे ही पापसे निवृत्ति हो जाती है.

(२) प्रतिक्रमण—आलोचना श्रवण कर गुरु महाराज कहे कि-आज तो तुमने यह कार्य कीया है, किन्तु आईदासे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये. इसपर शिष्य कहे-तहत्त-अब मैं ऐसा कार्यसे निवृत्त होता हुं. अकृत्य कार्यसे पीछा हटता हुं.

(३) उभया—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करे. भावना पूर्ववत्.

(४) विवेग—आलोचना श्रवण कर ऐसा प्रायश्चित्त दीया जाय कि-दुसरी दफे ऐसा कार्य न करे. कुछ वस्तुका त्याग कराना तथा परिठन कार्य कराना.

(५) कायोत्सर्ग—दश, वीश, लोगस्सका काउसग्ग तथा खमासणादि दिलाना.

(६) तप—मासिक तप यावत् छे मासिक तप, जो निशिथसूत्रके २० उद्देशोंमें बतलाया गया है.

(७) छेद—जो मूल दीक्षा लीथी, उसमें एक मास, यावत्

छे मास तकका छेद कीया जावे, अर्थात् इतना मासपर्यायसे कम कर दीया जाय. जैसे एक मुनि, दीक्षा ग्रहनके बादमें दुसरा मुनिने तीन मास पीछे दीक्षा लीथी, उस वखत पीछेसे दीक्षा लेनेवाला मुनि, पहले दीक्षितको वन्दन करे. अब वह पहला दीक्षित मुनि, किसी प्रकारका दोष सेवन करनेसे उसे चातुर्मासिक छेद प्रायश्चित्त आया है. जिससे उसका दीक्षापर्याय च्यार मास कम कर दीया. फिर वह तीन मास पीछेसे दीक्षा लीथी, उसको वह पूर्वदीक्षित मुनि वन्दना करे.

(८) मूल—चाहे कितना ही वर्षोंकी दीक्षा क्यों न हो, परन्तु आठवा प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे उस मुनिकी मूल दीक्षाको छेदके उस दिन फिरसे दीक्षा दी जाती है. वह मुनि, सर्व मुनियोंसे दीक्षापर्यायमें लघु माना जावेगा.

(९) अनुठ्ठया—

(१०) पाड्चिया—यह दोष प्रायश्चित्त सेवन करनेवालोंको पुनः गृहस्थलिंग धारण करवायके दीक्षा दी जाती है. इसकी विधि शास्त्रोंमें विस्तारसे बतलाइ है, परन्तु वह इस कालमें विच्छेद माना जाता है. (स्थानांगसूत्र.)

साधुवोंको अगर कोइ दोष लग जावे तो उसी वखत आलोचना करलेना चाहिये. विगर आलोचना किया गृहस्थोंके वहां गोचरी न जाना, विहारभूमि न जाना, ग्रामानुग्राम विहार नहीं करना. कारण-आयुष्यका विश्वास नहीं है. अगर विराधिकपणेमें आयुष्य बन्ध जावे, तो भविष्यमें बडा भारी नुकशान होता है. अगर किसी साधुवोंके आपसमें कषायादि हुवा हो, उस समय लघु साधु खमावे नहीं तो वृद्ध साधुवोंको वहां जाके खमाना. लघु साधु

चाहे उठे, न उठे, आदर-सत्कार दे, न भी दे, वन्दन करे, न भी करे, खमावे, न भी खमावे, तो भी आराधिक पदके अभिलाषी मुनिको वहां जाके भी खमतखामणा करना. (वृहत्कल्पसूत्र.)

आलोचना किसके पास करना? अपना आचार्योपाध्याय, गीतार्थ, बहुश्रुत, उक्त दश (१०) गुणोंके धारकके पास आलोचना करना. अगर उन्होंका योग न हो तो उक्त १० गुणोंके धारक संभोगी साधुवोंके पास आलोचना करे. उन्होंका योग न हो तो अन्य संभोगी साधुवोंके पास आलोचना करे. उन्होंका योग न हो तो रुप साधु (रजोहरण, मुखवस्त्रिकाका ही धारक है) गीतार्थ होनेसे उसके पास भी आलोचना करना. उन्होंके अभावमें पच्छकाडा श्रावक (दीक्षासे गिरा हुवा, परन्तु है गीतार्थ), उन्होंके अभावमें सुविहित आचार्यसे प्रतिष्ठा करी हुइ जिनप्रतिमाके पास जाके शुद्ध हृदयसे आलोचना करे, उन्होंके अभावमें ग्राम यावत् राजधानीके वाहार, अर्थात् एकान्त जंगलमें जाके सिद्ध भगवानकी साक्षीसे आलोचना करे. (व्यवहारसूत्र.)

मुनि, गौचरी आदि गये हुवेको कोइ दोष लग जावे, वह साधु, निशिथसूत्रका जानकार होनेसे वहांपर ही प्रायश्चित्त ग्रहन कर लेवे, और आचार्यपर आधार रखे कि - मैं इतना प्रायश्चित्त लीया है, फिर आचार्य महाराज इसमें न्यूनाधिक करेंगा, वह मुझे प्रमाण है. ऐसा कर उपाश्रय आते वखत रहस्तेमें काल कर जावे तो वह मुनि आराधिक है, जिसका २४ भांगा है. भावार्थ— कोइ योग न हो तो स्वयं शास्त्राधारसे आलोचना कर प्रायश्चित्त ले लेनेसे भी आराधिक हो सक्के है. (भगवतीसूत्र)

निशिथसूत्रके १९ उद्देशाओंमे च्यार प्रकारके प्रायश्चित्त बतलाये है.

(१) लघुमासिक.

(२) गुरु मासिक.

(३) लघु चातुर्मासिक.

(४) गुरु चातुर्मासिक. तथा इसी सूत्रके वीसवां उद्देशामें— मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, च्यार मासिक, पांच मासिक और छे मासिक. इस प्रायश्चित्तोंमे प्रत्येक प्रायश्चित्तके तीन तीन भेद होते हैं—

(१) प्रत्याख्यान प्रायश्चित.

(२) तपप्रायश्चित्त.

(३) छेद प्रायश्चित्त. इस तीनों प्रकारके प्रायश्चित्तोंका भी पुनः तीन तीन भेद होते है. (१) जघन्य, (२) मध्यम, (३) उत्कृष्ट.

जैसे (१) प्रत्याख्यान प्रायश्चित्त, जघन्यमें एकासना, मध्यमें विगइ (नीवी), उत्कृष्टमें आंबिलके प्रत्याख्यानका प्रायश्चित्त दीया जाता है. एवं तप और छेद.

किसी मुनिने मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर, उस दोषकी आलोचना किसी गीतार्थ, बहुश्रुत आचार्य आदिके समीप करी है. अब उस साधुकी आलोचना श्रवण करती वखत वचार करे कि—इसने यह प्रायश्चित्त स्थान किस अभिप्रायसे सेवन कीया है ? क्या राग, द्वेष, विषय, कषाय, स्वार्थ, इन्द्रिय वश, कुतूहल प्रकृति-स्वभावसे ? धर्मरक्षण निमित्त ? शासनसेवा निमित्त ? गुरुभक्ति निमित्त ? शिष्यकों पठन पाठनके वास्ते ? अपने ज्ञानाभ्यास वास्ते ? आपदा आनेसे ? रोगादि विशेष कारणसे ? अरण्य उल्लंघन करनेसे ? किसी देशमें अज्ञातको उप-

देश निमित्त ? इत्यादि कारणोंसे दोष सेवन कर आलोचना क्या माया संयुक्त है ? माया रहित है ? लोक देखावु है ? अन्तःकरणसे है ? इत्यादि सबका विचार, आलोचना श्रवण करते वखत करके यथा प्रायश्चित्तके योग्य हो, उसे इतनाही प्रायश्चित्त देना चाहिये. प्रायश्चित्त देते समय उसका कारण हेतु, अर्थ भी समझा देना. जैसे कहेकि—हे शिष्य ! इस कारणसे, इस हेतुसे, इस आगमके प्रमाणसे तुमको यह प्रायश्चित्त दीया जाता है.

(व्यवहारसूत्र.)

अगर प्रायश्चित्त देनेवाला आचार्य आदि राग द्वेषके वश हो, न्यूनाधिक प्रायश्चित्त देवे तो, देनेवाला भी प्रायश्चित्तका भागी होता है, और शिष्यको स्वीकार भी न करना चाहिये तथा शास्त्राधारसे जो प्रायश्चित्त देनेपर भी वह प्रायश्चित्तीया साधु, उसे स्वीकार न करे तो, उसे गच्छमें नहीं रखना चाहिये. कारण—एक अविनय करनेवालेको देख और भी अविनीत बनके गच्छमर्यादाका लोप करता जावेगा. (व्यवहारसूत्र.)

शरीरबल, संहनन, मनकी मजबुती—आदि अच्छा होनेसे पहले जमानेमें मासिक तपके ३० उपवास, चातुर्मासिकके १२० उपवास, छे मासीके १८० उपवास दीये जाते थे, आज बल, संहनन, मजबुती इतनी नहीं है. वास्ते उसके बदल प्रायश्चित्त दाताओंने 'जीतकल्प' सूत्रका अभ्यास करना चाहिये, गुरुगमतासे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका जानकार होना चाहिये. तांके सर्व साधु साध्वीयोंका निर्वाह करते हुवे, शासनका धोरी बनके शासन चलावे. (जीतकल्पसूत्र.)

निशिथसूत्रके लेखक—धर्मधुरंधर पुरुष-प्रधान प्रबल प्रता

पी, परम संवेग रंगमें रंगे हुवे, अखिलाचारी, ज्ञान, दर्शन, चारित्र संयुक्त, पांच समिति समिता, तीन गुप्ति गुप्ता, सत्तरा प्रकारका संयम, बारह भेद तप, दश प्रकारके यतिधर्मका धारक, चरण, करण प्रतिपालक, जिन्हों महा पुरुषोंकी कीर्त्तिकि ध्वनि, गगनमंडलमें गर्जना कर रही थी, जिन्होंके स्याद्वादके सिंहनादसे वादी रुप गज—हस्ती पलायमान होते थे, जिन्होंका सम्यक् ज्ञानरुप सूर्य, भूमंडलके अज्ञानरुप अन्धकारका नाश कर भव्य जीवोंके हृदय—कमलमें उद्योत कर रहा था, जिन्होंकी अमृतमय देशनारुप सुधारससे आकर्षित हुये चतुर्विध संघरुप भ्रमरोंके सुस्वरसे नीकलते हुये उज्वल यशरुप गुंजार शब्दका ध्वनि, तीन लोकमें व्याप्त हो रहा थी, ऐसे श्री वैशाखागणि आचार्य महाराजने स्व-पर आत्माओंके कल्याण निमित्त. इस महा प्रभावक लघु निशिथसूत्रको लिखके अपने शिष्यों, परशिष्योंपर बहुत उपकार कीया है. इतनाही नहि बल्के वर्त्तमान और भविष्यमें होनेवाले साधु साध्वीयों पर भी बडा भारी उपकार कीया है.

इति श्री निशिथसूत्र—वीशवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

इति श्री लघु निशिथसूत्र—समाप्त.

इति श्री शीघ्रबोध भाग २२ वां

समाप्त.

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज साहवके सदुपदेशसे श्री रत्नप्रभाकरज्ञान पुष्पमाला ऑफीस फलोधीसे आजतक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुइ है.

संख्या	पुस्तकोंका नाम.	आवृत्ति	कुल संख्या.
(१)	श्री प्रतिमा छत्तीसी	४	२००००
(२)	,, गयवर विलास	२	२०००
(३)	,, दान छत्तीसी	३	४०००
(४)	,, अनुकम्पा छत्तीसी	३	४०००
(५)	,, प्रश्नमाल	३	३०००
(६)	,, स्तवन संग्रह भाग १	५	५०००
(७)	,, पैंतीस वोलोंको थोकडो	१	१०००
(८)	,, दादासाहवकी पूजा	१	२०००
(९)	,, चर्चाका पब्लिक नोटीस	१	१०००
(१०)	,, देवगुरु वन्दनमाला	२	६०००
(११)	,, स्तवन संग्रह भाग २	३	३०००
(१२)	,, लिंग निर्णय वहुत्तरी	३	३०००
(१३)	,, स्तवन संग्रह भाग ३	३	४०००
(१४)	,, सिद्धप्रतिमा मुक्तावली	१	१०००
(१५)	,, वत्तीससूत्र दर्पण	१	५००
(१६)	,, जैन नियमावली	२	२०००
(१७)	,, चौरासी आशातना	२	२०००
(१८)	,, डंकेपर चोट	१	५००
(१९)	,, आगम निर्णय	१	१०००
(२०)	,, चैत्यवंदनादि	२	२०००

(२१)	,, जिन स्तुति	२	२०००
(२२)	,, सुबोध नियमावली	२	६०००
(२३)	,, प्रभुपूजा	३	३०००
(२४)	,, जैन दीक्षा	२	२०००
(२५)	,, व्याख्या विलास	१	१०००
(२६)	,, शीघ्रबोध भाग १	२	२०००
(२७)	,, ,, ,, २	१	१०००
(२८)	,, ,, ,, ३	१	१०००
(२९)	,, ,, ,, ४	१	१०००
(३०)	,, ,, ,, ५	१	१०००
(३१)	,, सुख विपाक सूत्र मूल	१	५००
(३२)	,, शीघ्रबोध भाग ६	१	१०००
(३३)	,, दशवैकालिकसूत्र मूल	१	१०००
(३४)	,, शीघ्रबोध भाग ७	१	१०००
(३५)	,, मेझरनामो	२	४५००
(३६)	,, तीन निर्नामा ले० उत्तर	२	२०००
(३७)	,, ओसीया तीर्थका लीष्ट	१	१०००
(३८)	,, शीघ्रबोध भाग ८	१	१०००
(३९)	,, ,, ,, ९	१	१०००
(४०)	,, नंदीसूत्र मूलपाठ	१	१०००
(४१)	,, तीर्थयात्रा स्तवन	२	३०००
(४२)	,, शीघ्रबोध भाग १०	१	१०००
(४३)	,, अमे साधु शामाटे थया ?	१	१०००
(४४)	,, वीनती शतक	२	२०००
(४५)	,, द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवे०	१	६०००
(४६)	,, शीघ्रबोध भाग ११	१	१०००
(४७)	,, ,, ,, १२	१	१०००

(४८)	,, ,, ,, १३	१	१०००
(४९)	,, ,, ,, १४	१	१०००
(५०)	,, आनन्दघन चोवीशी	१	१०००
(५१)	,, शीघ्रबोध भाग १५	१	१०००
(५२)	,, ,, ,, १६	१	१०००
(५३)	,, ,, ,, १७	१	१०००
(५४)	,, कक्काबत्तीसी सार्थ	१	१०००
(५५)	,, व्याख्या विलास भाग २	१	१०००
(५६)	,, ,, ,, ,, ३	१	१०००
(५७)	,, ,, ,, ,, ४	१	१०००
(५८)	,, स्वाध्याय गहुंली संग्रह	१	१०००
(५९)	,, राइ देवसि प्रतिक्रमणसूत्र	१	१०००
(६०)	,, उपकेश गच्छ लघु पट्टावली	१	१०००
(६१)	,, शीघ्रबोध भाग १८	१	१०००
(६२)	,, ,, ,, १९	१	१०००
(६३)	,, ,, ,, २०	१	१०००
(६४)	,, ,, ,, २१	१	१०००
(६५)	,, वर्णमाला	१	१०००
(६६)	,, शीघ्रबोध भाग २२	१	१०००
(६७)	,, ,, ,, २३	१	१०००
(६८)	,, ,, ,, २४	१	१०००
(६९)	,, ,, ,, २५	१	१०००
(७०)	,, तीन चतुमासोंका दिग्दर्शन	१	१०००
(७१)	,, हितोपदेश	१	१०००
७१	....		१४००००